प्रकाशक—
रामतीर्थ प्रतिष्ठान
२५, मारवाड़ी गली
लखनऊ

मुद्रक—
नवभारत प्रेस,
लखनऊ

विषय-सूची

दो शब्द

रामकी वाणी अमर है। उसमें आत्मज्ञान का अथाह सागर भरा हुआ है। जो कोई निश्चल चित्त से उसमें अवगाहन करेगा, वह अप-रोक्ष ज्ञान से वंचित नहीं रह सकता। रामतीर्थ प्रतिष्ठान निरन्तर उनकी वाणी को जिज्ञासुओं के पास पहुँचाने में प्रयत्नशील रहता है। सबसे पहले सन् १९१९ में राम की वाणी श्री 'रामतीर्थ ग्रन्थावली' के नाम से २८ भागों में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। तदुपरान्त सन् १९२९ में यही वाणी स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई। अब सन् १९५० इसका तृतीय संस्करण स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के नाम से १६ भागों में प्रारम्भ हुआ है। आज 'आत्मा-नुभव' के नाम से इस ग्रन्थावली का यह तृतीय भाग पाठकों के हाथों सौंपते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है।

सम्प्रति हमारा सभी राम-प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे पहले ही के समान दूने उत्साह से राम की इस अमर वाणी के प्रचार में हमारा हाथ बटायें।

हरि ॐ

विजय-दशमी
संवत् २००७

रामेश्वरसहायसिंह, मंत्री
रामतीर्थ प्रतिष्ठान

श्रीपूर्णसिंहजी-लिखित स्वामी राम का

संक्षिप्त जीवन-चरित

[जो अँग्रेजी दूसरी जिल्द के आरंभ में भूमिका के रूप में दिया हुआ है]

" I cannot die, though for ever death
Weave back and fro in the warp of me,
" I was never born, yet my births of breath
Are as many as waves on the sleepless Sea"

" The body dissolved is cast to winds,
Well doth Infinity me enshrine,
All ears my ears, all eyes my eyes,
All hands my hands, all minds my minds,
I swallowed up death, all difference I drank up."

मृत्यु बहु बार भी बाना बने, ताना मम की नित्य ही।
हमें तथापि न मार सकती, बात यह है सत्य ही॥
जन्म हमारा कभी हुआ नहिं, पुनि संख्या साँस-जनम की।
वैसे ही अगणित है जैसे, अनिद्र सिन्धु की नवलहरी॥
फेंक दो मृत देह को पर कुछ बिगड़ता क्या कभी।
फूँक दो चाहे इसे पर नष्ट होता क्या कभी॥
है अनन्तता मन्दिर मेरी सान्त होती नहिं कभी।
ज्योति हूँ उस अग्नि की जो बुझ नहीं सकती कभी॥
सब नेत्र मेरे नेत्र हैं, हैं कान भी मेरे सभी।
विश्व में जितने हैं मन क्या पृथक हो सकते कभी॥

यमराज से डरता नहीं मैं, काल मेरा दास है।
लोक की बहुरूपता मम प्यास की नित आस है॥

अपने पूर्व आश्रम अर्थात् गृहस्थाश्रम में स्वामी रामतीर्थ गुसाईं तीर्थराम एम० ए० के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म पंजाब प्रान्त के गुजरानवाला जिले के मुरालीवाला ग्राम में दीपमालिका के दूसरे दिन सन् १८७३ ई० अर्थात् कार्तिक शुक्ल १ संवत् १९३० में हुआ था। गुसाईंयों के वंश में उनका जन्म होने के कारण हिन्दी रामायण के सुप्रसिद्ध रचयिता गुसाईं तुलसीदासजी के वे वंशधर माने जाते थे*। ये कुछ ही दिनों के थे जब इनकी माता का देहान्त हो गया, और इनकी बड़ी बहिन तीर्थदेवी तथा इनकी बूढ़ी फूफी धर्मकौर ने इन्हें पाला। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी थी कि यह विचित्र बालक अपने वंश में अलौकिक बुद्धिशाली पुरुष होगा। महाभारत और भागवत आदि पुराणों की कथा सुनने में इनका मन बहुत लगता था। सुनी हुई कथाओं पर ये बालप्रौढ़ मति से मनन किया करते थे, और जो शंकायें उठती थीं, उनका उचित समाधान करते थे। इनके गाँववाले इनकी असाधारण बुद्धि, मननशील स्वभाव और एकान्त प्रेम के साक्षी हैं। ये बड़े तेज़ विद्यार्थी थे। एन्ट्रेंस (मैट्रिक) से लगाकर ऊपर तक विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सदा ही इन्होंने अति उच्च स्थान प्राप्त किया। बी० ए० में ये प्रथम हुए। गणित में तो विशेषतः प्रवीण थे, और इसी विषय में बहुत अधिक नम्बरों से एम० ए० में उत्तीर्ण हुए। लाहौर फोरमैन

---

* अब बड़ी जाँच करने के बाद पता चला है कि जिन तुलसीदासजी के वंश में तीर्थरामजी थे, वह रामायण के रचयिता नहीं, किन्तु पंजाब प्रान्त के सुप्रसिद्ध योगी थे, जिनकी गद्दी सीमाप्रान्त में निशाप के समीप कबाल नगर में थी। पूरी जाँच पहले न होने के कारण भूल से वे रामायण के रचयिता मान लिये गये।

क्रिश्चियन कालेज में इसी विषय के अध्यापक नियुक्त हुए और दो वर्ष तक काम करते रहे। कुछ समय तक लाहौर ओरियंटल कालेज में भी रीडर का काम किया। अपने सह-शिक्षकों के ये स्नेहपात्र थे और वे सदा इन पर बड़ी कृपा करते थे। सरकारी कालेज के प्रिन्सिपल (प्रधानाध्यापक) मि० डबल्यू० बैल इनकी विशेष योग्यताओं के कारण इन्हें अति श्रेष्ठ मानते थे और चाहते थे कि ये प्रान्तीय सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठें। किन्तु गुसाईं तीर्थराम की अपनी इच्छा गणितविद्या पढ़ाने की थी, जिसका अध्ययन इन्होंने असीम परिश्रम से किया था। उन दिनों राजकीय छात्रवृत्ति लेकर (जिसके वे उस वर्ष अधिकारी थे) "ब्लू रिबन" (Blue Ribbon) प्राप्त करने की इच्छा से इन्होंने कैम्ब्रिज जाने का भी विचार किया था। किन्तु एक "सीनियर रैंगलर" (Senior Wrangler) मात्र होने की अपेक्षा किसी दूसरी ही लाइन में कहीं अधिक महापुरुष होना इनके भाग्य में था, इसीलिये छात्रवृत्ति एक मुसलमान युवक को मिल गई, अस्तु। जुलाई १९०० में इन्होंने वनगमन किया और एक वर्ष के भीतर ही संन्यास ले लिया।

स्वामी राम के देह त्याग से भारतीय प्रतिभा का एक अत्यन्त उज्ज्वल रत्न लोप हो गया। भारत की प्राचीन स्वर्णमयी कान्ति के साथ उनका चरित्र चमक रहा था और उसके अपूर्व भावी गौरव की सूचना दे रहा था। उनके पुण्यदर्शन से मनुष्य में नव-जीवन का संचार होता था। उनको देखकर समस्त परिच्छिन्नता और लघुता दूर हो जाती थी, तथा मानवीय बुद्धि तुरन्त गगनभेदी दिव्य सीमा तक पहुंच जाती थी। उनके दर्शनमात्र से लोगों में नये विचार उदय हो जाते थे और नवीन भावनायें उठ कर हृदय में लहराने लगती थीं। लोग अपनी सहानुभूति और प्रेम का क्षेत्र बढ़ा हुआ पाते थे और उनके मनों को ऐसा

अनुभव होता था कि मानो शीतल मन्द पवन के झकोरे उनकी ओर आ रहे हैं और अपने साथ अटल अक्षोभ, स्वर्गीय सुख, अर्थात् शान्ति और आनंद ला रहे हैं, जिससे मनुष्य की आत्मा के विरुद्ध सारे संशय व कुतर्क ऐसी निद्रा में सो जाते हैं कि उसके बाद वे आत्मा की उस पारलौकिक सत्ता में जिसका स्वामी राम उपदेश करते थे, अचल निश्चय और अटल विश्वास के रूप में बदल जाते हैं।

स्वामी राम सदा प्रफुल्लित रहते थे। जिस प्रफुल्लता को कोई क्षीण नहीं कर सकता था, वह उनके बाँटे पड़ी थी। अमेरिका की 'ग्रेट पैसफिक रेलरोड कम्पनी' के मैनेजर ने उन्हें 'पुलमैन कार' में स्थान देते हुए कहा था कि "उनकी मुस्कान अनिवार्य है।" सेंट लुई की प्रदर्शिनी में धार्मिक संघ Religious League के महान् समारोह के सम्बन्ध में स्थानीय समाचार पत्र ने लिखा था कि समारोह में एकमात्र चमत्कार-पूर्ण व्यक्ति स्वामी राम थे। परस्पर बातचीत में शंकाओं और प्रश्नों का उत्तर देते हुए वे बराबर देर तक हंसा करते थे, जिससे मानो यह सिद्ध होता था कि ईश्वर और मनुष्य-सम्बन्धी यावत् प्रश्नों के उत्तर में उनका केवल मनोहर व्यक्तित्व और सुन्दर चित्त ही यथेष्ट है। उनकी मुस्कराहट बिजली का प्रभाव रखती थी। वे लोगों में रोमांच पैदा कर देते थे। वे राम बादशाह कहलाते थे, क्योंकि अपने उल्लास-पूर्ण जीवन से उन्होंने सांसारिक सम्राटों की सजधज वस्तुतः उपहास्य बना दी थी। एक बार उन्होंने लिखा था, "मैं बादशाह राम हूँ, जिसका सिंहासन तुम्हारा हृदय है। जब मैंने वेदों के द्वारा प्रचार किया था, जब मैंने कुरुक्षेत्र, जेरूसलम और मक्का में उपदेश दिया था, तब लोग मुझे नहीं समझते थे। अब फिर मैं अपनी आवाज़ उठाता हूँ। मेरी आवाज़ तुम्हारी आवाज़ है 'तत् त्वम् असि'। जो कुछ

तुम देखते हो सब तुम्हीं हो। कोई शक्ति इसे रोक नहीं सकता, कोई राजा, प्रेत या देव इनके सामने ठहर नहीं सकता। सत्य की आज्ञा अटल है। क्षीणचित मत हो। मेरा शिर तुम्हारा शिर है, इच्छा हो तो काट लो, किन्तु इसके स्थान पर सहस्रों और निकल आवेंगे।"

वे पूर्ण प्रेम थे। अति छोटे पदवाले से भी उनका व्यवहार अत्यन्त कोमल होता था। वे अपनी पुस्तकों, क़लमों, पेंसिलों, छुरियों और आरियों तक को जीवधारियों की भाँति सम्बोधन करते थे, और अनेक वार मैंने उनको उन्हें चुमकारते, पुचकारते तथा बड़े स्नेह से वातचीत करते देखा है। उनके शब्द और विचार प्रत्येक वस्तु को ऊँचा बना देते थे। उनके लिए कोई ऊँचा-नीचा, जानदार या बेजान नहीं था। प्रत्येक वस्तु उनके लिए अपने बाह्य रूप से कुछ अधिक थी, अर्थात् परमेश्वर थी। जिस किसी से उनकी भेंट होती थी, उससे वे 'एकता' की हृदय और अन्तःकरण से चेष्टा करते थे, और उससे अपने आपकी सम्पूर्ण अभिन्नता का अनुभव करते थे। और इस प्रकार पहले उसके हृदय को वशीभूत करके फिर अप्रत्यक्ष संकेतों से सत्य के नाम पर वे उसकी बुद्धि पर प्रभाव डाल देते थे। नेत्र बन्द कर, गहरी और निर्मल सच्चाई के गम्भीर स्वरों से, वे उर्दू और फ़ारसी के अपने कतिपय प्रिय पद्यों का जब पाठ करते थे, तब उनके गुलाबी गालों पर आनन्दाश्रु बहने लगते थे। उन पद्यों का ऐसा प्रभाव उन पर होता था कि प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति को प्रत्यक्ष हो जाता था कि राम उनमें बिलकुल डूब गये हैं। घंटों उनकी यह दशा रहती थी। जनसमाज में व्याख्यान देते समय वे अपने पवित्र मंत्र ॐ ॐ को दोहराते हुए अपनी दशा को इतना भूल जाते थे कि उनके अमेरिकन प्रेमियों ने कहा था कि वे शरीर केन्द्र में बहुत ही कम रहते थे, अर्थात् देहाध्यास उनका बहुत

कम था, उनका निवास सदा ब्रह्म में रहता था। कुछ वर्ष हुए अमेरिका के कुछ मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने भविष्यवाणी की थी कि स्वामी राम जैसा उच्च आध्यात्मिक विचारों में पूर्णतया लीन और देहाध्यास को नितान्त भूला हुआ पुरुष जो दिन-रात निरन्तर ब्रह्मभाव में निमग्न रहता है, इस देह-बन्धन में अधिक काल तक ठहर नहीं सकता। वे वस्तुतः अपने को भूल गये थे, अथवा देह-सम्बन्धीय स्मृति उनकी शायद बहुत ही थोड़ी रह गई थी। अपना शरीर राम के लिए उच्चतर जीवन का वाहनमात्र था, जैसा कि ईसा के शरीर के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था। अमेरिका में राम ने कहा था— "Life is but the fluttering of the eagle's wings encaged in the body." "जीवन इस शरीर रूपी पिंजरे में बन्द पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट मात्र है।" कोई भी शब्द उनकी मोहिनी आकृति का चित्र नहीं खींच सकता। उनकी दृष्टि आपका उनके प्रति सम्पूर्ण भीतरी प्रेम आकृष्ट कर लेती थी। उनका स्पर्शमात्र शुष्क हृदयों में भी कवियों की सी उमंगे उत्पन्न कर देता था, और मनुष्य के मन-बुद्धि को ब्रह्मानन्द की सुगंधित हरियाली से सुसज्जित कर देता था। सभी महात्माओं के जीवन का यही लक्षण रहा है। पौराणिकों ने अपने काव्यमय वर्णन में इसका मनोहर उल्लेख कैसा उत्तम किया है कि अमुक के आगमन से सूखे वृक्षों में नई पत्तियाँ और कलियाँ निकल आई, अंगूरों के बाग हरे-भरे होगये, और सूखे सोते मानों हर्षोन्माद में स्फटिक जल की धारा बहाने लगे।

समुद्र-यात्रा में स्वामी राम को उनके अमेरिकन सहयात्रियों ने अमेरिकावासी समझा था। जापानी उनसे ऐसा स्नेह करते थे कि मानों वे उन्हीं के देश के हैं। जब वे उनके देश से अमेरिका को चल दिये थे, तब उनके अनेक परिचित जापानियों ने कहा

था कि अब भी हमें अपने कमरों में उनकी विद्युत् मुस्कान के दर्शन होते हैं। उनके ललाट की चमत्कारिणी विशुद्धता अब भी हमें अपने प्रिय फुजीयामा हिम-शिखर की भांति याद है। उनकी भगवे वस्त्रधारी आकृति, जो वहाँ व्याख्यान दिया करती थी, जापानी चित्रकार को अग्निस्तम्भ प्रतीत हुई, जो श्रोताओं में शब्दों की नहीं, किन्तु जीवनस्फुलिङ्गों की वर्षा कर रही थी। कैलिफोर्निया में ब्रह्म-ज्ञान का मशाल रूप हिमालय पर्वत का बुद्धिमान् पुरुष कहकर उनका अभिनन्दन किया गया था, जिनके अनुभव के सामने सभ्यता के प्राचीन क्रम का उलट जाना अनिवार्य था। वे अमेरिका की सब रियासतों में घूमे और उतने ही व्याख्यान दिये, जितने दिन कि वे कोलम्बिया में ठहरे। उन्होंने कहा—"मैं बनाने आया हूँ, बिगाड़ने नहीं।" ईसाई गिरजों में उन्होंने व्याख्यान दिये। उनके व्याख्यान वैसे ही नवीन होते थे, जैसे व्याख्यानों के अपूर्व नाम। डेनर में बड़े दिन की संध्या पर उनके व्याख्यान का विषय था, "Every day a new year's day and every night Xmas night" "प्रत्येक दिन नये वर्ष का दिन है और प्रत्येक रात बड़े दिन की रात है।" एक अमेरिकन ने उनके व्याख्यानों का संक्षिप्त वर्गीकरण निम्नलिखित नाम देकर किया हैः—

(१) तुम क्या हो? (२) आनन्द की कथा और घर। (३) पाप का निदान, कारण और उपाय। (४) प्रकाश या अनुभव (५) आत्मविकास। ज्योतियां ज्योति। (७) दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-स्वातंत्र्यवाद का समन्वय। (८) प्रेम व भक्ति द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार (६) व्यावहारिक वेदान्त। (१०) भारत।

और अमेरिका में दिये हुए अपने उपदेशों का सार स्वयं राम ने १६ प्रकार दिया हैः—

(१) मनुष्य ब्रह्म है।

(२) संसार उसकी सहकारिता करने को ाध्य है, जो सम्पूर्ण संसार से अपनी एकता अनुभव करता है।

(३) शरीर को उद्योग में और और मन को प्रेम तथा शान्ति में रखने का ही अर्थ है यहीं अर्थात् इसी जीवन में पाप और दुख से मुक्ति।

(४) सबसे एकता (At-one-ment) प्रत्यक्ष अनुभव से हमें निश्चल निश्चिन्तता का जीवन प्राप्त होता है।

(५) सकल संसार के धर्मग्रन्थों को हमें उसी भाव से ग्रहण करना चाहिए, जिस भाव से हम रसायनशास्त्र का अध्ययन करते हैं और अपने अनुभव को अन्तिम प्रमाण भी मानते हैं।

दो वर्ष से भी कम में उन्होंने अमेरिका में कितना कार्य किया, अथवा जिन अमेरिकनों को उनका संसर्ग हुआ उन पर कैसे प्रभाव पड़े, इसका सविस्तार वर्णन मैं यहाँ नहीं कर सकता। किन्तु अमेरिका से भारत को लौटते समय विदाई की सभा में कुछ अमेरिकनों ने निम्नलिखित जो कविता पढ़ी थी, उसे विना उद्धृत किये मैं नहीं रह सकता—

Like Golden Oriole neath the pines
Rama chants to us his blessed lines.
Rich freighted with the Orient's lore,
He spreads it on our western shore.
A bird of passage on the wing,
He brings a message from the King.
And this his clear resounding call—
All, all for God, and God for all!
His message given he flits afar
Like swiftly coursing meteor.

But leaves of heavenly fire a trace,
A new born love for all his race.
Adieu, Sweet Rama, the radiant smile,
A Soul in Hades would beguile.
And though we may not meet again
Upon this changing earthly plain,
We know to thee all good must be
For thou art in God and God in thee.

डाल रसाल पै बैठी सी कोयल "राम" हमें नित गाय सुनावत।
शोरीं भरी पंडिताई से बातें हैं पूरब की जो विशेष कहावत॥
देश हमारे प्रतीची कृपा करि हैं उनको विस्तार बढ़ावत।
मारग के तो पंछी हू बने ये संदेश सुरेश को पूरो हैं लावत॥
घनघोर पुकार यों गूँजति है सुन लेहु जो चाहत याहि सुनो।
"है ईश की वस्तु सभी जग की पुनि ईश सभी के सदा ही सुनो"॥
समुझाय संदेश यों दूरि भजे द्रुत तारा है टूटत रात मनो।
पै स्वर्ग की ज्योति को लेश सो छोड़ि चले हेतु स्वजाति के प्रेमदुनो॥
प्रिय राम हमारो है अन्त प्रणाम कछू जिमि ओरहु बूझि परे।
मृदु हाँसी तुम्हारी अनोखी बड़ी जो निर्जीवहु में नव शक्ति भरे॥
यहि लोक में फेर चहे न मिलें पर दिव्य प्रभा न कभी विसरे।
तेरो भलो है सदा ही घनो, हरि राजे तुम में तू हरि में विहरे॥

मिस्र में मुसलमानों ने उनका हार्दिक स्वागत किया था। वहाँ मसजिद में राम ने उनको फ़ारसी में एक व्याख्यान दिया। दूसरे दिन समाचार पत्रों ने लिखा कि स्वामी राम एक अलौकिक बुद्धिशाली हिन्दू हैं और उनसे मिलना बड़े ही गौरव की बात है। टोकियो के राजकीय विश्वविद्यालय के संस्कृत कालेज के अध्यापक टका कुटसू ने कहा था कि राम ऐसे किसी अन्य सच्चे भारतीय तत्ववेत्ता के दर्शन मुझे आज तक नहीं

हुए। ऐसा ही उनका प्रेम था। भारत लौटने पर मथुरा में उनके कुछ भक्तों ने एक नया समाज चलाने की प्रार्थना की थी। इस पर राम ने कोरा जवाब दिया और कहा कि भारत में जितनी सभायें काम कर रही हैं. वे सब मेरी ही हैं और मैं उनके द्वारा काम करूंगा। इस समय उन्होंने हर्षोन्मत्त होकर नेत्र मूँद लिये, प्रेममय आलिंगन के चिह्नस्वरूप अपने हाथ फैलाये और अश्रुपात करते हुए नीचे लिखे शब्द कहे, जो उनके महान् विश्वव्यापी प्रेम तथा महान् आत्मिक मौनता पर बड़ा प्रकाश डालते हैं:—"ईसाई, हिन्दू, पारसी, आर्यसमाजी, सिख, मुसलमान और वे सभी जिनकी नसें, अस्थियां, रक्त और मस्तिष्क की रचना मेरे प्रिय इष्टदेव भारत भूमि का अन्न और नमक खाकर हुई है, वे सब मेरे भाई हैं, नहीं नहीं, मेरे ही प्राण हैं। कह दो उनसे मैं उनका हूँ। मैं सबको आलिंगन करता हूँ। मैं किसी को परे नहीं करता। मैं प्रेम हूँ। प्रकाश की भाँति प्रेम प्रत्येक वस्तु को प्रकाश के चमत्कार से आच्छादित करता है। ठीक ठीक मैं प्रेम की क्रान्ति और प्रवाह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ। मैं सबसे समान प्रेम करता, हूँ।"

"I shall shower oceans of love
and bathe the world in joy !
If any dare oppose, welcome ! come
For I shall shower oceans of love,
All societies are mine ! mine welcome ! come !
For I shall pour out floods of love.
Every force is mine, small or great, welcome ! come !
O ! I shall shower floods of love
Peace ! Peace !!"

बनि घनघोर मेघ घेरि के गगनमंडल, बड़े-बड़े बूँदन सों म बरसावेंगे।
साहस बढ़ाय के करिहैं प्रतिरोध कोऊ, बाँह धरि वाको वाही प्रेम में न्हवावेंगे॥
सभायें बड़ी औ भारत समुदाय जेते, उन सो कदापि नाही विलंब बनावेंगे।
शक्तियां हैं जौन स्वागत सभी को आज, शान्ति सुख प्रेम की बहिया बहावेंगे॥

राम विचित्र पुरुप थे। वे वर्तमान और भावी मानव-जाति की विश्वव्यापी एकता में हृदय और चित्त से अपने को विलीन कर देना चाहते थे। जो अद्भुत अभेदता उनकी अंग्रेजी कविता में कुछ स्पष्ट हुई है। वह उनके इस लोकयात्रा के अल्पकाल का महान् कार्य है पूर्ण आत्मानुभव की प्राप्ति-निमित्त उन्होंने दिन-रात प्रयत्न किया। जहाँ कहीं उनकी दृष्टि पड़ी, उन्हें सब कुछ ईश्वरमय दिखाई दिया। वे अनुभवी योगी थे। उनमें बुद्धि और भाव का अत्यन्त अनुशीलन मिश्रित रूप से था। रावी नदी के तट पर उनकी अनेक रात्रियाँ योगाभ्यास में बीतीं। अनेक रातों वे इतना रोये कि सवेरे बिछौने की चद्दर भीगी मिलती थी। कहा जाता है कि अपने पूर्वाश्रम में जब वे कट्टर ब्राह्मण थे और उनका हृदय प्रेम वा भक्ति के संस्कारों से परिपूर्ण था, उन दिनों सनातनधर्म-सभाओं में भक्ति या कृष्ण पर व्याख्यान देते समय उनके मुख से जितने शब्द निकलते थे, सभी आँसुओं में तरबतर निकलते थे। अपनी इस आध्यात्मिक उन्नति की अवस्था में वे कहा करते थे कि अनेक बार जाग्रत दशा में खुले नेत्रों से मैंने मेघवर्ण कृष्ण को कालीनाग के मस्तक पर नाचते और वंशी बजाते देखा है। बाद को उन्होंने यों कहा था कि "यह मन की एकाग्रता की विशेष अवस्था थी, मेरी ही कल्पना के प्रत्यक्ष रूप का मेरे ही मन के उतावले-पन के सिवाय वह और कुछ भी न था।"

वे जन्म से साधु थे। छात्रावस्था में भी उनका जीवन घोर दीनता और अति भयंकर परिश्रमों एवं निःशब्द यातनाओं,

कठोर तथा दुस्सह कायक्लेशों में बीता। यहाँ तक कि कभी कई-कई दिन तक लगातार उन्हें भोजन भी नसीब नहीं होता था। आहार की कमी के होते हुए भी आधी-आधी रात तक पढ़ने में परिश्रम करते थे, और प्रायः गणित के प्रश्नों में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि उन्हें घंटों का बीतना जान ही नहीं पड़ता था और सवेरा हो जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि भविष्य में उन्हें जैसा जीवन व्यतीत करना था, वे जान-बूझकर उसके लिए अपने को तैयार कर रहे थे। अध्यापक होने के पूर्व ही असीम स्वावलम्बन, जिसे वे बाद में निश्चल निश्चितता कहते थे, प्रौढ़ विश्वास, कुछ गम्भीर निश्चय और महान् प्रण-शक्ति वे अपने में उत्पन्न कर चुके थे। और ऐसे ही उन्होंने गणितशास्त्रीय मन का विकास भी अपने में कर लिया था जो कि अनुभवसिद्ध तथ्यों की जानकारियों के लिखने में यथार्थ, अपनी तर्क शैली (युक्ति) व विश्लेषण में ठीक और ऐसे ही परिणामों के निकालने में नितान्त स्पष्ट और असंदिग्ध उतरता था। उन्हें पदार्थविज्ञान से प्रेम था और रसायन तथा वनस्पतिशास्त्र का शौक़ था। तत्त्वविज्ञान शास्त्र से प्रेम विकासवाद उनका विशेष विषय था। उन्होंने समस्त पश्चिमीय और पूर्वीय दर्शन-शास्त्रों का अपने ढंग से पूरा-पूरा अध्ययन किया था। उन्होंने शंकर, कणाद, कपिल, गौतम, पतञ्जलि, जैमिनि, व्यास और कृष्ण के ग्रन्थों के साथ-साथ काँट, हेगल, गेटे, फ़िक्टे, स्पाइनोज़ा, कोम्टे, स्पेंसर, डार्विन, हीमल, टिंडल, हक्सले, स्टार, जार्डन और प्रोफ़ेसर जेम्स के ग्रंथों में भी पारदर्शिता प्राप्त की थी। फ़ारसी, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत-साहित्यों में वे दक्ष थे। सन् १९०६ ई० में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन किया था और प्रत्येक मंत्र के पूर्ण पंडित थे। वैदिक ऋचाओं के प्रत्येक शब्द का विश्लेषण वे शब्दशास्त्र की

शुद्धता से करते थे। इस प्रकार उन्होंने अपने को विलक्षण विद्वान् बना लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी आयु के तेंतीस वर्षों के प्रत्येक क्षण का उन्होंने अत्यंत सदुपयोग किया था। अपने अन्त समय तक वे कठोर परिश्रम करते रहे। अमेरिका में दो वर्ष के प्रवासकाल में, सार्वजनिक कार्यों में घोर श्रम करते हुए भी, प्रायः समस्त अमेरिकन साहित्य उन्होंने पढ़ डाला था।

संसार के सब ग्रन्थकारों, अवतारों वा महात्माओं, कवियों और योगियों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते समय वे एक अद्भुत रसिकता का परिचय देते थे। उनकी अनोखी तथा निष्पक्ष आलोचना में किसी प्रकार का पाण्डित्य प्रदर्शन, बनावटी अभिमान की नाममात्र छाया, अथवा कोई निस्सार बात नहीं होती थी। बातचीत करते समय वेद से लगाकर किसी नवीन से नवीन मौलिक पंक्ति तक का जो विचार उनके दिल पर चुभ जाता था, वह यथायोग्य उनके विचारों के समर्थन में सहायक भी होता था तथा उन्हीं का अनुभव-सिद्ध सत्य उसे प्रकट करना पड़ता था। वे अत्युच्च कोटि के विद्वान् तत्त्वज्ञ और ब्रह्मवादी थे। बुद्धि की उन्नति के साथ-साथ वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति को भी बड़े ऊँचे शिखर तक पहुँचा सके थे। लाहौर की घनी बस्ती अब उनकी आत्मोन्नति अधिक कर सकने में असमर्थ थी। जो कुछ समय उन्हें मिलता था, वे उसे उपनिषदों और प्राचीन आर्य-ब्रह्मविद्या के रहस्यों के विचार में हिमालय की पहाड़ियों तथा जंगलों में बिताते थे।

हृषीकेश के निकट, ब्रह्मपुरी के घने वन में स्वामी राम का अभीष्ट सिद्ध हुआ था—अर्थात् उन्हें आत्मा का साक्षात्कार हुआ था। यही वह स्थान है कि जहाँ उन्हें मन की उस भयातीत आनन्दमय एकता की प्राप्ति हुई थी जिसमें न खेद है और

न भ्रम। विश्वात्मा को ही जब कोई अपनी आत्मा समझने लगता है, तब अखिल विश्व उसके शरीर का काम देता है।" अपने इस महान् नियम के निरूपणार्थ उसके तथ्यों का संग्रह उन्होंने यहीं किया था। न केवल समस्त प्राचीन दार्शनिकों और योगियों के वे सच्चे सम्राट और आत्मनिष्ठ (तत्त्ववेता) थे, किन्तु शारीरिक व्यायाम के भी बड़े भारी पक्षपाती थे।

वे स्वयं एक विश्व ब्रह्माण्ड थे, जिसके नगर उनकी ज्योति से बने हुए थे। जिनकी गलियों में बुद्ध भगवान् अब भी अपना भिक्षा-पात्र लिये घूमते थे और हजरत ईसा अब तक सत्य का प्रचार करते थे। राम के हृदय-आकाश से कोई महापुरुष नहीं लुप्त हो सका। वे ऐसे अमर प्राण स्वरूप थे कि मृतक भी वहाँ पहुँचकर जी उठते थे। इस तेजोमय मन के आकाश में सत्य का प्रकाश स्पष्ट था। उनके प्रकाश की दमक के प्रभाव से जो कोई मनुष्य अपने बड़प्पन, शक्ति तथा बुद्धि चमत्कार का मिथ्याभिमान भी करता था, उसके हाथ अपनी योग्यता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं लगता था। श्रुतिताँ और स्मृतियाँ, पद्य और गीत, विचार और विषय, तत्त्वज्ञान और धर्म तथा राजनीति और समाज की समस्यायें ये सब एक साथ ही उनके दिव्य प्रकाश में परस्पर संघर्ष करते थे और राम के अनुभव-ज्ञान के वस्त्र पहनकर सुखप्रद सौंदर्य के साथ ' वे बाहर निकलते थे। वायुमण्डल, अड़ोस-पड़ोस और समाज पर पूरा प्रभाव पड़ता था, यहाँ तक कि मनुष्य की आकृति तक बदल जाती थी। जल-वायु का प्रभाव पड़ने पर उसके मुखमण्डल की ज्योति तक में स्पष्ट अन्तर पड़ जाता था। कोई भी भावना, कोई भी समस्या, कोई भी साधारण विचार, राम को स्पर्श करते ही, राम की अन्तरात्मा के रहस्यमय प्रभावों से परिवर्तित होकर नये स्वरूप में प्रकट होते थे। जब वे ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान देते

थे, तब उस विषय का उपदेश एक ऐसे नये ढंग से होता था, जैसे पहाड़ सूर्य,उदय के समय दिखाई पड़ता है। यज्ञ, प्रेम वा भक्ति, धर्म, आत्मानुभव और आत्मविकास पर उनके लेख पढ़िये। हमें विदित होता है कि जैसी व्याख्या उन्होंने की है, वैसी न तो दूसरे किसी ने की है और न कर ही सकता था। देशभक्ति और उसके सिद्धांत का क्या उन्होंने अनोखा सम्पादन नहीं किया है? मैं शपथ खा सकता हूँ कि वे सूर्य या चंद्रमा के प्रकाश से तुमको, मुझको, उसको या इसको कदापि नहीं देखते थे। वास्तव में, न सूर्य को और न चंद्र को ही वे उनके प्रकाश देखते थे। वे वस्तुओं को अपने आत्मा की ज्योति से देखते थे, अतएव वे उनके लिए अपने से पृथक कोई भी पदार्थ नहीं थे। वे स्पष्ट कहते थे "सूर्य" की लाल किरणें मेरी नसें हैं।" कोई भी वस्तु उनकी दृष्टिगोचर हुई कि उन्होंने परमात्मा का रूप उसे पहनाया और फिर उनको परमात्मा से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। उन्होंने प्रकृति से एक विचित्र नाता जोड़ रक्खा था। उनका मुस्कराना वर्षाऋतु में धूपवत् था और रोना गरमी के ठीक दोपहर में जलवृष्टिवत्। मेघ उनके शिर पर छाया रखते थे, छतरी की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। वे घने वनों में रहते थे, आधी रात मार्ग-शून्य कंदराओं में विचरते थे और नाहाँ पदार्थों के भीतर इस सुगमता से घुसते थे, जैसे पक्षी हवा में उड़ते हैं।

वे कवियों के भी कवि थे। पहाड़ी नदी का नाद उनके लिए यथेष्ठ समागम था। उनके लिए पक्षी वृक्षों की छाया के नीचे प्रकृति के रहस्यों का वर्णन करते थे। विश्व-संगीत उन्हें सुनाई देता था। और उनके परमप्रिय कृष्ण ही इस विश्व-नृत्य और विश्व समाधि में मूर्तिमान् थे। समुद्र की थिरकती हुई लहरों में, वनों के (वृक्षों के) डोलने में जंगल तथा वनों में उन्हें सार्वभौम सौंदर्य

दिखाई देता था। प्रकृति की आत्मा (असली स्वरूप) से एक होना ही वे अपना वास्तविक आचरण समझते थे। किसी मनुष्य को इस केन्द्र में डाल दो और फिर उसे वहाँ अकेला छोड़ दो अर्थात् अकेला विचरने दो, तो मनुष्य और सदाचार के सर्वोत्तम हितों को उसके पास आप सुरक्षित समझिये। मनुष्य वहीं बढ़े जा सकते हैं, न कि विद्वत्ता और पाण्डित्य के पुतलीघरों में। वहाँ मनुष्य को बैठकर अपने स्वरूप अर्थात् अपने आत्मा के दर्शन भर कर लेने दीजिये, फिर निश्चय रखिये कि वह अपने अचल और दुर्जय स्वरूप चट्टान पर खड़ा होगा। "कोई बाहरी चट्टान मुझे आघात नहीं पहुँचा सकती"। आत्म-साक्षात्कार ही धर्म है। आत्मशक्ति का यह साक्षात्कार कि "मेरा आत्मा ही वह शक्ति है, जो अखिल विश्व को अनुप्राणित करता है, और जड़ तथा चेतन की प्रत्येक नस की गुप्त शक्ति है," प्रत्येक सर्वसाधारण मनुष्य को भी उन महाविजयों के राजमार्ग पर डाल देता है कि जो मनुष्ययोनि में कठिन से कठिन है। मनुष्य की सर्वसफलताओं का यही मूल-मंत्र है। व्यावहारिक ब्रह्मविद्या के मंदिर के उपासकों के सिवाय और किसी का भी हृदय शुद्ध मुखमण्डल प्रभा-पूर्ण और स्वभाव हँसमुख नहीं होसकता। मेरी ब्रह्मविद्या कोई मत नहीं है, न पंथ वा संप्रदाय ही है, बल्कि जीवन के शाश्वत अनुभव से श्रेष्ठ बुद्धिमानों द्वारा सिद्ध किये हुए परिणामों का समूह है।

सर्वोत्तम मानवीय काव्य उन्होंने प्रकृति में ही पढ़ा था, और सविस्तार शीतल हिम और पहाड़ी दृश्यों के सिवाय उनके हृदयाग्नि को कौन बुझा सकता था। किसी एक घर में रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। सबसे अधिक सुखी वे तभी होते थे जब हिमालय के वनों में नेत्रों को अर्ध बंद किये वे विचरते थे और महान् पर्वतराज की ओर कनखियों से देखते थे।

वे अपने समय के वेदान्त के एक बहुत बड़े आचार्य थे। वे समस्त हिन्दू धर्मग्रंथों के प्रत्यक्ष प्रमाण थे। विश्वात्मा से अभेदता रखनेवाले श्रेष्ठ हिन्दुओं के वे आदर्श पूर्ण गौरव थे। वृद्ध-धर्म (Law) के वे महान् व्याख्याता थे। पूर्ण सदाचार, पूर्ण संयम और धर्माचरण के वे पक्षपाती और प्रचारक थे, और मनोविज्ञान को मानव-चरित्र का पथप्रदर्शक बताते थे। उच्च कोटि का परोपकार उनके चित्त का साधारण स्वभाव था। वे दिन-रात कार्य और श्रम में लगे रहते थे, किन्तु अन्य लोगों की तरह अपना एक क्षण भी हिन्दू जनता की दशा सुधारने में नष्ट नहीं करते थे। उनका कथन था:—"केवल एक रोग है और एक दवा। राष्ट्र केवल दैवी विधानानुकूलता से नीरोग और स्वाधीन किये जा सकते हैं। इसीसे लोग ऋषि और देवों से बढ़कर बनाये जा सकते हैं। ईश्वर में स्थित हो; बस, सब ठीक है; दूसरों को ईश्वर में स्थित करो, और सब ठीक हो जायगा; इस सत्य में विश्वास करो, तुम्हारी रक्षा होगी; इसका विरोध करो, तुम कष्ट पाओगे।" वे अपने श्रम के लिए कोई पुरस्कार नहीं चाहते थे। अमेरिका से लौटते समय उन्होंने वहाँ के अपने कार्य-प्रशंसात्मक पत्रों की गठरी समुद्र में फेंक दी थी। अपनी मातृ-भूमि की ओर से अमेरिका में जो कार्य उनसे हुआ था, उसका ब्योरा केवल एक बार अमेरिका जाने ही से प्रकट होगा। अन्त में, यह कहा जा सकता है कि ऐसे अलौकिक बुद्धिमानों का आगमन इस संसार में अल्प काल के ही लिए होता है। वे अपनी कल्पना को पूरा करने को नहीं, किंतु दूसरों को राह सुझाने के लिए आते हैं। बिजली की चमक की तरह उनका कार्य केवल संकेतात्मक होता है, पूर्ति करने द्वारा कदापि नहीं। वे मनुष्य को राह दिखानेवाले कुछ सूत्र बताकर चंपत हो जाते हैं। इस प्रकार का प्रत्येक महापुरुष अपने जन्म-काल में

कुछ आवश्यक निर्माणात्मक शक्तियों का केन्द्र होता है। वे अपने विचित्र ढंग से मनुष्यों का प्रेम अपनी ओर खींच लेते हैं और जब लोग उन पर निर्भर करने लगते हैं, तब वे लोगों को बड़ी ही व्याकुलता की दशा में छोड़कर चल बसते हैं, ताकि लोग सावधान हों और अपने पैरों पर खड़े हों।

मनुष्य की आन्तरिक एकतावाला स्वामी राम का सिद्धांत, इस भारतरूपी छोटे से संसार के समस्त परस्पर विरोधी धर्मों और सम्प्रदायों का निस्संदेह एक बड़ा अपूर्व समन्वय है। उनकी प्रेम की शिक्षा राष्ट्रीय और व्यक्तिगत उद्योगशक्ति के अपव्यय रोकने की दवा है, जिससे कार्य और कार्यशीलता की मात्रा बढ़ती है। पदार्थ-विज्ञान और धर्म के बिखरे हुए समस्त तथ्यों का संयोग-रूप उनका चरित्र मानवीय आचरण के लिए नित्य आदर्श है। उनका एकमात्र सार्वजनिक कार्य जनता को उसकी अपनी अनभिज्ञता और दासता से मुक्ति कराना था। उनका व्यक्तित्व मनुष्य-मात्र के लिए स्वाधीनता और स्वतंत्रता का आकाशी दीपक था। क्योंकि उनका गान इस प्रकार था—

1

No, no one can tone me,
Say, who could have injured,
And who could atone me ?
No, no one can tone me.

2

The world turns aside
To make room for me ;
I come Blazing Light !
And the shadows must flee.

3

I come, O you ocean !
Divide up and part ;
Or parched up, & scorched up,
Be dried up, depart.

4

O mountains, Beware !
Come not in my way,
Your ribs will be shattered
And tattered to-day.

5

O Kings and Commanders
My fanciful toys !
Here's a Deluge of Fire,
Line clear ! my boys !

6

Advisers and Counsellors !
Pray, waste not your breath,
Yes, take up my orders,
Devour up, ye Death.

7

Go, howl on, O winds,
O my dogs ! howl free,
Beat, beat, Storms,
O my Bugles ! blow free.

8

I ride on the Tempests,
Astride on the Gale,
My Gun is the Lightning,
My shots never fail.

9

I chase as an huntsman,
I eat as I seize,
The hearts of the mountains,
The lands and the seas.

10

I hitch to my chariot
The Fates and the Gods,
With thunder of cannons
Proclaim it abroad.

11

Shake ! shake off Delusion,
Wake ! Wake up ! Be free.
Liberty ! Liberty !
Liberty ! Om."

सकहि हमहि को क्षति पहुँचाई, करे पूर्ति अस नहिं क्षमताई ।
सके मनाय हमें को भाई, कुपित करे नहिं यह मनसाई ॥ १ ॥
उठत देख मोहि जग इक ओरा, छोड़न हित शुभ मारग मोरा ।
जगमग ज्योति हमारे आवत, सगरी छाया आप परावत ॥ २ ॥
सुन सागर अब मोर अवाई, बीच फाटि कर मारग भाई ।
अथवा जर भुनि वन जा छारा, भये बिना नहिं तव निस्तारा ॥ ३ ॥
सुनहु कान दै भूधर मोरी, मारग त्यागि हटहु इक ओरी ।
कुशल नहीं नतु तुमरी आजू, गरद मिलहि सब अस्थि-समाजू ॥ ४ ॥

सेनानायक नृपति सब मम क्रीड़ा के लाल।
वहिया है यह वह्नि की भाग बचहु बेहाल ॥ ५ ॥
पारिषद हु अरु सचिव समाजा, बकहु व्यर्थ कृपया नहीं आजा।
अवशि करहू मम आज्ञा पालन, काल करहु भक्षण दुहुँ गालन ॥ ६ ॥
पवन जाइ गरजहु अति घोरा, कूकर मम भूकहु बरजोरा।
आँधी चलहु भयंकर भारी, मोरि दुंदुभी बजहु सुखारी ॥ ७ ॥
पवन प्रचण्ड हमारो वाहन, अन्धड़ चढ़े चलत हम राहन।
है बिजली बन्दूक हमारी, लक्ष्य न चूकत हौं गुणधारी ॥ ८ ॥
मनो अहेरी पाछे धावत, करत कौर ज्यों ही धरि पावत।
गिरिवरगण के हृदय महन्ता, भूमि खण्ड औ जलधि अनन्ता॥ ९ ॥
तोप शब्द घोषित करहु दूरि-दूरि सब जाय।
भाग्य और देवन सबहिं रथ निज लेहुँ भुलाय ॥ १० ॥
उठहु जगहु हे मीत! त्यागि देहु माया सबल।
ॐ स्वराज्य पुनीत जपहु सदा मानस विमल ॥ ११ ॥

अपने ही तत्वज्ञान (वेदान्त) पर उनकी अन्तिम घोषणा इस प्रकार है—

Pushing, marching labour and no stagnant Indolence,
Enjoyment of work as against tedious drudgery;
Peace of mind and no canker of Suspicion;
Organisation and no disaggregation;
Appropriate reform and no conservative custom;
Solid real feeling as against flowery talk;
The poetry of facts as against speculative fiction;
The logic of events as against authority of departed authors;

Living realization and no mere dead quotations,
Constitute Practical Vedanta.

जड़ आलस को काम चलत बड़त श्रम नेम ।
वेमन की तजि चाकरी सुवर काज सों प्रेम ॥

शंक के कीट भगाय कें दूरि सुशान्त अलापन में मन रांखें ।
नित छोड़ि चिवातन को चद रंग सुचारु सवारन को रस चाखें ॥
हैं साँचे सुधारन के मद भीजे औ लोक की रीति को नाँव न भाखें ।
बनावें नहीं मुख सों बतियाँ लहरें गहरी हियरे अभिलाखें ॥

साँची बातें जोरिके काव्य करें नव रंग ।
त्यागि कल्पना-डोरि को सेवत तथ्य पतंग ॥
हम देते नहिं मृतन के ग्रंथन केर प्रमाण ।
तरकावलि वटनान को सकल शास्त्र को प्राण ॥
जीवित अनुभव घनघटा बरसों तरक सुनीर ।
करों किनारे बाँधिके अवतरणन वेहीर ॥

किसी व्यक्तित्व और दलबन्दी से व्याकुल और क्षुभित न होकर जो महावाक्य अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि पर निरंतर मनन द्वारा एकाग्रता और समाधि होती है, वह स्वतः ही शक्ति, स्वतंत्रता और प्रेम में परिणत हो जाती है । यह असीम ब्रह्मत्व जो देह के प्रत्येक रोम में फड़क रहा है, यह शक्तिशाली अद्वैत, यह प्रबल भक्ति, यह प्रज्वलित ज्योति ही है, जिसे शास्त्र अचूक ब्रह्मशर कहते हैं ।

हे डगमग, चंचल, संशयात्मक चित्तो ! उत्साह-शून्य धर्मपरायणता और विधर्मपरायणता को अब छोड़ो । सब प्रकार का संदेह और 'अगर मगर' निकाल डालो, सब मत-मतान्तर तुम्हारी ही सृष्टि हैं । सूर्य चाहे पारे की थाली सिद्ध हो जाय, पृथ्वी उदाराकार या खोखला मण्डल भले ही प्रमाणित हो जाय, वेद सम्भव है, पौरुषेय ठहराये जा सकें, किन्तु तुम ईश्वर के

सिवाय और कुछ नहीं हो सकते, और कुछ नहीं हो सकते। तुम्हारी ईश्वरी भावना से निकला हुआ एक भी स्वर और शब्द घास की पत्तियों, वालू के कणों, धूलि के बिन्दुओं, हवा के झकोरों, व वर्षा की बूंदों, पक्षियों, पशुओं, देवताओं और मनुष्यों को ग्रहण करना पड़ेगा। गुफाओं और वनों पर वह गरजेगा, झोपड़ियों और गावों में घनघनायगा। बस्तियों और गलियों में गूँजेगा, नगरों से नगरों में जायगा, तथा समस्त संसार को परिपूर्ण और रोमाञ्च कर देगा। वाह री स्वाधीनता! स्वतंत्रता!

किसी नदी के पहाड़ी सोतों को सुमेरु के विपुल खज़ानों से भर दो, फिर उस नदी की सब शाखायें, धारायें और नहरें खेतों को समृद्धिशाली करने के लिए खूब सींचती हुई भरपूर बहेंगी। जीवन के सोते, प्रेम के मूल अर्थात् उद्गम स्थान और प्रकाश व सुख के झरने, अनन्त शक्ति, पवित्रता और ईश्वरभावना, इन सबको परिच्छिन्नात्मा का आलिंगन करने दो, और उसे स्थानच्युत करने दो, उसके भावों को तरवतर करने दो, मन को परिपूर्ण करने दो, फिर हाथ, पैर, नेत्र, नहीं-नहीं, शरीर की प्रत्येक स्नायु, वरन् अड़ोस-पड़ोस तक एकस्वरता वा एकता का स्वर्ग सभी अवश्य उत्पन्न करेंगे और शक्ति की बाढ़ को जगमगा देंगे।

राजसिंहासन पर नरेश की उपस्थिति-मात्र से दरबार में व्यवस्था स्थापित हो जाती है। इसी प्रकार से मनुष्य के अपने ईश्वरत्व का, अपनी निजी महिमा का आश्रय लेते ही समस्त जाति में यथाक्रम और जीवन का सञ्चार हो जाता है।

ऐ अल्प विश्वासियो! जागो! अपने पुण्य प्रताप में जागो! और तुम्हारी निजी राजकीय तटस्थता की एक दृष्टि, तुम्हारी दिव्य निश्चिंतता का एक कटाक्ष रौरव नरकों को मनोहर स्वर्गों में बदल देने में पर्याप्त होगा।

Come home,
O wanderer, home ! Om ! Om !!

घर आ घर ! ओ, परिव्राजक ! घर आ घर ! ॐ ! ॐ ! !

ऐ मन्दस्पन्द वायु ! चलो, ऐ पवनो ! इन शब्दों के साथ बहो, जिनका उद्देश्य वही है, जो तुम्हारा ।

"O laughter ! laughter !
Inextinguishable joy and laughter"

आहा ! आनन्द ! आनन्द !! अमिट प्रसन्नता और अह्लाद !

स्वामी राम से जापान में किसी ने पूछा, "आपका धर्म क्या है ?" उन्होंने कवि गेटे (Goethe) के शब्द में उत्तर दिया:—

"Let me tell you, what is man's supreme vocation
Before Me was no world,' tis my creation ,
It was I who raised the Sun from out the Sea
The moon began her changeful course with me."

घंधा कहा नर को शुभ श्रेष्ठ बतावत बात सुनो यह सांची ।
लोक पताल हुते नहिं एकहु सृष्टि जितो हमहीं यह राची ॥
ऐंचि समुद्र सों ऊँचो कियो तब ज्योति दिवाकर की जग नाची ।
थे द्विजराज चपाहिज दीन वै भये गतिशील हमें पुनि जाँची ॥

तो क्या सचमुच राम की मृत्यु हो गई ? वह राम, जिन्होंने अपने शरीर के विसर्जन के कुछ ही क्षण पूर्व लिखा था कि:—

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गंगा, भारत इत्यादि !

ऐ मौत ! बेशक उड़ा दे मेरे इस एक जिस्म (तन)को । मेरे और अजसाम (तन) ही मुझे कम नहीं । सिर्फ चाँद की किरणें चाँदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूँ । पहाड़ी नदी-नालों के भेस (वेष) में गीता गाता फिरूँगा । बहरे-मव्वाज (समुद्र की तरंगों) के लिबास (वस्त्रों) में मैं ही लहराता फिरूँगा ।

मैं ही बादे-खश-खराम (मन्दस्पन्द वायु) नसीमे-मस्तानागाम (मस्त चाल पवन) हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी भ्रमणशील मूर्ति) हर वक्त रवानी गति में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पोदों को ताजा किया। गुलों (पुष्पों) को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आंसू पोंछा, किसी का घूँघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़। वह गया। न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।"

---

* यह लेख मूल उर्दू में लिखा है, किन्तु यहाँ यथाशब्द इसलिए रक्खा है कि उर्दू से परिचित हिन्दी-भाषा-भाषी इसका मूल भाषा से आनन्द ले सकें। अन्य पाठकों को हिन्द-शब्दों की टिप्पणी से अर्थ स्पष्ट हो जायगा। इस अन्तिम लेख की फ़ैक्समिली अर्थात् फ़ोटो भी प्रतिष्ठान के दफ़्तर से मिल सकती है।

स्वामी रामतीर्थ

नित्य-जीवन का विधान

[देह-त्याग से कुछ ही मास पहले स्वामी राम ने कुछ एक पत्र अंग्रेजी भाषा में श्रीस्वामी नारायण को लिखे थे, जिनको तत्पश्चात् स्वयं स्वामी राम ने प्रकाशनार्थ एक उत्तम श्रृंखला में विस्तार देकर संपादित कर दिया था, और जो फिर अंग्रेज़ी की पाँचवीं आवृत्ति के तीसरी जिल्द के आरम्भ में उक्त नाम से प्रकाशित हुए।]

I. The dear ones part,
The foes depart,
Relatives die,
*Get Snapped all ties.
Our systems gay
May have their day
And pass away.
The trees decay
Birds merrily play
But fall a prey.
The flowers fade,

* (Get snapped the ties) alternate reading.

Light turns to shade,
Our loves are changed,
Beauties deranged,
Names, fames do wane,
All glory is vain !
Fickle, transient is all
This show, it palls.
All objects sweet
Attract but cheat.
They treat, deceive, defea

II. Any thing the best.
We choose for rest;
The last, the first,
That we choose to trust
When it feels our toes,
Lo ! down it goes.
No sooner we love,
Than things dissolve,
Of confiding we think
And in foam we sink.

III. Is all at last
A dream of past ?
Is nothing true,
He, I, or you ?
Is all a myth,
This kin and kith ?
Oh ! where shall I turn ?
To whom return ?

१ बिछुड़ते हैं प्रियजन, अलग होते हैं दुश्मन।
मरे जाते हैं बन्धु, मिटते हैं बन्धन॥
हमारी प्रणाली जो सुन्दर बनी है।
भले ही रहे या बिगड़ जायें इक दिन॥
नसेंगे ये कदंब; औ कलरव मचाते।
ये पत्नी भी दुनियाँ से उठ जायँ इक छन॥
मुरझा जायेंगे फूल, फूले हैं जो आज।
छाया से ज्योति का होता परिवर्तन॥
बदलतीं हमारी प्रणय प्रीतियाँ भी।
और सुन्दर स्वरूपों का होता विमर्दन॥
नाम सम्मान होते दुनिया के हैं नष्ट।
सब दिखावट, विभव, हाट हैं व्यर्थ अरु भ्रष्ट॥
क्षणिक हैं सभी, है न इनमें कोई बल।
है दुनिया तमाशा जो देती हमें छल॥

ये सुन्दर मोहक वस्तु सभी, प्यारी जो मन को लगती हैं।
पहले अपना मन हाथ में कर, छल से फिर मार गिराती हैं॥

२ चाहे सर्वोत्तम कुछ होवे, जिसको आधार बनाते हैं,
होवे वह प्रथम चाहे अन्तिम जिस पर विश्वास रखाते हैं।
जैसे ही करते स्पर्श चरण वे झट ही क्षीण हो जाते हैं,
हम जैसे प्यारे लगे करने, प्रिय पात्र तुरत भग जाते हैं॥
हम सोचा करते मन ही मन, विश्वास करें इन पर हम जब,
इतने में बुल्ला फूट पड़े, फिर डूब चलें मग में हम सब॥

३ क्या सचमुच में जो कुछ भी है—
वह सब अनंत का स्वप्ना है?
क्या 'मैं', 'तुम', 'वह' का भेद सभी,
कुछ भी नहीं किञ्चित् ही सत्य है?

The heart burns,
The breast that yearns ?
Oh ! unrequitted Love !
Oh ! innocent stricken Dove !

IV. See, in this scene of changing shows
There is a changeless One that glows,
In seeming death, decay and pain,
It changes dress but comes again.
Love That, nor dress ; love Him, nor things,
He changes the dress and flings ;

Old garments gone.
Fresh forms puts on.
He is neat and clean
And whenever seen.
New forms He wears
Unthought of, rare.

One order passed, another came,
In both is He, the same.
How sweet is loss, privation !
He bears Himself, 'tis Revelation.
How sweet His stripping grace !
Still sweeter the new face !
The sky, the breeze, the river, rose
such veils of gauze for self He chose.
Hide as Thou mayst, I feel Thee.
Covers don't conceal but reveal Thee.
The forms are chased by one another
That we may see the One they cover.

क्या प्रिय परिजन भी सब मिथ्या हैं ?
हा दैव ! किधर तब मैं जाऊँ ?
यह व्याकुल वक्ष, हृदय विदग्ध—
किसे समर्पित कर आऊँ ?
दुनिया में है प्रेम निरर्थक; कोई न प्रतिफल हाय !
'हंस' बिचारा दोष बिना ही यों ही मारा जाय !!

४ दुनिया के सब नज़ारे कैसे बदल रहे हैं;
पर इनमें एक अविकल देखो चमक रहा है ।
इन भासमान मृत्यु, दुःख और दर्द में वह
पोशाक भर बदल कर फिर फिर प्रकट रहा है ॥
उस पर ही प्रेम रक्खो न कि वस्तु, आवरण पर
नित आवरण बदल कर वह दूर कर रहा है ॥
प्राचीन वस्त्र छूटे; नित्य स्वच्छ सुन्दर पहने
देखो अचिन्त्य अनुपम नव रूप धर रहा है ॥
पहले प्रपंच टूटे, नूतन प्रकट हुए हैं,
दोनों ही वस्तुओं में, वह एक सा बसा है ॥
दुःख, हानियों में कैसी माधुर्य की घटा है,
इनमें ही व्यक्त होता, यों ही वह खुल रहा है ॥
उसकी यह नग्नता की शोभा मनोहर क्या !
पर नव-बदन-छटा तो उससे मधुरतरा है ॥
पर्दा उसने चुना है निज मुख ढकने को यह झिलमीदार ।
मन्द पवन औ गगन, नदी औ कुसुम आदि का सब विस्तार ॥
चाहो जैसे छिपो भले ही मुझसे छिपना है दुश्वार ।
पर्दे तुम्हें नहीं छिपाते, उलटे करते खूब उघार ॥
एक रूप के बाद दूसरे इसीलिये बस आते हैं—
देख सकें हम उसको जिसको ये इस तरह छिपाते हैं ॥

V

O what a rosary !
This world, I see,
One bead is told,
You say it dies ;
Another passes and another
and another,
Yet the thread survives.
That thread Divine
Is mine, is mine !
The golden thread I cherish;
Let pass the *forms* or perish

VI.

These fleeting forms—
Mere morning charms !
They dawn and die—
Mayavik lies !
These things that seem
Are nothing but dreams,
Of That Eternal Sun,
The Changeless One.

VII.

On foes and friends
I won't depend.
I won't recline
On *shows* divine.
For bodily health,
Or earthly wealth,
What care I ?
My Love and I !
To the seeming things
I will not cling,
These forms of dress—
Mere pawns of chess,
I'll see them all
Not moved at all.
There, that and this
I will not miss.
My Love is found,
It's all around.
Oh ! Him I trust,
Love Him I must.
The One in plurality,
The only Reality !
My all in all
On Him I call !
My friend so true
My *chela*, *Guru*,
My father, child,
My fireside !
My husband, wife,
My self, my life,
My only right.
The Light of lights
My storm, my calm,
My balm, my Rama.

Om !

५ अहा संसार एक माला है, भरा जिसमें अनेकों दाना हैं ॥
इक दाने को देख तुम नसते, "नहीं कोई तत्त्व इनमें" कहते ॥
एक के बाद इक बिगड़ता है किन्तु धागा कभी न घटता है ॥
कैसा सुन्दर दिव्य धागा है, हमारा है, वही हमारा है ॥
है स्वर्ण सूत्र पै मेरा दिल--क्यों न 'रूप' जायँ मिट्टी मिल ॥

६ प्रभातकालीन माधुरी ज्यों क्षणिक सदा 'नाम रूप' ही त्यों ॥
प्रपंच माया यह झूठा रचती--अभी बनी है अभी बिगड़ती ॥
अनन्त है जो रवि तेजवाला, है जो कभी न बदलनेवाला ॥
उस एक के ये स्वप्न भरे हैं, पदार्थ जो सर्व भासते हैं ॥

७ दोस्त दुश्मनों पै रक्खूंगा मैं हरगिज़ विश्वास नहीं।
दिव्य दर्शनों पर भी होगा हरगिज़ मुझे भरोसा नहीं ॥
शारीरिक नैरोग्य तथा पाने को पार्थिव वैभव भी।
मैं पर्वाह भला क्या करता ? मैं और मेरा प्यारा भी ॥
जो है भासमान दुनिया में, उन पै कभी न भूलूंगा।
इन शतरंज पियादों, गुड़ियों को निर्मम होकर मैं देखूंगा ॥
मेरा प्यारा मिला मुझे, अब उसको कहीं न खोऊँगा;
है सब ओर, उसे मानूं मैं, प्रेम में उसको देखूँगा ॥
अनेकता में है 'एक तत्त्व जो, केवल है जो सत्य वही।
है सर्वस्व हमारा वैभव, टेर रहा हूं उसको ही ॥
ऐसा पक्का दोस्त वही है, चेला औ गुरु भी मेरा,
जनक हमारा, प्यारा बच्चा, वही-वही घर भी मेरा ॥
प्राण-वल्लभा, अथवा पति मम स्वयं, और जीवन मेरा *
वही दीप्ति की दीप्ति अहो ! है केवल-मात्र स्वत्व मेरा ॥
झंझानिल और शान्ति हमारी, जीवन-मूरि हमारा 'राम'
अनेकता में है 'एक' तत्त्व जो वही वही है जो सत नाम ॥

* (अथवा पाठान्तर से)--'मैं और जीवन-धन मेरा ।

राम किसी मिशन (mission, खुदाई पैग़ाम या पंथ इत्यादि) का दावा नहीं करता। यह काम सब परमात्मा का है। हमें भगवान् बुद्ध तथा अन्य लोगों के आदर्श और उदाहरणों से क्या करना है ? हमारे मनों को तो दैवी विधान (Law) की प्रत्यक्ष आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। किन्तु भगवान् बुद्ध और ईसा मसीह भी अपने अनुयायियों और मित्रों से त्यागे गये। इस प्रकार वनवास के सात वर्षों में से पिछले दो वर्ष बुद्ध भगवान् ने नितान्त एकान्त में व्यतीत किये, और तब एक दीप्तिमान् ज्योति प्राप्त हुई (अनुभव हुई), जिसके बाद शिष्य लोग बुद्ध भगवान् के पास एकत्र होने लगे, और बुद्ध भगवान् ने भी आनन्द से उन्हें अपने पास आने दिया। प्यारे! सदाशयवान् (शुभेच्छु) माननीय सम्मतिदाताओं के मत और विचारों से प्रभावित मत हो। यदि इनके विचार ईश्वरीय नियमानुकूल होते, तो आज तक इन्होंने हजारों बुद्ध भगवान् उत्पन्न कर दिये होते।

धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता-पूर्वक जिस प्रकार मधु में फँसी हुई मक्खी अपनी टाँगें मधु से निकाल लेती है, इसी प्रकार रूप और व्यक्तिगत आसक्ति के एक-एक कण को हमें अवश्य दूर करना होगा। सब सम्बन्ध एक दूसरे के बाद छिन्न-भिन्न करने होंगे, सब बन्धन चट से तोड़ने होंगे ताकि अन्तिम ईश्वरकृपा इससे पहले मृत्यु के रूप में आकर सारे अनिच्छित त्यागों की पूर्णाहुति न कर दे।

दैवी विधान (Law) का चक्र बड़ी निर्दयता से घूमता फिरता है। जो इस विधान (नियम) को आचरण में लाता है, वही उस पर आरूढ़ होता है, अर्थात् वही उस पर अनुशासन रखता है। और जो अपनी इच्छा को दैवेच्छा (अर्थात् दैवी विधान) के विरुद्ध खड़ा करता है, वह अवश्य कुचला जाता

है, और दारुण पीड़ायें (Promethean tortures) झेलता है।

दैवी विधान त्रिशूल है। यह क्षुद्र अहंकार (अहंभाव) को छेद देता है। जो जान-बूझकर इस त्रिशूल रूपी सूली पर चढ़ता है, उसके लिए यह जगत् स्वर्गवाटिका हो जाता है। अन्य सबके लिए यह (जगत्) विनष्ट स्वर्ग (Paradise lost) है। यह दैवी विधान अग्नि है, जो सबके सांसारिक स्नेहों को भस्म कर देती है, मूढ़ मन को झुलसा देती है, और इससे बढ़कर अन्तःकरण को शुद्ध करती तथा आध्यात्मिक रोग के सर्व प्रकार के कीड़ों को नष्ट कर देती है।

धर्म इतना विश्वव्यापक (सार्वलौकिक) है और हमारे जीवन से इतना मार्मिक सम्बन्ध रखता है, जितना कि भोजन-क्रिया। सफल नास्तिक मनुष्य मानो अपने ही भीतर की इस पाचन-विधि को नहीं जानता है। दैवी विधान हमें छुरे की नोक के जोर से धार्मिक बनाता है, कोड़े लगाकर कर हमें जगाता है। इस विधान से निस्तार (छुटकारा) नहीं। दैवी विधान सत्य है। और अन्य सब मिथ्या है। समस्त रूप और व्यक्तियाँ दैवी विधान के सागर में केवल बुलबुले-से हैं। सत्य की व्याख्या ऐसे की गई है कि "सत्य वह है, जो निरन्तर (एकरूप, एकरस) रहे, अथवा रहने का आग्रह करे।" अब इस नाम-रूपमय संसार में ये सब सम्बन्ध, देह वा पदार्थ, संस्थायें और सभायें कोई भी ऐसी नहीं, जो इस त्रिशूल के विधान के समान सदा एकरस रह सकें।

ये मूढ़ और अदूरदर्शी जीव इस आदर्श रूप विधान की अपेक्षा वाह्य रूपों (व्यक्तियों) को क्यों अधिक प्यार करते हैं? इसलिए कि अज्ञान के कारण उनको ये व्यक्तियाँ और वाह्य रूप निरन्तर एकरस रहनेवाले सत्य पदार्थ दिखाई देते हैं, और दैवी विधान एक अस्पर्श्य क्षणिक मेघ सदृश (intangible evanescent cloud) भान होता है।

कठोर प्रहार और कष्टप्रद धक्कों से लोग बचाये जा सकते हैं, यदि वे उस पाठ को पढ़ने लग पड़ें जो कि प्रकृति माता उन्हें पढ़ाना चाहती है; अर्थात् "त्रिशूल (cross, सूली) या त्रिशूली (शिव) ही केवल सत्य है, और अन्य सब व्यक्तियाँ एवं प्रीति के पदार्थ क्षणिक आभास रूप, छाया-मात्र तथा मिथ्या प्रेत रूप हैं। ये बाह्य प्रिय-अप्रिय, मधुर-कटु रस, भासमान सौंदर्य और विचित्रता तो केवल नक़ाब (बुर्क़ा व ऊपर के पर्दे) हैं; जिन्हें बिहारीजी (विलासी स्वरूप) ने हमारी आँखों को अन्ततः अपनी महिमा दर्शाने के लिए अपने मुख पर डाल रक्खा है।"

जब शत्रु-मित्र के रूपों को हम सत्य मानते हैं, तब वे हमें धोखा देते और ठगते तथा विश्वासघात करते हैं। और जब हम उनसे बदला लेना शुरू करते हैं, तथा उनमें नीच स्वभाव और निकृष्ट प्रयोजन (उद्देश्य) आरोपित करते हैं, तब हम दशा को पहले से भी अधिक बिगाड़ देते हैं। जो सत्यता केवल परमात्मा में है, उसे जब हम मोह के कारण अपने मित्रों में आरोपित करते हैं, तो यह उनके प्रथम विश्वासघात का कारण होता है। फिर जब हम क्रुद्ध होते हैं, तो इस घृणा से हम उन (शत्रु-मित्रों के) रूपों में और भी अधिक सत्यता आरोपित करते हैं, जिससे अपनी पहली भूल को हम और भी दृढ़ कर लेते हैं। और इस प्रकार अधिकाधिक दुःखों को अपने ऊपर बुला लेते हैं। खबरदार (सावधान)! यह त्रिशूल (संपूर्ण त्याग रूप शिव) जीवन का अन्तिम उद्देश्य वा ध्येय है। यह जीती-जागती सचाई है, पत्थरों (स्थूल पदार्थों) से भी अधिक ठोस (concrete, प्रत्यक्ष वस्तु) है, अतः बहुत ठीक ही यह पाषाणलिंग से निरूपित या प्रतिपादित की जा सकती है। प्रमादी मन को सुधारने के लिए यह (त्रिशूल) पत्थर से भी कठोरतर चोट लगाता है। इसलिए इसे निरन्तर स्मरण रखना नितान्त आवश्यक है।

मुसलमान और ईसाई जब इस दैवी विधान या परमात्मा को 'ग़य्यूर' (ईर्षालु, Jealous) और क़हर (क्रूर वा कराल, Terrible) कहते हैं, तो कोई ग़लती नहीं करते। निःसन्देह यह नियम किसी व्यक्ति विशेष का पक्ष करने वाला (वा लिहाज़ करने वाला) नहीं है। किसी मनुष्य को संसार की किसी वस्तु से चित्त लगाने दो और त्रिशूल रूपी प्रकृति का क्रोध अनिवार्य्यतः उस पर अवश्य ही घटित होगा। यदि लोग इस 'सत्य' के ग्रहण करने में सुस्त हैं, तो वे इसलिए हैं कि उनमें ठीक-ठीक अवलोकन की शक्ति नहीं। वे प्रायः अपने व्यक्तित्व-सम्बन्धी बातों में कारण को उसी घटना में ढूँढ़ना पसन्द नहीं करते, बल्कि अपने दोषों के लिए दूसरों को दोष झट-पट देने लग जाते हैं, और एक निष्पक्ष साक्षी की भाँति अपनी कोपवृत्तियों और भावनाओं तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले परिणामों पर विचार-पूर्वक दृष्टि डालना जानते ही नहीं। धोखा हमें अवश्य मिलेगा, जब हम इन बाह्य रूपों पर विश्वास करेंगे, या जब हम अपने अन्तर्हृदय में इन मिथ्या पदार्थों और व्यक्तियों को वह स्थान देंगे, जो केवल एक मात्र सत्य के लिए उपयुक्त है, या जब ईश्वर के स्थान पर हम मूर्तियों (बुतों, idols) को अपने हृदय-सिंहासन पर बिठलायेंगे। अन्वयव्यतिरेक का नियम (Method of agreement and difference) तो अनात्मा की असत्यता के नियम को बिना किसी उपेक्षा के स्थिर करता है।

कितनी बार ऐसा नहीं होता कि हम पूर्णतः भद्र पुरुषों के वाक्यों पर चित्त लगाने से और उनमें ईश्वर से भी बढ़ कर विश्वास रखने से उनको उनके वाक्यों के अनुकूल भद्र नहीं बने रहने देते? कितनी बार हम दैवी विधान को भुला देने-वाला मोह अपने बच्चों के साथ करके उनकी मृत्यु या नाश को

निमन्त्रित नहीं करते ? कितनी वार हम अन्तर्हृदस्थ श्रद्धा को जो केवल ईश्वर (ईर्षालु, दैवी विधान) के अर्पण करने योग्य है, अपने मित्रों के शरीरों में अर्पण करके और उन (मित्रों) पर ही आश्रित होते हुए उन्हें विश्वासघातक नहीं बना देते ? जहाँ दैवी विधान यह चाहता है कि प्रभात से पहले (before the cock crows) *हम तीन वार से भी अधिक अपने गुरुओं को (ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी ऊँच-नीच सम्बन्ध से) अंगीकार न करें, वहाँ उनको अपने पर और (उनमें) अपनी श्रद्धा पर भरोसा दिला कर कितनी वार हम अपने जीवित गुरुओं को आध्यात्मिक उन्नति के शिखर से नीचे नहीं गिरा देते ?

कितनी वार अपनी स्त्रियों पर हमारी हृदयासक्ति(heart dependence) गृह-कलह और उससे भी बुरे-बुरे दृश्यों का कारण नहीं होती ? किसी भी वस्तु को आप ईश्वर से अधिक सत्य (महान्, serious) मानिये, और बस, दिव्य प्रेम (ईश्वर-भक्ति] अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से आप को बेध देगा।

निन्दनीय (अनुचित unworthy) प्रेम की बात तो अलग रही, उन गोपिकाओं का दृष्टान्त लीजिये, जिन्होंने अवतरित भगवान् की मोहिनी आकृति पर अपना हृदय निछावर कर दिया था, किन्तु इतने पर भी उन्हें अपनी भूल के निमित्त खून के भारी आँसू बहाने पड़े। शुद्ध प्रेम की मूर्ति सीताजी ने भगवान् राम के तेजस्वी रूप की सत्यता में निश्चय किया, तो उन्हें भी, अरे सीता जी को भी, अपनी भूल के लिए, अपने स्वामी (ईर्षालु, अमूर्त भगवान् राम, अर्थात सत्य राम, सब के प्रभु) द्वारा घोर कानन में भटकाये जाकर प्रायश्चित करना पड़ा।

---

*सेंट ल्यूकस की गोस्पल का अध्याय २२ देखो, जिसमें शिष्य की गुरु के प्रति विश्वासघातकता है।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद ।
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद ।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो लोकान् वेद ।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो देवान् वेद ।
वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो वेदान् वेद ।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो भूतानि वेद ।
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेद ।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः इमे वेदाः,
इमानि भूतानि, इदं सर्वम्, यदयमात्मा ॥ ७ ॥
(बृह० उप० अ० ४, ब्रा० ५, खं० ७)

अर्थः—ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र (किसी दूसरे के आश्रय) ब्राह्मणत्व को समझता है। क्षत्रियत्व उसे परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को देखता है। लोक उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र लोकों को जानता है । देवता उसको परे हटा देते हैं; जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र वेदों को जानता है। प्राणधारी उसको परे हटा देते हैं, जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र देखता है। प्रत्येक वस्तु उसको परे हटा देती है, जो वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये वेद, ये प्राणधारी, यह प्रत्येक वस्तु, जो है, यह सब आत्मा ही है। (श्रुति)

ये भासमान पदार्थ जो भोले प्राणियों को आकर्षण करते हैं, देखने में तो भगवान् कृष्ण की भोली मूर्ति के समान हैं, मन रूपी सर्प उनको झट निगलता जाता है; परन्तु भीतर पहुंचते ही वे पदार्थ अन्दर से छुरा चुभो देते हैं, मन रूपी सर्प के उदर को फाड़ डालते हैं; और तब लोग चिल्लाते

है—"अरे ! मेरा कलेजा फट गया ! मैं मरा ! मेरा सर्वनाश हो गया !!!" पर आपने अपने को नाम-रूपों से ठगा ही जाने क्यों दिया ? आप केवल सत्य को प्यार (अंगीकार) कीजिये, केवल ईश्वर से लगन लगाइये, भीतर (रोम-रोम में) उसे खूब धसाइये, ईश्वर को अपनाइये, ईश्वर के साथ ही रमण कीजिये, ईश्वर स्वयं हो जाइये, ईश्वर-जैसा व्यवहार कीजिये। यही जीवन है। जो कुछ विश्वसनीयता (faithfulness) और प्रेम इस संसार की वस्तुओं में है उसे तब तक आप देख नहीं सकते, जब तक उन्हें त्याग नहीं चुकते। ऐ मेरे प्यारो ! निश्चय करो कि एक मात्र ईश्वर सत्य है और अन्य सब मिथ्या है।

"ला इलाह इल लिल्लाह।"

यह ठीक है कि मुहम्मद को लोगों ने गलत समझा है, और प्रायः उसका अनुसरण भी गलत किया है। किन्तु जो कोई सत्य (तत्त्व) को देख लेता है, वह सम्मान-पूर्वक इस मत के आगे अवश्य सिर झुकाता है। यद्यपि यह मत एक-पक्षीय है, क्योंकि जो लोग इस सत्य में कि "ईश्वर से अतिरिक्त और कोई सत्य वस्तु नहीं" पक्का निश्चय न रखने के कारण सिसक-सिसक कर मर रहे हैं; उनकी चिरस्थायी (चिरकालीन) और दुस्साध्य व्यवस्थाओं का वह एकदम (तलवार से) अन्त कर देता है। वास्तव में हजरत ईसामसीह भी यही शिक्षा देते हैं, बुद्ध भगवान् भी यही सिखलाते हैं, और निस्सन्देह हमारा अपना प्रत्येक ऋषि एक न एक रूप में इसी वस्तु का उपदेश करता है। परन्तु इससे क्या ? उनकी शिक्षा और उपदेश अभी तक जीते भी न रहते, यदि वे श्रोतागण के निज अनुभव में आकर उनका हार्दिक समर्थन न पाते और यदि सब युगों में ज्ञान के अनुरागियों, निष्कपट, सच्चे एवं शुद्धात्माओं ने समय-समय पर अपने अनुभवों में लाकर उनकी साक्षी

न दी होती, यदि उन्होंने उनका स्पष्टीकरण और समर्थन न किया होता।

त्याग का नियम (विधान) एक ठोस सच्चाई है। कोई सार-हीन (क्षणिक) कल्पना (flimsy phantom) नहीं। राष्ट्रों के राष्ट्र इन पैग़म्बरों, अवतारों और नेताओं के केवल काल्पनिक भ्रमों से मोहित नहीं हो सकते थे। शताब्दियों की शताब्दियाँ बेचारे बुद्धि-भ्रष्टों की केवल कोरी कल्पना से ही नहीं बीत सकती थीं।

अपने दुःखों के असली कारण को न जान कर (जो कि दैवी विधान के प्रतिकूल चलना है) लोग अपने रोग के बाह्य लक्षणों को अर्थात् बाह्य दशाओं को दोषी ठहराने लग जाते हैं। जिस प्रकार अस्पष्ट स्वप्न (misty dreams) विस्मृति के अर्पण कर दिये जाते हैं, अर्थात् नितान्त भुला दिये जाते हैं, उसी प्रकार लोगों के अच्छे-बुरे आचरणों और संवादों (शब्दों) को अपने चित्त से नितान्त धो डालना चाहिए। स्वप्न चाहे भयंकर हो, चाहे मधुर, हम उसके साथ लड़ने या उसके समाधान करने का यत्न नहीं करते, बल्कि उल्टे हम अपने पेट को ही पीड़ित करते हैं। इसी प्रकार अच्छे-बुरे लोग जो भी मिलें, उनकी हमें पूर्ण उपेक्षा करनी चाहिए, और अपनी आध्यात्मिक दशा उन्नत करनी चाहिए। अपने और ईश्वर के बीच में इन भासमान अनिष्टों वा भाग्यों को खड़ा न होने दीजिये। कोई अपमान और दोष इतने भारी नहीं कि जिनको क्षमा प्रदान करने से मुझे संतोष मिले।

किसी वस्तु को ईश्वर से बढ़कर मत समझो, ईश्वर के बराबर किसी का भी मूल्य मत करो। निन्दा-स्तुति और आनन्द व्याधि सब के सब एक समान घातक हैं, यदि हम अपने को इनके अधीन समझें। अपने को ईश्वर भान (निश्चय) करो,

और अपने ईश्वर-भाव में आनन्द के गीत गाओ। निन्दा-स्तुति दोनों को इस प्रकार देखो, जिस प्रकार राम अपने शारीरिक रोगों को ईश्वर के दरबार का केवल किंकर मात्र समझता है, जो (किंकर) सर्वोच्च शासन के अधिकार से कहते हैं "इस घर (देहाध्यास) से एकदम बाहर निकल जाओ।" वे (किंकर) हमारी आज्ञा पालन करते हैं, जब हम निज स्वरूप के राजसिंहासन पर बैठते हैं; और वही कोड़े लगाते व पेट में छुरा भोंकते हैं, जब हम इस अन्ध-कूप (देहाध्यास) में प्रवेश करते हैं।

अनेक शासन भी जिनके नाम-मात्र के नियम (क़ानून) त्रिशूल (सूली) के ईश्वरीय नियम के अनुकूल नहीं हैं, अपना नाश कर लेते हैं। शाइलॉक (Shylock) के समान व्यक्तिगत अधिकार पर जोर देना, इस वा उस पदार्थ को अपना समझना, स्वत्व या अधिकार का भाव रखना, "क़ानून हमें यह दिलाता है" (the law grants it) ऐसा कहकर उस दैवी विधान (ईश्वरीय नियम) के विरुद्ध चलना है जिसके अनुसार जो कुछ हक़ (अधिकार) हम लोगों का है, वह केवल 'सत्य' (ईश्वर) है, और अन्य सर्व अधिकार असत्य (wrong) हैं। यदि कोई अन्य व्यक्ति इस सिद्धान्त (principle) को नहीं मानता है, तो कम से कम सन्यासी को तो अवश्य इसे अपने आचरण में लाना चाहिए।

दैवी विधान (ईश्वरीय नियम) सर्वव्यापी है, प्रत्येक का परम आत्मा है, और इस अर्थ में राम है। तथापि यह लघु आत्मा (व्यक्तित्व) को अवश्य ठोकरें मार कर निकाल देता और नष्ट कर देता है। यह (विधान) बड़ा निर्दयी है, परन्तु इसकी निर्दयता प्रेम का सार है, क्योंकि इस लघु आत्मा (तुच्छ अहंकार) की मृत्यु में ही असली अपने आप (परमात्मा) का और नित्य-जीवन का पुनरुत्थान है। जो कोई तुच्छ अहंकार को रखकर निज स्वरूप (King Self, परमात्मा) के विरोध

अधिकारों को चाहता है, वह मानो वृथाभिमान (vanity) के शिखर पर गिद्धों का भक्ष्य हो जाता है। वेदान्त की स्वतंत्रता (मुक्ति) कुछ इस परिच्छिन्न देहात्मा (व्यक्तित्व और देह) के लिए दैवी विधान से छुटकारा नहीं है। यह तो God (ईश्वर) को ठीक उलट देना, अर्थात् dog (श्वान) बनाना है। ※ लाखों प्राणी इस भूल के कारण प्रति घड़ी नाश होते हैं। इस दैवी विधान के क्रम को मूर्खता-पूर्वक उलट देने से हज़ारों मस्तिष्क निराशा में डूब रहे हैं और लाखों हृदय प्रत्येक मिनट टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। स्वयं दैवी विधान रूप हो जाने से विधान से छुटकारा मिलता है, यही शिवोऽहं का अनुभव (साक्षात्कार) है।

जो बाह्य रूपों (आकारों) की नींव पर विश्राम करता और घटनाओं तथा अहंकारों (facts and figures) के भरोसे रहता है, ऐसा मूढ़मति फेन पर घर बनाता है, और स्वयं उसके साथ डूबता है। पर वह व्यक्ति उस अचल शिला (पर्वत) पर अपना स्थान बनाता है, जिसके हृदय की तह में जमा पड़ा है—"ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या (ब्रह्म सत्य है, पर जगत् मिथ्या है) और दैवी विधान एक जीती-जागती शक्ति है।"

लोग इस शरीर को पौलिसीबाज, स्वार्थी, सर्व-गुण, मदोन्मत्त अथवा अन्य जो कुछ चाहें आनन्द से कहें, चाहे जिसे लोग अपमानित, पद-दलित और मृतक जैसा कहते हैं, वैसा ही इसको कह दें, मुझ (सर्व के आत्मा) को इससे क्या ?

I am Truth, the inevitable.
I am Law, the inexorable;

※ GOD (गॉड) का अर्थ है ईश्वर। इस अंग्रेजी शब्द के अक्षरों का क्रम उलट देने से शब्द DOG (डॉग) बन जाता है, जिसका अर्थ है कुत्ता, कूकर या श्वान।

To Know Me is to obey Me
To obey Me is to prosper.
Oppose Me, it will not annoy Me,
Ignore Me, I cannot be anxious,
But will calmly destroy him who slight.

मैं अनिवार्य सत्य हूँ,
मैं अनम्र (कठोर चित्त) विधान हूँ,
मेरी आज्ञा का पालना समृद्धि-द्वार है,
मेरा विरोध करो, मैं क्षुब्ध न हूँगा,
मेरी उपेक्षा करो, मैं उत्कंठित न हूँगा,
किन्तु शान्ति से अपमानकारी का नाश कर दूँगा।

यह खाली धमकी (गीदड़-भभकी) नहीं है। यह अत्यंत भयंकर (भीषण) सत्य है।

हमें कम से कम उतना खयाल और सत्कार तो सत्य (ईश्वर, ईश्वरीय नियम God, Law) के लिए अवश्य रखना चाहिए, जितना कि हम अन्यलोगों के भावों या विचारों के लिए रखते हैं। यदि दैवी विधान के प्रति विश्वसनीय, सच्ची और निष्कपट भक्ति के कारण लोगों के हृदय टूटते (चोट खाते) हैं, तो इसके लिए हम जिम्मेवार नहीं हो सकते। हमारे लिए तो सर्व प्रकार से ईश्वरीय नियम का भंग न करना कई गुणा अधिक चिन्तनीय होना चाहिए। जिनको हम अपना घनिष्ट सम्बन्धी या प्यारा कहते हैं, उन लोगों के भ्रम के अधीन होकर दैवी विधान के विरुद्ध होना अपने और उनके सिर पर आफ़त बुलाना है। ईश्वर से अधिक निकटतर कोई वस्तु नहीं है, और ईश्वर (सत्य, दैवी विधान) से बढ़ कर प्रिय कोई होना न चाहिए।

व्यंग्वो सोमव्रते तव मनस्तनुषु विभ्रतः (यजु० वेद)
For Thee, for Thee alone. O Lord!
O Law! I was keeping the mind in my body.

तव हेतु, एकमात्र तव हेतु—हे भगवान्, हे विधान!!
इस निज मन को मैं रखता हूँ शरीर में।

वैदिक काल में विशेष अवसरों पर, कुमारियाँ प्रज्वलित अग्नि के चारों ओर एकत्र होकर कर जोड़े प्रदक्षिणा करती हुई यह गीत गाया करती थीं—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥

अनुवाद—उस सुगन्धिमय, सर्वद्रष्टा, पति-वेदन (पति को जाननेवाले) की पूजा में, आओ, हम सब निमग्न हों। भूसी के (भीतर से) दाने की तरह हम लोग यहाँ के बन्धन (पितृ-गृह) से मुक्त हों, किन्तु वहाँ (पति-गृह) से कभी न (मुक्त हों)।

बिछुड़ती दुलहन वतन से है जब।
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
कि फिर न आने की है कोई ढब।
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥

प्राचीन आर्यकुमारियों की यह प्रार्थना राम के हृदय-पटल से गम्भीरता-पूर्वक निकल रही है, और उसके साथ अश्रु, अरे अश्रु, झड़ी बाँधे बह रहे हैं।

हे भगवान्! हे देवी विधान! हे सत्यस्वरूप! हमारे इस हृदय और मस्तिष्क (दिल और दिमाग़) में आपके अतिरिक्त यदि कोई सम्बन्ध घर करता हो, तो इन दोनों (दिल और दिमाग़) को तत्क्षण विदीर्ण कर दो। यदि आपसे इतर कोई और भाव

(ख्याल) उन नसों और नाड़ियों में प्रवाहित होता हो, तो उसी क्षण रुधिर को वहीं जम जाने दो।

अन्य श्रुति—अहम् जानि गर्भधना। त्वम् जासि गर्भ धन्॥

भावार्थ—"हे भगवान! स्त्री जैसे पुरुष का ज्ञान प्राप्त करती है, वैसे मैं ज्ञान प्राप्त करूँगा, मैं आपको अधिकतर निकट से आकर्षित करूँगा, मैं आपके शरीर (तन) का गुह्य रस (Secret juice) और आपका अधर पान करूँगा। ऐ स्वतन्त्रते! ऐ दैवी विधान!! मैं आपको अपने भीतर पूर्णतः धारण करूँगा।"

क्या राम का विवाह त्रिशूल, सत्य (तत्त्व) और दैवी विधान सेनहीं हो चुका, जो उससे वेश्या के समान अन्य सम्बन्धों और स्नेहों की आशा की जाती है?

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।

यह कोई अन्ध वेग (आवेश) नहीं है, और न किसी को हानि न पहुँचाने की स्वार्थमयी पॉलिसी (नीति) है। क्यों? भला निर्दोष राम ने क्या बिगाड़ा है, जो तुम उसे व्यक्तिगत सम्बन्धों की परिछिन्न सीमा के भीतर खींचना चाहते हो? उसे छोड़ दो, कृपया छोड़ दो (Spare him), अपने कुशल के लिए उसे छोड़ दो, उसे अकेला रहने दो (Leave him alone)। इसी में तुम्हारे देश का और मानव-जाति का कल्याण है। क्या तुम यह अनुमान करते हो कि राम के शरीर की यदि तुम आदर-पूर्वक हिफ़ाज़त (रक्षा न करोगे, तो वह कुकाल में मृत्यु को प्राप्त हो जायगा? नहीं, ईश्वर सत्य है, और ईश्वर में निमग्न जीवन (life in God) कोई कष्ट भान नहीं करता; और और यह शरीर जब तक ईश्वर का कार्य पूरा न कर लेगा, तब तक इसका पात नहीं हो सकता।

किसी के पवित्र व्रत में छेड़-छाड़ (हस्तक्षेप) करना अच्छा नहीं है। वह अपने और अपने व्रत (मनोभाव, ideal) के बीच

किसी को, नहीं-नहीं, बल्कि मृत्यु तक को भी नहीं खड़ा होने देगा। नास्तिकता की दृष्टि के अधीन इतिहास द्वारा प्राप्त हुए भावों वा विचारों (notions) के अनुसार कोई उस (राम) के चरित्र को खींचने वा घटाने का यत्न न करे। इस भासमान राम के प्रति अपने सत्कार, सम्मान और प्रीति (भक्ति) को परे रक्खो। इनसे असली राम (जो सबका अपना आप या आत्मा है) का अपमान है। परे हटो। नाम-रूपों के स्वप्न से जागो। जिस प्रकार दैवी विधानानुसार जीवन द्वारा राम ने उदर के अजीर्ण (dyspepsia) को दूर कर दिया है, इसी प्रकार देह-अध्यास और व्यक्तित्व के भ्रम को दूर करो। निज स्वरूप के तीक्ष्ण तेज को विषयासक्ति (इन्द्रियानुराग) पर केन्द्रीभूत (focus, एकत्र) करके उसको जला डालो। अपने चित्त में सांसारिक संस्कारों को किञ्चित् जगह मत दो; और उसे सदा असली राम से पूर्ण रक्खो।

वर हरचिः जुज़ दिल्बर बुवद।
अज़ शहरे-दिल बेरूँ कुनम॥

अर्थ—और अपने प्यारे के सिवा जो भी कोई खयाल होता है, उसे मैं अपने दिल के नगर से बाहर करता हूँ।

क्या ईश्वर कम से कम उतना मधुर नहीं, जितना कि विषय-भोग (इन्द्रिय-विषय) ?

लोग ईश्वर से प्रेम करने में हिचकते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि संसार की प्रीति के झूठे पदार्थों के समान ईश्वर से (प्रेम का) कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। यही मूर्खता भरा अज्ञान है, जो उन्हें भ्रम में डालता है। ऐ प्यारे! तत्क्षण ही, नहीं-नहीं, तुम्हारी छाती के साथ-साथ ही उस (परमात्मा) की छाती प्रतिसंवेदन में (in responsive impulse) धड़कती है।

इन बाहर के शत्रु-मित्रों में उनके आचरण का कारण मत

ढूंढ़ो। वास्तविक कारण तो एकमात्र तुम्हारे निज स्वरूप के आश्रित है (अर्थात् ठीक-ठीक कारण उसका तुम्हारे भीतर होता है)। वहाँ देखो।

जिस प्रकार एक नन्हा सा पक्षी, जो अभी उड़ना सीख ही रहा हो, एक पत्थर वा टहनी को छोड़कर दूसरे वैसे ही आधार पर जा बैठता है, फिर उसे भी छोड़ तीसरे पर, तीसरे से चौथे पर जा टिकता है, किन्तु भूमि के इन पदार्थों (आश्रयों) को नितान्त त्याग कर ऊँची वायु में नहीं उड़ता है। इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान में नव-प्रवृत्त पुरुष (नवीन जिज्ञासु) जब अपने चित्त को एक वस्तु से निरासक्त, या किसी व्यक्ति विशेष से उपराम करता है, तो तत्काल किसी दूसरी वस्तु के आश्रित हो जाता है, उसके बाद किसी अन्य वैसी ही वस्तु में आसक्त हो जाता है, किन्तु इन कोमल काई और तिनका (क्षणभंगुर पदार्थों) का आश्रय वह सर्वथा नहीं छोड़ता, और अपने हृदय से सारे संसार का त्याग नहीं करता है। अनुभवी ज्ञानी किसी सांसारिक पदार्थ की प्रत्यक्ष बेवफाई (निस्सारता, विश्वास-भंग) को अपने अनन्त स्वरूप में कूद पड़ने की सोपान-शिला बना लेता है। बाह्य अनुभव के प्रत्येक अंश को अनन्त स्वरूप में कूद जाने का अवसर बनाना ही धर्म की निपुणता (कौशल, साधन, art) है। ये भासमान पदार्थ सभी एक ही प्रकार के हैं, इस कारण जहाँ वह एक पदार्थ का बाहर से त्याग करता है, वहाँ तो उस त्याग को वह सब पदार्थों के आन्तरिक त्याग का चिह्न वा संकेत बना लेता है।

शोचनीय और वज्रवत् मूढ़ वह अवश्य होगा, जो हृदय वेधी तत्त्व को ऐसे नहीं पहचानता कि त्रिशूल—स्वार्थपरता व्यक्तित्व की मृत्यु ही—एकमात्र जीवन का नियम (नित्य

जीता रहने का विधान) है। त्रिशूल सारे व्यक्तित्व को परे हटा देता है; व्यक्तित्व (अहंकार) का दूर करना ही नित्य-जीवन का पुनरुत्थान (प्रादुर्भाव) है । चिरञ्जीव रहो, आशीर्वाद !

जीवन में मृत्यु

जब राम लाहौर से चला, उन दिनों विष्णु-पुराण, जो अद्वैत वेदान्त का एक बड़ा ही सुस्पष्ट ग्रंथ है, उसका फ़ारसी भाषान्तर वह पढ़ रहा था। विष्णु-पुराण के इसी फ़ारसी भाषान्तर का लेटिन अनुवाद है, जिसका उल्लेख एमर्सन (Emerson), थोरो (Thoreau) और उनके ही जोड़ तथा प्रकृति के अन्य लोगों ने अपने लेखों वा ग्रंथों में भारी उत्साह के साथ किया है। पञ्जाबी विष्णु-पुराण भी इसी फ़ारसी रचना का भाषान्तर है। बाबा काली कमली वाले का अनुभव-प्रकाश भी इसी पञ्जाबी विष्णु-पुराण का संशोधन वा परिवर्द्धन है। यह वह ग्रंथ है, जो स्पष्ट करता है कि मनुष्य कितने-कितने उच्च शिखरों पर रहा करता था। और इसके पृष्ठों में हम उस (बाबा काली कमलीवाले, पुस्तककर्ता) के आन्तर जीवन की भी झलक पाते हैं। वह उन करोड़ों मूल्य वाले कामों का रहस्य है जो कि आज उस अकेले के नाम से चुपचाप हो रहे हैं, जिसके समस्त वस्त्र और घर केवल एक काला कम्बल था, जो न तो बड़ा पण्डित (विद्वान्) ही था, और जो इस डर से कि मैं किसी एक परिवार पर भार न जान पड़ूँ, द्वार-द्वार से मधुकरी माँग कर खाया करता था। आज बाबा काली कमलीवाले के नाम पर प्रचण्ड वेगवाली (tempestuous) नदियों के ऊपर पुल बाँधे जा रहे हैं, सड़कें निकाली जा रही हैं, धर्मशालायें बनाई जा रही हैं, अन्न और वस्त्र बाँटे जा रहे हैं, विद्या-दान दिया जा रहा है, और मैदानों

की जलती-भुनती बालू पर तथा हिमालय के ऊँचे शिखरों पर बेकारों को काम दिया जा रहा है।

मनसूबों और पौलसियों (Plans policies, युक्तियों व कल्पनाओं) से धुंध और धुएँ से बढ़कर और कुछ नहीं सिद्ध होता। सच्चा काम सांसारिक उपायों (व चिन्ताओं) से नहीं होता; ईश्वरीय जीवन द्वारा ही होता है। कुछ लोगों के लिए भीड़ के बीच अति प्रवृत्त जीवन दिव्य जीवन बनाने का अज्ञात (Unconscious) सहायक होता है। कुछ के लिए एकान्त-सेवन ज्ञात (Conscious) साहाय्य (साधन) है; कुछ के लिए विपत्तियाँ बड़ी सामयिक आशीर्वादवत् होती हैं; कुछ सज्जनों का हृदय पुस्तकें लिखते समय प्रभु की लेखनी से प्रभावित होता है (व हृदय व प्रभु की लेखनी चुटकी भरने लग जाती है); कुछ लोग व्याख्यान देते-देते अपनी भीतरी अस्वच्छता (कालुष्य) को खो देते हैं, और प्रभु का प्रकाश उनके भीतर से चमकने लगता है; कुछ लोग घमासान-युद्ध में जुटे अपनी छाती को गोलियों का निशाना बनाते हुए देह अध्यास त्याग देते हैं, और संसार में वीर पुरुष प्रसिद्ध होते हैं; कुछ लोग कला-कौशल में निरत हो अक्षय सौन्दर्य को प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि चोर भी घर में सेंध लगाते समय यदि सफल होता है, तो याद रक्खो, उसे जितनी कुछ सफलता मिलती है, वह सब उसके उसी कम्पायमान करनेवाले अकथ्य, शब्द-विहीन (Wordless) और बिना विचारे आत्मसमर्पण की अवस्था के प्राप्त होने से और ऐसे ही अज्ञातत: अनन्त स्वरूप में पूर्ण निष्ठा और स्थिति पाने के कारण से ही मिलती है। और जो उसके कर्म की दुष्टता है, अर्थात् भासमान सम्पत्ति को जो सत्य मानना है, ऐसे दुस्साहस के लिए वह अवश्य अपने शिर पर दैवी विधान का कोष बुलाता है।

जिस परिणाम से हम जीवित हैं, अर्थात् सर्वरूप (परमात्मा) में मृतक (निमग्न, dead in the all) हैं, उसी परिमाण से कार्य पूर्ण होता है। यह जीवन अर्थात् तुच्छ अहंकार की मृत्यु ही काम पूर्ण करती है, न कि हमारा एकान्त सेवन, समाज, उपाय और युक्तियाँ। मूर्ख जीवनी लेखक (biographers) वाह्य विशेषणों और आडम्बरों को ही देखते हैं, और सफलता के असली तत्त्व (मूल-करण) की उपेक्षा करके पूर्णकार्यता (निष्पत्ति) का श्रेय कभी लेखन-शैली को देते हैं, तो कभी अनुयायियों की संख्या को, मानो जिस वृक्ष के तले बैठे मैं लिख रहा हूँ, उस पर जो-जो पक्षी बैठे हैं, मेरे कार्य की सफलता व असफलता उनके अधीन है। हमारे सुअवसर और स्थितियाँ कोई चीज नहीं हैं। वह प्राचीन ऋषि ही ठीक देखता है, जो योद्धा की विजय का कारण केवल आन्तरिक (इन्द्र) और वाह्य (देवता) को बतलाता है।

सुदा समिन्द्रा वरुणवंसावतम्। (ऋग्वेद, मंडल ७)

प्रतिदिन हम अपनी आँखों के सामने इसे देखते हैं, जैसा कि बुल्लाशाह ने कहा है कि "चिड़िया बाजों को निगलती है" (Sparrows vanquishing eagles), अर्थात् हमारे अति-प्रिय और होनहार (आशा-जनक) बुद्बुदे (असार आडम्बर) फटते हैं, और हजरत ईसा के शब्दों में, हमारी फेंकी हुई (rejected) ईटें विशाल भवनों (उच्च महलों) की नींव के पत्थर की जगह सुशोभित (glorified) होती हैं। भासमान परिस्थिति पर किसी प्रकार की निर्भरता या सांसारिक बुद्धि (चतुरता) हमारी सफलता (विजयों) में किञ्चित् भी कारण नहीं होती। हमारे समस्त सम्बन्ध, मित्रतायें, सम्पत्तियाँ, आशायें, प्रतिज्ञायें और अन्य साधन (अर्थात् मानो हमारा जगत्) केवल कोरा धोखा और मिथ्या गूढ़ाभिमान-मात्र है। उनकी तुच्छता (अकिञ्चन)

दर्शाने के लिए श्री सुरेश्वराचार्य्य या श्री शंकराचार्य की-सी सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता नहीं। जिनके नेत्र हैं, उनके लिए प्रत्येक थोड़ा-सा अनुभव भी भयंकर तोप के समान वेदान्त को गर्जना में यों गर्जता है--

तत्त्वमस्यादिवाक्यानां स्वतः सिद्धार्थबोधनात्
अर्थान्तरं न संद्रष्टु शक्यते त्रिदशैरपि ॥

अर्थः—तत्त्वमसि आदि वाक्यों के जो स्वतः सिद्ध अर्थ हैं, उनके बोधन से अतिरिक्त अन्य अर्थ देवता लोग भी नहीं कर सकते। अर्थात् यदि देवता लोग भी अपने स्वार्थ में आकर तत्त्वमसि आदि वाक्यों के अर्थ तोड़-मोड़ से कुछ का कुछ करना चाहें, तो वह नहीं हो सकता; क्योंकि इन वाक्यों के अर्थ स्वतः-सिद्ध हैं।

हमारे महात्मापन, सुधारकपन, सम्मान, पद, सम्बन्ध, सब के सब गति रात्रि के स्वप्नों, बीते हुए जन्मों, मेघाकारों, संध्या के प्रेतों और रोगी मस्तिष्क के विचारों के वेताल (कल्पित भूत-पिशाच) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। जब हम राम (ईश्वर) के प्रतिकूल (out of tune, विच्छिन्न) हो जाते हैं, तब हमें कोई मार्ग नहीं दीखता, हम दैवी विधान से च्युत होते हैं, और हमें घोर दुःख उठाना ही पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं, तब ठीक उपाय, ठीक प्रवृत्ति, ठीक प्रवाह आप ही आप हमारे हृदय में उठते हैं, और हमें धन-सम्पत्ति, भूप्रदेशों (lands-capes), पर्वतीय दृश्यों, शान्ति, समृद्धि और पवित्रता के निर्झरों (स्रोतों) के पास पहुँचाते हैं। अथवा (यों कहना चाहिए कि) हमारे भीतर आनन्दमय तेज (ज्ञानप्रकाश), जीवन और प्रेम हमारी ओर स्वयमेव दौड़ते हैं।

यही अहंकार की बलि का पाठ वैदिक काल की जटिल, भव्य और प्रभावशाली यज्ञ-विधियों की तह में छिपा हुआ है। मृत्यु

में जीवन का विधान (The Law of Life in Death) मुझे इतना ही कठोर और ठोस (संसार) सत्य जान पड़ता है, जितना कि प्राचीन ऋषियों को रुद्र । इसकी तनिक उपेक्षा करो कि घायल करनेवाले तीर तुम्हारी बगलों और छाती में जा चुभते हैं ।

नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवेनमः । बाहुभ्यां उत ते नमः ॥

अर्थः—हे रुद्र (अर्थात् दैवी विधान) ! प्रणाम है तुम्हारे कोप (रोप) को; प्रणाम है तुम्हारे अमोघ बाणों को; प्रणाम है तुम्हारी अथक बाहुओं को ।

हम लोगों के प्रत्येक छोटे से छोटे अनुभव में सारा इतिहास छिपा पड़ा है । हम लोग उसे पढ़ते नहीं । यदि हम उचित मूल्य दें, अर्थात् देहाभिमान (local self) को दूर करके साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर के भीतर से कार्य करने दें, तो बुद्ध भगवान् या हजरत ईसा हो जाना उतना ही सहल है, जितना कि निर्धन पाल (Paul) बने रहना । एक ही कोप (म्यान) में हम दो तलवारें नहीं रख सकते । यदि हम लोग बाहर से प्राप्त हुई निन्दा-स्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित कर लें, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जायँ, यदि जीतना व विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हो, यदि सत्य के उपदेश की अपेक्षा स्वयं सत्य बनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगायें, यदि हम (अपने कार्यों के लिए) उतना ही न्यून श्रेय लेकर कार्य किया करें, जितना कि सूर्य सर्वदा चमकने में लेता है, तो ईश्वरों के भी अधीश्वर (स्वामियों के भी परम स्वामी) हम हो सकते हैं । जिस क्षण हम लोग अपने विषय में दूसरों की बातों पर विश्वास करना आरम्भ करते हैं, उसी क्षण सब कुछ (क्रिया, कर्म, इत्यादि) निष्पन्द रूप हो जाता है । दुनिया नहीं है । संसार नहीं है । और सांसारिक

जीवों की बातें भी कुछ नहीं हैं। ईश्वर ही एकमात्र सत्य है।

कोई-कोई समझते हैं कि दुःख-दर्द (Pains) चरित्रोन्नति (अर्थात् चित्त-शुद्धि) के लिए ऐसे ही आवश्यक हैं, जैसे कि अग्नि स्वर्ण की शुद्धि के लिए। प्रयास के बिना प्रकृति आगे बढ़ने नहीं देती। शायद आज पर्यन्त बराबर ऐसा ही होता आया है। परन्तु क्या यह भी कोई युक्ति (कारण) है कि इसी प्रकार सदा ऐसा ही होता रहे। यह सत्य है कि कोई भी रसायन (chemical) नवजात अवस्था (Nascent state) में से गुज़रे बिना कार्य नहीं कर सकता। बीज अपने तत्त्व में परिवर्तित (through seduction into the substance) होने से ही उगता द्रव-दशा (melting point) में प्रवेश कर चुकने पर ही धातुओं को पीटपाट कर जोड़ा जा सकता है। बाहरी दिखावट और भावों से युक्त मनुष्य प्रत्यक्ष आशाओं और उज्ज्वल भविष्य (प्रत्याशाओं, prospects) से उत्तेजित होकर व्यक्तिगत रूपों में अपना विश्वास जमाता हुआ आगे बढ़ता है, किन्तु तुरन्त ही वह अपने सिर पर कड़ी चोट या माथे पर भारी मुक्का (घूँसा) खाता है। चोट उसके चित्त को पिघला कर उसे पूर्व आरम्भिक अवस्था पर पहुँचा देती है, और इस प्रकार जीवन की शर्त पूरी हो जाने पर सफलता उसके चरण चूमने आ जाती है। चाहे रिपोर्टें (पुस्तकों में वर्णन) कुछ ही क्यों न हों, यदि दैवी विधान वास्तव में दैवी विधान है, तो ईश्वरादर्श को किसी प्रकार भूले बिना या 'जीवन में मृत्यु' के मार्ग से च्युत हुए बिना हज़रत ईसा को कदापि कष्ट उठाना नहीं पड़ सकता था। हाँ, पीड़ा भरे अत्याचार ने उसे तुरन्त सावधान कर दिया, और प्रत्यक्ष शूली पर चढ़ने से पहले कुछ घंटों तक कालावच्छिन्न स्वरूप (Timeless All) में अहंभाव के विलीन (self-crucifiction) रहने ने उसे सदा के लिए

जीवित (अमर) बना दिया। परन्तु यह जरूरी नहीं कि उक्त पीड़न और दुःख के अनन्तर सफलता और आनन्द का आगमन अनिवार्य हो; प्रायः एक दुःख विपत्तियों की पंक्ति (ट्रेन) के आने की घोषणा देता है, और इसी से कहते हैं कि कोई दुःख अकेले नहीं आता (misfortunes never come singly)। अगर एक ही विपत्ति की चेतावनी से हम शुभ अवस्था में चेत जायँ, अर्थात् जग पड़ें, तो जीवन और ज्योति का प्रकाश (उजाला) तत्काल हम पर आ पड़ता है; किन्तु यदि प्रारम्भिक दुःख की सर्दी हमारे नियम-भंग (विधान-प्रतिकूलता) को और भी बढ़ा दे, तो हम और कठोरतर विपत्तियों को बुला लेते हैं। अत्यन्त कठोर, एवं संभवतः गुह्य दैवी विधान के न समझे जाने तथा पालन न होने से यह कलह अवश्य जारी रहता है, और हमारे सिरों पर मुक्के और चोटें खूब ही बरसती हैं। इन चोटों से केवल वही बच निकलते हैं, जो योग्यता की एकमात्र शर्त "अकथनीय प्रारम्भिक अवस्था (nascent state)"— में होकर गुजर जाते हैं। किसी समय इंजनों में नियामक यन्त्र (governors) नहीं हुआ करते थे, और वाष्प का वेग वश के बाहर रहता था। परन्तु अब जब इंजनों के लिए नियामक यन्त्र निर्मित हो चुके हैं, तब शक्ति का व्यर्थ दुर्व्यय क्यों हो? इसी प्रकार जीवन-विधान-रूपी नियामक (governor) के पा लेने पर कोई कारण नहीं दीखता कि पशुओं के समान पीड़ा और कलह मनुष्यों पर क्यों राज्य करने पायें।

इस भौतिक व्यक्तित्व में आसक्त होकर कार्य करना परिच्छिन्न सांसारिक शासनों की दृष्टि में तो कोई पाप नहीं, परन्तु विश्व सर्वोच्च शासन के सामने यही एकमात्र पाप है, और दूसरे दोष तो इस पाप की विभिन्न शाखायें-मात्र हैं। संसार में

केवल एक ही रोग और उसकी केवल एक ही दवा है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सारी व्याधियों की जड़ है, जो कभी एक दुःख का रूप धारण करती है और कभी दूसरे का। और इसकी ओषधि है अपने वास्तविक ईश्वरत्व को प्राप्त करना। एक बार अपने आपको धोखा देना अर्थात् निज स्वरूप को भूलकर दूसरे को अपना आत्मा मान लेना ही अन्य सब धोखों को आप से आप दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक उत्पन्न कर देता है।

क्या राम का यह कथन एक एकान्त-सेवी की कोरी भावना-मात्र (reverie, कल्पना-मात्र) है, और समाज के लोगों के किसी काम का नहीं? जलाशय के पानी के ऊपर कोई हरियाली नहीं होती, किन्तु क्या यह भी कोई युक्ति हो सकती है, जिसके आधार पर खेत अपने में पैदावार पैदा करने के लिए उस जल से सींचा जाना अस्वीकार करें? राम केवल दैवी विधान बतलाता है, जो प्रत्येक का निजी जीवन वा प्राण है। संसार के जितने नियम हैं, रासायनिक, प्राकृतिक, मानसिक और ऐसे ही अन्य सब, उनको मैं इसी एक दैवी विधान (उपर्युक्त नियमों के नियम के विशेष उदाहरण (सूचक) पाता हूँ; इससे इतर और कुछ नहीं। कार्य-कारण का नियम (Law of Causation—कार्यकारणवाद), सांसारिक सम्बन्ध, आशायें और कर्तव्य, ये सब के सब केवल परिवर्तनशील चिह्न (transition points, विचार का तात्कालिक प्रमाण (passing standards of) judgment), पथिकाश्रम (रास्ते की सरायें), बालिकाओं की गुड्डे (खिलौने) और जल-हीन अरब देश की मरीचकायें (yatammum) हैं। एक बार जहाँ हमारी चेतना के मंडल में अर्थात् विज्ञान-कोप में (आत्मदेव का) सूर्य चमका, एक बार जहाँ हम पदार्थों की वास्तविक अवस्था से परिचित हो गये,

वहाँ सब कारण और नियम हमारे चारों ओर ग्रहों (planets) तथा उपग्रहों (satellities) की भाँति घूमने लग जाते हैं; नहीं-नहीं, वे हमारे निकट इस प्रकार आते हैं, जैसे भोजन के समय बालिका अपनी माता के समीप।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते ॥ (साम वेद)

जिस प्रकार बच्चे को चलना सीखना होता है, ठीक उसी प्रकार सरलता और स्वाभाविकता-पूर्वक मनुष्य को मरना सीखना होता है। इस मृत्यु से अभिप्रेत वह अवस्था है कि जहाँ सेवक व्यक्तिगत सेवक नहीं, शिष्य शिष्य नहीं, राजा राजा नहीं, मित्र मित्र नहीं, शत्रु शत्रु नहीं, लोगों के वचन (promises) वचन नहीं, धमकियाँ धमकियाँ नहीं, सामान सामान नहीं, अधिकार अधिकार नहीं रहते, बल्कि जहाँ सब ईश्वर रूप ही हो जाता है। वहाँ केवल एकमात्र सत्य है। जब हृदय इस (सच्चाई) के साथ स्पन्दित होकर धड़कता है, तब सारा संसार उस हृदय के साथ स्पन्दित होता और धड़कता है। जब मन इस (सत्य) से विच्छिन्न होता है (अथवा जब मन इस दैवी विधान के साथ तालबद्ध नहीं होता), अर्थात् जब मन बाह्य दृश्यों और नाम-रूपों पर ही आश्रय करता है, तब सारा संसार उस मन से विरुद्ध स्पन्दित और अनुकम्पित होता है। जब तक हम लोगों में अपने देह की रक्षा करने और अपने व्यक्तित्व की ओर से "शठे शाठ्यम्" वत् बदला लेने की भावना जान पड़ती है, महसूस होती है, तब तक समझ लो कि हम मृतक और गतप्राण हैं। क्लेशकारी व दर्पहारी तथा अपमानकारी शब्दों को ध्यान दिये बिना छोड़ देने की शक्ति से बढ़कर उत्तम प्रमाण (निजी) महत्ता का और कोई नहीं है।

जब कोई सज्जन वकील के स्थान से जज की कुरसी पर जा बैठता है, तब सारी कचहरी का भाव उसके प्रति बदल जाता

है। इसी प्रकार जब हम वकील के स्थान से ऊपर उठकर निष्पक्ष ईश्वरीय ज्योति की स्थिति में आते हैं, तब सारे संसार को हमारे साथ अपने संबंध पुनर्निर्धारित करने पड़ते हैं और जिस प्रकार जहाज की गति के अनुसार दिग्दर्शक-यंत्र (Compass) की सुई अपनी नोक को हटा लेती है, उसी प्रकार हमारे साथ उनके व्यवहार के ढंग का बदलना भी जरूरी हो जाता है। क्या लोग आपको ठगते हैं? यह इसलिए कि आपने अपने में से ईश्वर को ठगकर निकाल बाहर किया है। प्रोफ़ेसर (अध्यापक) जेम्स ने बहुत ही ठीक यह अवलोकन किया:— "जीवन इसी बात पर अवलंबित है कि हमारे कार्यों पर दूरस्थ बातों की भावनाओं के प्रभाव (ideas of remoter facts) की अपेक्षा प्रत्यक्ष भौतिक संवेदनों का प्रभाव क्षीणतर पड़े। पशु केवल भौतिक संवेदनाओं द्वारा ही संचालित वा प्रेरित होते हैं। किन्तु मनुष्य की दिव्यता (ईश्वरत्व) का पुनरुद्धार तब होता है, जब अदृष्ट नियम-समूह (laws), नहीं-नहीं, वह दैवी विधान, जो पाशविक मनुष्य के लिए अन्धकार में ढका है, मनुष्य के लिए एक ठोस और कठोरतर तत्त्व हो जाता है; और दूसरी ओर भासमान, क्षणभंगुर रूप-नाम-मात्र प्रत्यक्ष मुद्रा (hard cash) इत्यादि, जो मूर्खों के मार्ग-दर्शक-रूप नक्षत्र हैं, उसके लिए भगवत्-उपस्थिति के प्रकाश में विलुप्त हो जाते हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(भगवद्गीता अ० २, श्लोक ६६)

अर्थः—जो सब प्राणियों के लिए रात्रि है, उसी में संयमी पुरुष जागता है, और जिसमें सब प्राणी जागते हैं, वही ज्ञाननेत्र-युक्त मुनि की रात्रि है।

—०—

उत्कृष्ट शिष्टाचार—दैवी विधान

खलील श्राँ रोज़ वा श्रातिश हमे गुफ़्त,
अगर मूए-ज़ मन बाक़ीस्त दर सोज़।
बदो मे गुफ़्त श्राँ श्रातिश कि ऐ शाह!
बपेशत मन बमीरम तु दर अफ़रोज़॥

भावार्थ—इब्राहीम जब जीते जी जलाया जाने लगा, तो उसने अग्निदेवता से प्रार्थना की कि यदि मेरा देह-अध्यास (व्यक्तिगत अहंकार) बाल बराबर भी इस देह में धँसा हुआ हो, तो मेरी निरन्तर यही विनय है कि 'कृपथा इसे कदापि न छोड़ो, अवश्य जला डालो।' आग बुझ गई, मानो उसने भक्तिपूर्वक, सत्कारपूर्वक यह उत्तर दिया कि 'ऐ मेरे स्वामी! आप जीते रहिये और मुझे आपके चरणों पर मर मिटने दीजिये।'

ऐसा दैवी विधान है। शिष्टाचर में, विनय में, ईश्वर किसी से हारनेवाला नहीं।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवो असम् वशे॥ (यजु० संहिता)
सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति॥ (बृहदारन्यक उप०)
सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥ (तै० उप०)

अर्थ—आदि में ही सृष्टि-उत्पादक देवों ने ब्रह्म में रुचि रखनेवालों मे कहाः—"हे ब्रह्म से अभिन्न ब्राह्मणो! जो कोई भी इस प्रकार ब्रह्म को जान लेगा, उसकी सेवा में हम देवताओं को आज्ञाकारी अनुचर की भाँति उपस्थित रहना होगा।"

"उसके सिंहासन के आगे भूतमात्र उपहार ला कर अर्पित करते हैं।

इसकी वेदी पर सारे विधान (देव) भेंट चढ़ाते हैं।

वेदान्त पर एक भारी आक्षेप

वेदान्त हृदय के भावों को मार डालता है, और सौन्दर्यावलोकन की शक्ति को नष्ट कर डालता है; यह निठुरता (दया हीनता प्रेम-भाव की शून्यता) और जड़-प्रकृति के समान अटल और सीधा (घृणास्पद) आचरण सिखलाता है, अपने संबंधियों का किंचित् ख़याल तक नहीं करने देता है।

हाँ, यह (वेदान्त) ऐसा करता है। इसके सच्चे भक्त के लिए सत्य अर्थात् वास्तविक तत्त्व का इतना भारी विस्तार तो अवश्य हो जाना चाहिए कि उसके सामने पदार्थ, व्यक्तियाँ, कार्य-कारणत्व, और लोक-मत लुप्तप्राय (Vanishing quantities) हो जायँ। परन्तु यदि मानवीय या अधिकतर पाशविक भावनायें धुलकर साफ़ हो जायँ, तो उनके स्थान पर दिव्य भावनायें (विचार) ज़ोर से प्रवाहित होने लगती हैं। नक़ली ज्योतियों के स्थान पर हास्यमुख (प्रफुल्लित) सूर्यज्योति आ जाती है, जो यद्यपि किसी विशेष व्यक्ति का पक्ष और सत्कार तो नहीं करती, तथापि इर्द गिर्द सबको प्रसन्नता में भिगो डालती है।

एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक अनुभवी अंग्रेज कहता है—

"पहले मैं भी कभी नहीं मान सकता था, किन्तु अब इस सच को मैं स्वयं देख रहा हूँ, अनुभव कर रहा हूँ कि जब अपने (व्यक्तित्व के) विषय में सोचना नितान्त त्याग दिया जाय, तो इसके समान कोई सुख नहीं, इसके समान कोई अवस्था नहीं। परन्तु आपको यह पूर्ण रूप से करना चाहिए। क्योंकि जब तक अहंकार (देहाध्यास) का किञ्चित् लेश (अणु) बना रहेगा, तब तक यह सबको नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। आपको यह सब

(देहाध्यास) पीछे छोड़ना होगा, और अपने व्यक्तित्व (अहंकार) और मन के साथ इतनी ही सहानुभूति रखनी होगी, जितनी कि किसी अज्ञात पुरुष के प्रति रक्खी जाती है, इससे न किञ्चित् न्यून, न किंचित् अधिक।"

वर्षों के अपने विचारों और मन्तव्यों (plans and purposes) को छोड़कर यश, कीर्ति एवं चिर-परिचित स्वरों के नाद को त्याग दो; आलिंगन करनेवाली प्यारी भुजाओं के आलिंगन से वियुक्त होकर अपने इस लालन-पालन किये हुए अहंकार को इस प्रकार पर रख दो, जैसे हम अपने दस्तानों को खींचकर उतार देते हैं; रोग-भय को किनारे करके और "लोग हमारे मूल्य को समझेंगे" इस भावना की आशा (hopes of appreciation) को निकाल बाहर कर दो; अपने आपसे अशरीरी बन बाहर हो जाओ; दीर्घ काल से रचित आवरण अर्थात् बाहरी कोष को भूसीवत छोड़ दो; वैराग्य के द्वार से प्रभुत्व के प्रासाद में प्रवेश करो; ज्ञान के द्वार से मुक्ति के खुले उपवन में आओ; सबका त्याग कर दो; जो कुछ अपना है, उससे मन को निरासक्त कर दो; निर्धन और निःस्वत्व बन जाओ; फिर देखो, तुम सब वस्तुओं के प्रभु और अधिराज हो जाते हो कि नहीं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनो व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं (यजु०)

अर्थः—जय (श्री) और समृद्धि तुम्हारी दासियाँ हैं। दिन और रात तुम्हारे दक्षिण और वाम भाग (पार्श्व) हैं। नक्षत्रों में शोभा (कान्ति) तुम्हारी दृष्टि (दर्शन) है। स्वर्ग, मर्त्य (पृथ्वी और आकाश) तुम्हारे खिले हुए (अलग-अलग) अधर (ओष्ठ) हैं।" यदि किसी वस्तु की तुम्हें इच्छा करनी है, तो यह इच्छा करो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

निश्चल चित्त

(क्लास लैक्चर, फ़रवरी १५, सन् १९०३)

उस दिन प्रश्न किया गया था कि "क्या कोई मनुष्य इस युग में वेदान्त-तत्त्व का अनुभव कर सकता है ?" और उस पर किसी ने यह सुझाया था कि वेदान्त-तत्त्व के अनुभव करने के लिए मनुष्य को अमुक-अमुक पदार्थ का त्याग करना ज़रूरी है, और इसके लिए उसे अवश्य हिमालय के जंगलों में जाना चाहिए। किन्तु राम कहता है, नहीं-नहीं, आपको इस के निमित्त जंगलों में जाने की कुछ भी ज़रूरत नहीं।

आजकल प्रायः समयाभाव की शिकायत बहुधा सुनी जाती है। लोग कहते हैं:—"हमारे पास (ईश्वर-भजन-निमित्त) कोई समय नहीं है। हमको तरह-तरह के काम देखने पड़ते हैं; हमारे बंधु-मित्र हमारा समय ले लेते हैं।" एक प्रार्थना है कि "हे ईश्वर! मुझे अपने शत्रुओं से बचा", किन्तु आधुनिक काल के मनुष्यों को जो प्रार्थना करना चाहिए, वह ठीक यह होगी—"हे प्रभु! मुझे अपने मित्रों से बचा।" मित्रगण हमारा सारा समय छीन लेते हैं; उधर चिन्ता, शोक और दुःख हमारा समय ले लेते हैं। हमें अपने बाल-बच्चों और सहकारियों की भी देख-भाल करनी पड़ती है, मिलनेवालों का स्वागत करना और दूसरों से मिलने जाना पड़ता है, कुछ पढ़ना भी अवश्य पड़ता है, ऐसी दशा में हम किस तरह आध्यात्मिक उन्नति के लिए समय निकाल सकते हैं? ओह, कर्त्तव्य (फ़र्ज़,

duties ! तुम हमारा समय ले लेते हो। आराम से भोजन करने का समय भी तो हमें इनके मारे नहीं मिलता। (इस प्रकार) कर्तव्य के नाम आपकी सारी जिन्दगी क्षीण होती जा रही है। परन्तु हमें यह अपने से पूछना चाहिए कि ये कर्तव्य (duties) कहाँ से आते हैं ? कौन हम पर कर्तव्य आ डालता है ? हम ही स्वयं न ? वास्तव में आप ही हो जो अपने कर्तव्य निर्माण कर लेते हो। क्रूर स्वामी समान इन कर्तव्यों को आप पर न आ पड़ना चाहिए। दफ़्तर का काम आप पर कौन डालता है ? आप ही स्वयं। इस प्रकार यदि आप कर्तव्यों के स्वरूप को अन्ततः विचारोगे और देखोगे, तो आपको पता लग जायगा कि आप स्वयं अपने स्वामी आप हो, और ये सब कर्तव्य जो आपको पूर्ण अपना गुलाम (दास) बनाये हुए हैं, स्वयं आपने रचे हैं। यदि एक बार भी आप ऐसा मान या निश्चय कर लें कि "संसार में कोई पदार्थ नहीं, जो मुझे बाँध सके, प्रत्येक वस्तु वास्तव में मुझसे उत्पन्न होती है," तो आप बड़े सुखी हो सकते हैं, अपनी स्थिति को बड़े मजे से आप ठीक कर सकते हैं।

डाक्टर जोह्नसन के पास एक मनुष्य आकर बोला:— "डाक्टर ! डाक्टर !! मैं नाश हुआ, मैं गया गुजरा, मैं किसी काम के योग्य नहीं रहा, मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इस दुनियां में मनुष्य क्या कर सकता है ?' डाक्टर जोह्नसन ने उससे पूछा कि क्या हुआ, क्या मामला है ? अपनी शिकायत के लिए सबब (कारण) तो बताने चाहिए ? वह मनुष्य इस प्रकार अपनी दलीलें पेश करने लगा:—"मनुष्य इस संसार में अधिक से अधिक सौ वर्ष जीता है। भला इस अपार व अनन्त काल के सामने ये सौ वर्ष क्या हैं ? इस पर आधी आयु तो निद्रा में बीत जाती है। आप जानते हो कि हम लोग

प्रतिदिन सोते हैं, हमारा बाल्य-काल एक लम्बी निद्रा है। और हमारी वृद्धावस्था का काल भी शिथिलता(debility) और असमर्थता का काल है जिसमें हम कुछ भी नहीं कर सकते; फिर हमारा यौवन-काल दुर्विचारों, भाँति-भाँति के प्रलोभनों और दुरुपयोग में खर्च हो जाता है। इससे जो कुछ समय बच निकलता है, वह क्रीड़ा-कलोल में खर्च हो जाता है। हम लोग बहुत खेलते हैं; इससे जो कुछ समय बच निकलता है, वह शौच-क्रिया करने में, खाने-पीने इत्यादि में नष्ट हो जाता है; और उससे भी जो कुछ बच निकलता है, वह समय क्रोध, ईर्ष्या, शोक, चिन्ता, दुःख और पीड़ा में चला जाता है। यह सब हर-एक मनुष्य के लिए स्वाभाविक ही है। इससे भी जो बचा रहता है, जो किञ्चित् सा समय इसके बाद हमें मिलता है, वह बाल-बच्चों, मित्रों और बन्धुओं के मिलने-मिलाने और देख-भाल में चला जाता है। (ऐसी दशा में) मनुष्य इस संसार में भला क्या कर सकता है? जो मरते हैं, उनके लिए हमें रोना-पीटना पड़ता है, और नवागतों के जन्म पर खुशी मनानी पड़ती है। इस प्रकार सारा समय नष्ट हो जाता है, और (ऐसी हालत में) मनुष्य कोई पक्का और यथार्थ काम भला कैसे कर सकता है? अपने ईश्वरत्व को अनुभव करने के लिए मनुष्य कैसे समय निकाल सकता है? हम तो निकाल नहीं सकते। परे हटाओ इन गिरजाघरों को, दूर करो इन धार्मिक गुरुओं और उपदेशकों को, इनसे कह दो कि लोग धर्म (ईश्वर-भजन) के लिए कोई समय नहीं निकाल सकते, अपने ईश्वरत्व को अनुभव करने के लिए उनके पास कोई समय नहीं है। यह हम लोगों के सामर्थ्य से बाहर है।" डाक्टर जोन्सन इन शब्दों पर हँसा नहीं, उसने इस आदमी को

तिरस्कारा अथवा धिक्कारा नहीं, वह केवल रोने लग पड़ा, और उसके साथ सहानुभूति करते हुए बोलाः—"मनुष्यों को आत्मघात कर लेना चाहिए, क्योंकि उनके पास परमार्थ के लिए कोई समय नहीं। भाई! आपकी इस शिकायत के साथ मुझे एक और शिकायत है, मुझे इससे भी बुरी शिकायत करनी है।" इस मनुष्य ने डाक्टर जोहनसन से कहा कि आप अपनी शिकायत कहिये। डॉक्टर जोह्नसन रोने लगा- दिखावटी रुदन करते हुए बोला— "यह देखो, मेरे लिए कोई जमीन या भूमि नहीं रही, कोई ऐसी भूमि नहीं बची, जो मेरे खाने-भर को अन्न उत्पन्न कर सके, मैं तो गया-गुजरा और मरा।" वह आदमी बोला—"अजी डाक्टर साहब! यह हो कैसे सकता है? मैंने माना कि आप बहुत अधिक खाते हैं, दस मनुष्यों जितना खाते हैं, फिर भी इस पृथ्वी पर इतनी भूमि है कि जो आपके उदर के लिए अन्न उपजा सके; आपके शरीर के लिए अन्न या शाक (तरकारी) उत्पन्न करने को काफ़ी भूमि है। आप शिकायत क्यों करते हैं?" डाक्टर जाहसन ने उत्तर दियाः—"अरे देखो तो, आपकी यह पृथ्वी क्या तुच्छ चीज़ है? यह भूमि कुछ चीज़ नहीं। ज्योतिर्गणित में यह पृथिवी एक बिन्दु-मात्र मानी जाती है। जब हम तारों और सूर्यों के अन्तर का हिसाब लगाने बैठते हैं, तो इस पृथिवी को कुछ भी नहीं अर्थात् शून्यवत् मानते हैं; फिर इस शून्य रूप पृथिवी की तीन चौथाई तो जल से परिपूर्ण है, फिर इस पर बचता ही क्या है? जरा ध्यान दो! एक बहुत बड़ा भाग तो ऊसर बालू से भरा पड़ा है; एक बड़ा भाग ऊसर पर्वतों और पत्थरों ने ले रक्खा है; एक बड़ा भाग झील और नदियों ने दबा रक्खा है, फिर इस भूमि का बहुत सा भाग लन्दन जैसे बड़े-बड़े नगरों से घिरा पड़ा है; इस पर सड़कें, रेलें, गली-कूचे इस पृथिवी का एक बहुत बड़ा भाग ले लेते हैं। अब

बतलाइये, इस पृथिवी का कौन-सा भाग मनुष्य के लिए छूट रहा है ? (अर्थात् कोई नहीं) । तो भी हम मान लेते हैं कि इन सबसे कुछ अवश्य मनुष्य के लिए बचा है। परन्तु कितने ऐसे प्राणी हैं, जो इस बचे हुए तुच्छ पृथिवी-तल से लाभ उठाना चाहते हैं ? इसमें बहुत-से पत्ती, बहुत-से कीड़े-मकोड़े और बहुत-से हाथी-घोड़े हैं, जो सब के सब इस बची हुई उपजाऊ भूमि के भाग पर अपने को जीवित रखना चाहते हैं, निर्वाह करना चाहते हैं; बहुत ही थोड़ा भाग मनुष्य के हिस्से में आता है। फिर संसार में मनुष्य भी कितने हैं ? एक लन्दन को देखो, लाखों-करोड़ों आदमी भरे पड़े हैं, जरा इस भारी जन-संख्या को तो देखो, ये सबके सब इस संसार के बड़े शून्य (बिन्दु) के तुच्छ (अत्यन्त अल्प) भाग पर निर्वाह करना चाहते हैं। तब मेरी तृप्ति के लिए भूमि कैसे (व कहाँ से) अन्न उपजा सकती है ? मेरा तर्क तो मुझे इस निराशा और शोक भरे निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि मुझे मर जाना उचित है, क्योंकि मेरी उदर-पूर्त्ति-निमित्त अन्न उपजाने योग्य भूमि मुझे नहीं मिल सकती।" इस पर वह मनुष्य बोला—"डॉक्टर साहब ! आपकी दलील (युक्ति) ठीक नहीं, आपका तर्क तो ठीक जान पड़ता है, परन्तु आप के इस तर्क के होते हुए भी यह पृथिवी आपको जीवित रख सकती है । तब डॉक्टर जोहसन ने उत्तर दिया—"अजी महाराज ! यदि मेरी यह शिकायत बेबुनियाद अथवा युक्ति-हीन है, तो आपकी शिकायत भी कि आध्यात्मिक आहार पाने के लिए समय नहीं मिलता—युक्ति-हीन है। यदि मुझे भौतिक भोजन देने को यह भूमि काफ़ी (पर्याप्त) है, तो आपके मन्तव्य के लिए समय भी पर्य्याप्त है, यह आपको आध्यात्मिक भोजन भी दे सकता है।" इस प्रकार राम भी इस प्रश्न का कि "वर्तमान सभ्यता हमें कोई आध्यात्मिक भोजन पाने का समय नहीं देता।" यही उत्तर देता

है। इस प्रश्न का उत्तर राम उसी प्रकार देता है, जिस प्रकार वर्षों पहले डॉक्टर जोह्नसन ने दिया था कि वर्तमान दशा में भी आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए काफ़ी समय आपके पास है। आपके पास काफ़ी समय है, यदि आप उसका ठीक उपयोग करें।

एक वार (भारतवर्ष में) एक आदमी घोड़े पर सवार कहीं दूर जा रहा था। मार्ग में उसे एक रहट (Persian wheel) मिला। आप जानते हैं कि भारतवर्ष में पृथिवी से पानी निकालने के लिए एक प्रकार की रहट होती है, जिसे आप परशियन व्हील (Persian wheel) कहते हैं। जब रहट द्वारा पानी कुआँ से निकाला जाता है, तब एक प्रकार का शब्द होता है। जब रहट द्वारा पानी कुएँ से निकल रहा था, तब यह मनुष्य अपना घोड़ा वहाँ पानी पिलाने ले गया। घोड़े को उस प्रकार के शब्द सुनने का अभ्यास न था, इसलिए वह उसे सुनकर भड़का और उसने पानी न पिया। जो किसान उस रहट को चला रहे थे, उनसे उस घुड़सवार ने वह शब्द बन्द करने को कहा। किसानों ने रहट को बन्द कर शब्द बन्द कर दिया। शब्द तो बन्द हो गया, पर शब्द बन्द होने के साथ-साथ जल का आना भी बन्द हो गया। अब पीने को घोड़े के लिए जल ही न रहा। घोड़ा पानी के कुंड की ओर बढ़ा, पर वहाँ पानी बिलकुल था ही नहीं। इस पर यह घुड़सवार उन किसानों से यों मुख़ातिब होकर बोला—"ऐ विचित्र किसानो! तुम अजीब आदमी हो! मैंने तो तुम्हें शब्द बन्द करने को कहा था, पानी बन्द करने को नहीं, तुम लोग परदेशी पर इतनी कृपा भी नहीं करते, जिससे वह अपने घोड़े को पानी पिला सके?" किसान बोले:—"महाराज! हम लोग हृदय से आपकी सेवा-सुश्रूषा करना चाहते हैं, और आपके घोड़े को पानी देना चाहते हैं, किन्तु आपका कहना

मानना हमारे सामर्थ्य से बाहर है। हम आपका कहना कर नहीं सकते। यदि आप पानी चाहते हैं, यदि आप अपने घोड़े को पानी पिलाना चाहते हैं, तो शब्द के होते हुए ही आप अपने घोड़े को पानी पीने को पुचकारिये, क्योंकि जब हम शब्द बन्द करते हैं, तो पानी भी वहीं रुक जाता है, अर्थात् पानी भी प्राप्त होने से रह जाता है, पानी तो नित्य इस शब्द के साथ-साथ ही आता है।" इसी प्रकार राम कहता है कि अगर आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो सर्व प्रकार के शब्दों (कोलाहल) के बीच में, भाँति-भाँति के कष्टों (झंझटों) के बीच में ही उसे कीजिये। इस जगत् में आप कभी ऐसी स्थिति में अपने को नहीं पा सकते, जहाँ बाहर से कोई शब्द (खटखट) या दुःख-झँझट न हों। चाहे आप हिमालय के शिखरों पर जाकर रहें, वहाँ भी आप अपने गिर्द झंझटें पायेंगे। चाहे आप अशिष्ट (जंगली) पुरुषों के समान रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। जहाँ जी चाहे आप जायँ, दुःख-झंझट आपको नहीं छोड़ेंगे, वे आपका पीछा कभी नहीं छोड़ेंगे, वे सदा आपके साथ होंगे। यदि आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो जब आपके इर्द-गिर्द झंझट-रूपी रहट का शब्द खूब जारी हो रहा हो, तभी उसे करिये। जितने सत्पुरुष हुए हैं, वे सब के सब अपमानजनक (तुच्छ निराशा-जनक) परिस्थिति और दशा के होते हुए ही हुए हैं। वास्तव में जितनी अधिक कष्ट भरी दशा होती है और जितनी अधिक कठिन (वा कष्ट-साध्य) परिस्थिति होती है, उतने ही प्रबल मनुष्य और उतने ही अधिक बलवान् लोग हो जाते हैं, जो उन अवस्थाओं में से निकलते हैं। अतः इन बाह्य दुःखों और चिन्ताओं को आनन्द से आने दो। मेरे अड़ोस-पड़ोस में ही वेदान्त को व्यवहार में लाओ। और जब वेदान्त-तत्त्व में

रहने लगोगे, अर्थात् जब वेदान्त आपके आचरण में आ जायगा, तो आप देखोगे कि ये अड़ोस-पड़ोस और अवस्थायें आपसे हार मानेंगी, आपके आगे सिर झुकायेंगी, आपके अधीन हो जायँगी; और आप इनके स्वामी बन जाओगे। क्या यह समाज है, जो हमें नीचे गिराता है? क्या यह दुनिया है, जो हमें नीचे दबाये रखती है? नहीं, आप तो इस दुनिया में रहते ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तो अपनी ही रचित क्षुद्र दुनिया में रहता है। कितने थोड़े ऐसे पुरुष हैं, जो इस संसार में रहते हैं? इस विशाल संसार में बहुत ही थोड़े मनुष्य रहते हैं; आप तो अपनी रचित छोटी सी दुनिया में रहते हैं। आप लोगों ने अपने-अपने क्षुद्र व्यक्तित्व के चारों ओर अपनी-अपनी दुनिया बना ली है। कितने ऐसे लोग हैं, जो छोटे से घरेलू वृत्त से परे कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जो अपनी जाति की सृष्टि के बाहर कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जिनको अपने पति-पत्नी या बाल-बच्चों की रचित छोटी सृष्टि के बाहर कुछ मालूम नहीं। कम से कम आप इस विशाल संसार में तो रहिये। इन छोटी सी तुच्छ दुनियाओं से तो ऊपर उठिये। यह विशाल (विस्तृत) सृष्टि तो आपको नीचे नहीं दबाये रखती; ये आपकी अपनी ही रचित छोटी-छोटी सृष्टियाँ हैं, जो आपको नीचे दबाये रखती हैं; यदि आप इस (छोटी सृष्टि) से ऊपर उठ सकें, तो सारी दुनिया आपके अधीन हो जायगी। आपके आगे हार मान लेगी।

वस्तुतः कर्म क्या है, इस पर विचार करने से हमारे निजनिर्मित क्षुद्र संसार का उदाहरण मिल जायगा। आप कहते हैं कि हम अति प्रवृत्त रहते हैं, और राम ने इस देश में लोगों को समयाभाव की शिकायत करते देखा है। यद्यपि राम को यह देखकर हँसी मालूम हो रही है कि लोग अपनी सारी जिन्दगी तो समय का

खून करते (वक्त काटते) फिरते हैं, और तिस पर समयाभाव की शिकायत करते हैं। उन्हें वक्त तो इतना काफ़ी मिलता है कि उनके सिर पर वह भार हो जाता है, और फिर भी वे कहते हैं—"हमारे पास समय नहीं।" आप अपने संकल्पों में समय खो रहे हैं, आप समय नष्ट कर रहे हैं, और फिर भी कहते हैं कि "समय नहीं है।" यह कैसी बात है? कर्म के रूप के विषय में जो भ्रम आपको हो रहा है, वही आपकी शिकायत का कारण है। आप 'कर्म' उसको कहते हो, जो वास्तव में 'कर्म' नहीं है। भिन्न-भिन्न लोग कर्म की भिन्न-भिन्न परिभाषा करते हैं। विज्ञान या यन्त्र-विद्या (Mechanics) के लेखक कर्म की एक प्रकार से परिभाषा करते हैं, और हम लोग दूसरी प्रकार। उनके मतानुसार आप यदि सम धरातल (मैदान) पर चल रहे हों, तो कोई कर्म (वास्तव में) नहीं कर रहे हैं; अथवा गेंद यदि चिकनी (साफ़) समतल भूमि पर लुढ़क रहा हो, तो वह (वास्तव में) कोई कर्म नहीं कर रहा है। आप तभी कर्म करते हो, जब चढ़ाई पर ऊपर चढ़ते हो; जब आप सम धरातल पर चलते हो, तब कोई कर्म (वास्तव में) नहीं करते हो, यह कर्म की परिभाषा करने का विचित्र ढंग है। अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा दूसरी रीति से करता है। अध्यात्म-शास्त्र के अनुसार आप तभी कर्म करते होते हो, जब आपका मन उस कर्म में प्रवृत्त है; पर यदि आप कोई कर्म (हाथ से तो) कर रहे हो और आपका मन उसमें लगा नहीं है, तो आप वास्तव में कर्म नहीं कर रहे हैं। आप श्वास लेते हो, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रानुसार श्वास लेना कोई कर्म नहीं है; खून आपकी नाड़ियों में बह रहा है, यह एक हिसाब से तो कर्म है, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रज्ञों के मतानुसार यह कर्म नहीं। अध्यात्म-शास्त्रवेत्ता "कर्म वास्तव में क्या है" इसे दिखलाने के लिए एक बड़े मार्के का उदाहरण देते हैं:—

एक पुराना अभ्यासवृद्ध योद्धा था, जो सैनिक शिक्षा और क़वायद में इतना अभ्यस्त था कि ड्रिल (क़वायद) की क्रियायें उसके लिए स्वाभाविक हो गई थीं, अर्थात् वह क़वायद की क्रियायें यन्त्रवत् किया करता था। दूध का एक भारी मटका या कुछ और खाद्य वस्तुयें हाथ में लिये वह (योद्धा) बाजार में जा रहा था। वह अपने हाथों में या कन्धों पर (दूध का) भारी घड़ा ले जा रहा था। वहाँ बाजार में एक बड़ा मसखरा आ पहुँचा। उसने चाहा कि यह सब दूध और अन्य स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ (उसके हाथ या कंधे पर से) नाली (मोरी) में गिर जावँ। अंतः वह मनुष्य एक किनारे खड़ा हो गया, और वहीं से बोल उठा "अटेनशन ! अटेनशन !! (attention, attention सावधान हो ! सावधान हो !!)।" आप को मालूम है कि जब हम अटेनशन (attention) कहते हैं, तो हाथों को नीचे गिर जाना चाहिए। इस अभ्यासवृद्ध योद्धा ने ज्यों ही यह 'अटेनशन' शब्द सुना, त्यों ही उसके हाथ स्वतः नीचे गिर गये, और सब दूध या अन्य वस्तुयें, जो उसके पास थीं, नाली में गिर गईं। बाजार के सभी राहगीर और दुकानदार इस पर पेट भर हँसे। आप देखते हैं कि जब उसने अटेनशन (सावधान) का शब्द सुना, तत्काल उसके हाथ नीचे गिर गये। परन्तु अध्यात्म-शास्त्र के कथनानुसार उसने कुछ काम नहीं किया, ऐसा कर्म तो स्वाभाविक कर्म (reflex action) कहलाता है। स्वाभाविक कर्म कोई कर्म नहीं है, क्योंकि उसमें मन नहीं लगा होता है।

अब राम आपसे केवल यह पूछता है कि 'कृपा करके बताइये, आप चौबीस घंटे में कितना 'काम' करते हैं ?" जब आप खाना खाते हैं, तो क्या यह 'कर्म' है ? नहीं। जब आप और अन्य लोग काम करते हैं, तो जिस अर्थ में अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा करता है, क्या आप उसी अर्थ में 'कर्म' करते हैं ? जब आप

टहल रहे हैं, तो क्या 'काम' कर रहे हैं ? और भी अनेक काम, जिनके नाम लेने की राम को आवश्यकता नहीं, जब आप करते हैं, तो क्या आप 'कर्म' करते हैं ? नहीं, कदापि नहीं। आपका मन या ध्यान (उस काम में) नहीं लगा था। जो काम आपके हाथ में है, यदि आपका मन या ध्यान उसमें नहीं है, तो आप कर्म नहीं करते। आप केवल आलस्य में समय काट रहे हैं। क्या आप उस समय को नहीं बचा सकते ? क्या आप उसका उपयोग नहीं कर सकते ? किन्हीं कामों में हमारा मन पूर्ण लग जाता है, और कुछ काम करते समय हमारा मन आधा लगता है। जिस काम में आपका मन या ध्यान आधा लगता है, आप आधा कर्म कर रहे हैं, अपना बाकी आधा ध्यान आप उपयोग में ला सकते हैं; और जब आपका ध्यान नितान्त अप्रवृत्त (कर्म-कार्य-शून्य) है, तब आप अपने पूर्ण ध्यान को काम में लगा सकते हैं। इस प्रकार अपने मन के ध्यान (अर्थात् चित्तवृत्ति) का उपयोग कर आप अपने जीवन की उन्नति कर सकते हैं। अपने अप्रवृत्त (unengaged) ध्यान का उपयोग न कर जितना काम आप दिन भर में कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक कर्म (आप ध्यान के उपयोग से) कर सकते हैं।

इसे अब एक दूसरे उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।

दो लड़के, जो आपस में मित्र थे, एक बार रास्ते में परस्पर मिले। एक ने अपने मित्र से आग्रह किया कि वह उसके साथ चर्च (गिरजाघर) चले, और वहाँ उपदेश, भजन, कोई गान अथवा अन्य कुछ सुने। दूसरे ने खेलने का इस प्रकार अनुरोध किया कि "गिरजाघर जाने और वहाँ शुष्क स्वर भरा उपदेश सुनने में समय नष्ट करने की क्या आवश्यकता ? हम लोगों के लिए खेलना कहीं अच्छा होगा।" वे दोनों सहमत न हुए, इसलिए एक तो गिरजे को चला गया, और दूसरा खेलने को

धुन में निकला। परन्तु जो लड़का गिरजाघर में गया; और जब पादरी साहब के सामने उपस्थित हुआ, तब पादरी साहब का उपदेश न समझ सका। उस उपदेश के एक वाक्य से भी आनन्द न उठा सका, तब वह गिरजे में आने पर पछताया, और खिन्न-चित्त हुआ; तब वह खेल-भूमि की याद करने लगा कि दूसरे लड़के के साथ कितने लड़के खेल में शामिल हुए होंगे, और खेल रहे होंगे। पूरे दो घंटे वह गिरजे में रहा, परंतु बराबर उसका मन खेल-भूमि (Play-ground) में ही लगा रहा। उधर दूसरा लड़का जो खेल-भूमि को गया था, उसे अपने मन के अनुसार (अपनी रुचि का) साथी न मिला, कोई ऐसा लड़का उसे न मिला, जो उसके साथ खेल सके। वह अकेला रह गया, इसलिए उदास हो गया। वह गिरजा जाने की सोचने लगा। फिर चित्त में सोचने लगा कि गिरजा जाने का अब तो समय नहीं रहा। वह (चाहे शरीर से) खेल-भूमि में था, किन्तु उसका मन बराबर गिरजाघर में लगा था, (इसलिये चित्त से) वह उतने समय बराबर गिरजाघर में रहा। दो घंटे के बाद दोनों लड़के परस्पर रास्ते में पुनः मिले। एक ने कहा "मुझे गिरजा न जाने का अफ़सोस है", दूसरे ने कहा "मुझे खेल-भूमि में न जाने का खेद है।" यही प्रतिदिन हर जगह मनुष्यों के साथ होता है। जहाँ आपका शरीर होता है, वहाँ आपका मन नहीं रहता। कितने ऐसे लोग यहां हैं, जिन्होंने आज व्याख्यान सुना है ? बहुत ही थोड़े अपने आपको (चित्त से) इस हाल (कमरे) में रख सकते हैं; मन तो उड़ भागता है; मन या तो बच्चे के साथ या किसी अन्य मित्रों के साथ होता है; मन एक जगह से दूसरी जगह, एक विषय से दूसरे विषय में भटकता फिरता है। अध्यात्म-शास्त्र के अनुसार आप तभी काम करते हो, जब मन उसे करता है। किसी समय आपका शरीर तो कोई कार्य विशेष करता होता है, पर आप

उसे नहीं करते होते। अक्सर जब आपका तन तो गिरजाघर में होता है, जब आप (मुँह से तो) प्रार्थना करते होते हैं, जब आप (कानों से तो) व्याख्यान सुनते होते हैं, पर (वास्तव में) न आप व्याख्यान सुनते हैं न प्रार्थना करते हैं और न गिरजे में ही रहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि आप शरीर से तो बाज़ार में हैं, आप शरीर से तो टहल रहे हैं, पर (चित्त से) वास्तव में आप ईश्वर से युक्त हो रहे हैं। आपका मन ईश्वर के साथ होता है। अक्सर ऐसा हुआ है कि जो लोग दुष्कर्मों और पापों (अपराधों) के अपराधी ठहराये गये, वे वास्तव में धार्मिक (ईश्वर-भक्त) और पवित्रात्मा थे, उनका मन ईश्वर से तन्मय था। अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग पवित्रात्मा और शुद्ध (साधु) समझे जाते हैं, उनके मन मलिन होते हैं। अक्सर हम दुष्टों की उन्नति होते देखते हैं। वेदान्त कहता है कि उन लोगों की यह दुष्टता नहीं है जो उनकी उन्नति वा वृद्धि कराती है, किन्तु वे चित्त से ईश्वर में वास किये होते हैं। इसलिए लोगों के केवल बाह्य कर्मों से आप कोई परिणाम न निकालें। यदि कोई मनुष्य चोरी व ख़ून करता है, तो उसे आपको घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

राम अब आपको भारतवर्ष के एक बड़े नामी चोर की उसीके मुख से कही कहानी सुनाता है। राम उस समय निरा बच्चा था, और उसने उस नामी चोर को अपने मित्रों से यह कहानी कहते हुए सुना था। राम उस मौक़े पर वहाँ स्वयं मौजूद था, राम उस समय अपने ग्राम के जंगल में था, वह तब बहुत छोटा सा था। छोटे लड़के को कुछ न समझकर चोर ने इस छोटे बालक की मौजूदगी में (अपने मित्र से कहने में) कुछ छिपाया नहीं, और खुले दिल से सारी कहानी कह डाली।

इस कहानी से आप पर पूर्णतः सारे विषय का रहस्य खुल जायगा। किस प्रकार एक बार वह धनिक के घर में घुसा था और वहाँ से जवाहिरात चुराकर भागा था, उसे उस चोर ने वर्णन किया। चोर ने कहा कि "जो जवाहिरात उस धनिक ने हाल ही में लाकर अपने घर में रक्खे थे, उसका किसी प्रकार मुझको पता लग गया था। उसके घर में मैं घुसने को तो चला, किन्तु इसका कोई उपाय वा तरीक़ा न सूझ पड़ा। बार-बार सोच सोचकर मैंने राह निकाल ली। मैंने देखा कि घर के पास ही एक बड़ा भारी वृक्ष है, और वह वृक्ष घर की तीसरी मंजिल की खिड़की के ठीक सामने है, तब मैंने रात को अँधेरे के समय उस पेड़ पर एक झूला डालने की युक्ति सोची, उस पेड़ की चोटी पर एक रस्सा डाला, और एक प्रकार का झूला बना लिया। बस, उस झूले पर मैं झूलने लगा, इस प्रकार उस गरम देश में मैं कुछ काल तक लगातार झूलता रहा। गरमी की ऋतु थी, और यह मुझे मालूम था कि घर के लोग पाँचवीं छत पर सोये हुए हैं, वे तीसरी छत पर नहीं हैं। जब झूला (झूलते-झूलते) खिड़की के पास पहुँचा, तो मैंने चटाक एक लात मारी, फिर दूसरी लात मारी, और तीसरी लात पर खिड़की के किवाड़ फट से खुल गये। इस प्रकार सातवें, आठवें प्रयत्न के बाद जब खिड़की के किवाड़ खुलकर पीछे गिर गये, तब मैं घर में जा घुसा। मेरे पास कुछ और रस्से थे, मैंने उन रस्सों को नीचे लटकाकर अपने दो या तीन साथियों को ऊपर खींच लिया। तब मैं अपने चित्त में सोचने लगा कि जवाहिरात के मिलने की संभावना कहाँ हो सकती है। मैंने मन को एकाग्र किया; उस एकाग्रता में मेरा मन नितान्त निमग्न हो गया। उस समय मैंने मन में कहा कि लोग अपने जवाहिरात ऐसी जगह पर नहीं रखते, जहाँ चोरों को उसके मिल जाने की सम्भावना हो सके। लोग जवाहिरातों को

ऐसे स्थान पर रखते हैं, जहाँ दूसरों को उन्हें पा सकने की किञ्चित् भी सम्भावना न हो सके। बस मैं एक ऐसी जगह खोदने लगा, जहाँ उनके पा लेने की किञ्चित संभावना न थी। जवाहिरात ज़मीन में गड़े थे। उन दिनों भारतवर्ष में यही तरीक़ा था और कुछ लोग आजकल भी वहाँ ऐसा ही करते हैं, परन्तु अब बहुतेरे अपने रुपयों को बंकों में रखने लग पड़े हैं। लोग अपने धन को भूमि में गाड़े रखते थे। मैंने जब द्रव्य पा लिया और तभी मैंने सीढ़ियों पर एक आवाज़ सुनी।" उस समय अपने मन की हालत का वर्णन जो चोर ने किया, वह राम भूल नहीं सकता। चोर ने कहा—"जब मैं और मेरे साथियों ने धन पाते ही आवाज़ सुनी, तो उस आवाज़ ने हमारे शरीरों में एक कँपकँपी सी डाल दी। हम लोगों को सारी देह काँपती, थरथराती, भयभीत होती चूर-चूर हुई जाती थी; हम लोग सिर से पैर तक थरथरा रहे थे। तब मैंने कहा कि (जान पड़ता है) शायद यह मृत्यु की घड़ी है। हमने अपने आप को मृतव पाया। और उस समय हम कह रहे थे कि अब एक नन्हा सा मूसा भी आकर हमारा खातमा कर सकता है।" वह आवाज़ वास्तव में केवल मूसों की आवाज़ थी। तब चोर ने कहा—"मैं उस समय बड़ा पछताया, ईश्वर से प्रार्थना की, और अपने शरीर का ध्यान छोड़ ईश्वर के आगे नितान्त आत्म-समर्पण कर दिया। तब मैंने आत्म-समर्पण किया, पश्चात्ताप कर ईश्वर से क्षमा-प्रार्थना की, और उस समय मैं समाधि-अवस्था में था, जहाँ मन मन नहीं था, जहाँ सारे स्वार्थ दूर हो गये थे। उस समय मैं और मेरे साथी एक अति विचित्र और बहुत ही आश्चर्य-जनक मानसिक स्थिति में थे। उस समय मैंने प्रार्थना की—'हे भगवान्! मेरी रक्षा करो, मैं योगी हो जाऊँगा, मैं सन्यास ले लूँगा, मैं साधु बन जाऊँगा, मैं अपना सारा जीवन

आपकी सेवा में अर्पण कर दूँगा। हे प्रभो! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।' यह बड़ी ही उत्सुकता-पूर्ण मार्मिक प्रार्थना थी, बड़ी ही सच्ची विनय थी, जो मेरे हृदय की तह और अन्तःकरण से निकल रही थी। यह प्रार्थना मेरे सारे तन के भीतर से, रोम-रोम के भीतर से गूँज रही थी, मैं उस समय ईश्वर के ध्यान में निमग्न था, फल क्या हुआ? सब आवाज़ें ठण्डी पड़ गईं, अर्थात् सब शब्द बन्द हो गया, और मैं और मेरे साथी घर से साफ़ बाहर निकल आये, सब घर से सकुशल बाहर आ गये।" अब ध्यान दीजिये, बाह्य कर्मों से ही किसी के विषय में विचार स्थिर मत कीजिये। मनुष्य वह नहीं है, जो उसके बाह्य कर्म हैं, मनुष्य वह है, जो उसके भीतर के विचार हैं। यह सम्भव है कि वेश्या के घर में रहनेवाला मनुष्य भी भीतर से साधु हो। हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध एक वेश्या के घर में रहे थे; किन्तु वे निष्पाप थे। हम जानते हैं कि हज़रत ईसा मेरीमैग्डलेन के घर रहे थे, जिस स्त्री को लोग पत्थर से मारने जा रहे थे किन्तु हजरत ईसा ईश्वर थे। हमें मालूम है कि भारत में भी क्राइस्ट के समान लोक-उद्धारक बहुत से हुए हैं, वे निन्दित जनों के साथ रहे थे; पर वास्तव में वे ईश्वर-स्वरूप थे। आदमी को उसकी संगति से मत जानिये, किसी मनुष्य पर केवल उसके कर्मों से ही अपना निर्णय मत दीजिये। किसी पर (शीघ्र) अपना विचार स्थिर न कीजिये। मनुष्य वह है, जो उसके विचार हैं। अक्सर जेल में रहनेवाले लोग स्वर्ग में रहते हैं। बनियन (Bunyan) ने जेल में ही अपनी पुस्तक (Pilgrim of Progress) लिखी; मिल्टन (Milton) जब जेल में था और अन्धा हो गया था, तब उसकी महती रचना निकली; डेनीयल डी फो (Daniel De Foe) ने जेल में ही रौबिन्सन क्रूसो (Robins'n Crusoe) लिखा; सर वाल्टर

रेली (Sir Walter Raleigh) ने जेल में ही अपने संसार के इतिहास (The History of the World) की रचना की। हम चाहते हैं कि हमारा अड़ोस-पड़ोस अमुक-अमुक प्रकार का हो, पर हम रहते वहाँ हैं, जहाँ हमारे ख़्याल रहते हैं। अब हम मृत्यु अर्थात् जीवन में मृत्यु के रहस्य की व्याख्या करते हैं। ध्यान से सुनिये। राम कहता है कि आपको सफलता आपकी सबके साथ अभेदता के फल-स्वरूप प्राप्त होती है। सफलता सदा आपके सद्गुणों का फल है, परमात्मा में लीन और निमग्न होने का परिणाम है। यही बराबर होता है। चोर भी जब उस अवस्था को प्राप्त हुआ तो सफल हुआ। (इस प्रकार) आप लोग भी सफल होंगे। उस चोर की सफलता उसकी वास्तविक, सच्ची और हार्दिक विनय-सम्पन्न स्थिति (वृत्ति) का परिणाम थी, जिस स्थिति में वह उस समय पहुँचा था। परमात्मदेव या सर्व रूप में लीन, निमग्न होने से उसने जान लिया था कि धन कहाँ है। चोर सफल हुआ। पर चोर की सफलता भी वेदान्त को व्यवहार में लाने के कारण से हुई। देखिये प्रत्येक मनुष्य की सफलता सदा उसी कारण से होती है। हम लोग देखते हैं कि वह चोर था, उसने चोरी की, जो कर्म बहुत बुरा था, क्योंकि दूसरों को लूटना पाप है, दूसरों को लूटना निःसन्देह समय पर उसे दण्ड देगा, उसके ऊपर आफ़त लायगा; और जो धन कि वह चोरी से पाता है, और जो घोर पाप कर्म वह करता है, जिस आध्यात्मिक समता को (harmony) वह तोड़ता है, वह सब के सब अवश्य उस का नाश करेंगे; परन्तु हम देखते हैं कि चोर की भी सफलता सर्व रूप के साथ एकता और अभेदता अर्थात् परमात्मदेव में उस की तल्लीनता का परिणाम है, अर्थात् अपने शरीर-भाव के त्यागने का, क्षण भर के लिए शरीर से ऊपर उठने का,

हठ्अभ्यास छोड़ने का,शरीर को सूली पर चढ़ाने का, और चर्मदृष्टि (मांसपिण्ड) को पददलित करने का ही परिणाम है। शारीरिक स्वार्थ पर विजय पाने से ही उसे सफलता मिली थी; किन्तु चोरी की वृत्ति, जिसका वहाँ उपयोग किया गया, वह उस पर दंड-भय, त्रास एवं कँपकँपी और चकित वा विस्मित अवस्था लाई थी। हम भूल करते हैं, जब किसी मनुष्य को नितान्त बुरा समझ लेते हैं। यहाँ तक कि चोर में भी कुछ प्रार्थना, शील एवं विनय-संपन्न वृत्ति और ईश्वर-भावना होती है! क्राइस्टों (धर्म-निमित्त प्राण त्यागनेवालों), धर्म-प्रचारकों (missionaries), स्वामियों और गुरुओं (उपदेशकों) में भी कुछ न कुछ बुरी वृत्तियाँ होती हैं। प्रत्येक मनुष्य में (इन गुण-दोषों का) विचित्र मिश्रण (queer mixture) है। हम व्यक्ति विशेष की पूजा करने में बड़ी भूल करते हैं, जबकि उसके सद्गुणों के साथ उसमें दुर्गुणों का होना भी स्वीकार नहीं करते। अतः भ्रान्ति के बीच से सदा सत्य को छाँट निकालने का प्रयत्न कीजिये।

वर्तमान दशा (स्थिति) में मनुष्य अपने आत्मा का अनुभव कैसे कर सकता है? इसका उत्तर स्वयं मनुष्य की प्रकृति पर निर्भर है। मनुष्यों का इस संसार में साधारण रूप से तीन प्रकार के स्वभाव, चित्त वृति की दृष्टि से विभाग किया जा सकता है। कुछ ऐसे हैं, जिनके चित्तों की दशा अस्थिर, चंचल-स्वभाव (unstable equilibrium) रहती है। कुछ ऐसे हैं, जिनके चित्तों की एकाग्रता, जिनके चित्तों की शान्ति स्थिर-स्वभाव (stable equilibrium) वाली है। कुछ ऐसे हैं, जो नित्य उभयसामान्य अर्थात् सम स्वभाव (neutral equilibrium) हैं। अस्थिर-स्वभाव या अस्थिर-स्थिति क्या है? अपनी हथेली पर पेंसिल को इस प्रकार रक्खो, (यहाँ स्वामी जी ने अपनी

हथेली पर पेंसिल सीधी खड़ी की); यह कभी नहीं ठहरेगी (खड़ी रहेगी), एक-आध पल यह शायद ठहरी रहे (खड़ी रह जाय), नहीं तो पवन का हर एक झकोरा इसको नीचे गिरा देगा। इसे अस्थिर-स्थिति कहते हैं। पेंसिल को ऐसे लटकाओ (यहाँ पर स्वामी जी ने पेंसिल को अपनी उँगलियों के बीच पकड़ा और पेंडुलम (pendulum) के समान लटकाये रक्खा), यह ठहरी हुई, स्थिर है; किंतु पेंडुलम (लटकती हुई) होने के कारण यह कुछ काल तक हिलती रहेगी, फिर कुछ काल के बाद ठहर जायगी। स्थिरता भले भंग हो जाय, किन्तु पुनः स्थिरता प्राप्त हो सकती है। पर उस पूर्व दशा में स्थिरता पुनः प्राप्त हो नहीं सकती। किन्तु इसके सिवा एक और तीसरी स्थिति होती है। पेंसिल को इस प्रकार रक्खो (यहाँ स्वामी जी ने पेंसिल को मेज पर रख दिया), यह स्थिर है। इसे उस प्रकार से (टेबल पर) रक्खो, यह स्थिर है। यहाँ (टेबल पर) जहाँ कहीं तुम पेंसिल को रक्खो, यह स्थिर है। यह सदा स्थिरता की दशा में है। ठीक ऐसे ही कुछ लोग हैं, जिनके चित्त लगातार क्षुभित और हर वक्त विक्षिप्त हैं, वे कभी स्थिर नहीं हो सकते, कभी स्थिर दशा में नहीं रह सकते। वाह्य स्थिति उनको स्थिर कर देती है, वे पुनः विक्षिप्त (अस्थिर) हो जाते हैं। कुछ और लोग हैं, जिनके चित्त प्रायः शान्त, स्थिर (एकाग्र एवं ध्यानावस्थित) और निश्चल रहते हैं, पर वे भी एक बार विक्षिप्त होने पर घंटों बहुत देर तक क्षुभित या भ्रमित रहते हैं। और इस जगत् में बहुत से लोग इसी स्वभाव के हैं। आप बाजार में टहल रहे हैं, कोई आदमी आता है; आपसे हाथ मिलाता है, अर्थात् राम राम करता है, और कुछ ऐसे वचन कह जाता है, जो स्तुतिमय या प्रिय नहीं हैं, अपितु कटाक्ष और निन्दा भरे हैं। वह तो चला जाता है, किन्तु अपना काम कर जाता है; ऐसे रिमार्क

पास करके चल बनता है। उस विक्षेप का प्रभाव घंटों रहता है, बल्कि कभी-कभी तो कई दिनों, हफ्तों, महीनों और वर्षों तक बना रहता है। उस रिमार्क (वचन) का असर बना रहता है, और मन डाँवाडोल भ्रमित रहता है, एक बार विक्षिप्त होने पर बराबर हिलता जाता और इधर-उधर भटकता फिरता है। देखो, मन की यह अवस्था, मन की यह डाँवाडोल स्थिति आप का जीवन नष्ट कर देती है, और आप का सारा समय हर लेती है। अब ज़रा ध्यान दीजिये, कामों या बातों ने तो बहुत समय नहीं लिया, कर्म तो प्रथम क्रिया मात्र थी, जो मन को दी गई थी, किन्तु उसके उत्तर-फल, या यों कहो कि आपके अपने मन की डाँवाडोल स्थिति ही आपके जीवन को हर लेती है। यदि आप मन की यह विचित्र चंचलता रोक सको, यदि आप भीतर के विक्षेप पर विजय कर सको, यदि आप मन की लगातार भ्रांति, स्फुरण, धड़कन और संशय-विपर्य्यय को वश में कर सको, उसका निग्रह कर सको, यदि आप इस मन को अधीन कर सको, तो आप का जीवन लाखों मनुष्यों के जीवन के बराबर हो जाय। आप के जीवन के तीस वर्ष भी सहस्रों वर्ष के तुल्य हो सकते हैं। आप अपने मन और चित्त के रोग की ओर, उस आध्यात्मिक रोग की ओर जिससे आप हानि उठा रहे हैं, ध्यान दीजिये। उस रोग को जानिये और उसका इलाज कीजिये। आपके मन का रोग चंचल-स्वभाव है, जब कोई (ऐसी-वैसी) बात हो जाती है, मन भय और प्रसन्नता के बीच-बीच डाँवाडोल फिरता रहता है, अर्थात् मन भ्रम और भय के चंगुल में व्यर्थ फँसा रहता है, न प्रसन्न होने पाता है और न निर्भय। ऐसे लोग पैंडूलम-स्वभाव-मनुष्य होते हैं। अब तीसरे प्रकार के मनुष्यों को लीजिये, वे मनुष्य वीर और मुक्त पुरुष होते हैं। ये वे लोग हैं, जिनका चित्त किसी प्रकार से

परिस्थिति से विक्षिप्त नहीं होता, चाहे कोई ही बात उनके सामने हो, वे शान्त और निश्चल रहते हैं; चाहे घूरते हुए सागर की उछलती हुई लहरों (तरंगों) में उन्हें रख दो, वे वैसे के वैसे रहेंगे। चाहे उन्हें युद्ध में रख दो, तब भी वैसे के वैसे ही रहेंगे। आप उनके मित्र हैं, आज उनसे आप बातचीत करें, आप उन्हें सर्व प्रकार की बातें कह डालें (अर्थात् कटाक्ष वा उपालंभ लगा लें), वे उनका प्रत्युत्तर नहीं देंगे। जिस क्षण आप उनसे अलग होते हैं, उनका चित्त पूर्ववत् वैसा का वैसा ही शुद्ध, पवित्र और हरा-भरा रहता है। एक निरासक्त, मुक्त पुरुष के साथ आप हजारों वर्ष रहें और चले जाँय, इससे आप उनके चित्त में किंचित् विक्षेप न डाल सकेंगे। वे ठीक दर्पणवत् होते हैं, जैसे दर्पण आपका मुखड़ा आपको वापिस दिखलाता है। आप जानते हैं कि दर्पण आपके मुख का ठीक-ठीक चित्र तो नहीं खींचता। यदि कुंडल आप के बायें कान में है, तो दर्पण में दायीं ओर के कान में आप उसे पायेंगे। इसी प्रकार दायाँ बायाँ हो जाता है, बायाँ दायाँ होता है। आप सैकड़ों वर्ष दर्पण के सामने रहें, दर्पण सैकड़ों वर्ष तक आपको वैसा ही दर्शाता रहेगा। दर्पण को अलग कर दें, दर्पण तब भी वैसा का वैसा ही है; ऐसा ही ज्ञानवान् मुक्त पुरुष का हाल है। वह ऐसा है, जिस पर बाहर के दूषण अपना चिह्न नहीं छोड़ सकते (अर्थात् उसे दूषित नहीं कर सकते), जिसको कोई भी दूषित और कलंकित नहीं कर सकता और जो नित्य स्वतंत्र वा असंग रहता है। आप आयें और चाहे सारे समय उसकी स्तुति करके चले जायँ, तो आपके पीछे उसका चित्त उस स्तुति की जुगाली नहीं करता रहेगा अर्थात् चित्त उस स्तुति को पुनः-पुनः ध्यान में लाकर फूलता नहीं रहेगा। आप आयें और चाहे गुणदोष

विवेचक दृष्टि से और चाहे छिद्रान्वेषक वा कुटिल दृष्टि से उस पर दोष लगा जायँ; आपके चले जाने के बाद वह आप के इस दोष-निरूपण वा छिद्रान्वेषण को बार-बार ध्यान में नहीं लायेगा। क्योंकि असंग, निःसंग हुआ वह अपने आत्मा में निश्चय रखता है।

अब राम कहता है कि यदि आप वेदान्त को ठीक-ठीक पढ़ें और उसकी शिक्षा को नित्य अपने सम्मुख रक्खें, प्रणव या अन्य कुछ चिन्हों द्वारा अपने भीतर के बोध के साथ, अपने भीतरी विचारों से ठीक दिशा में लग कर आप अपने ईश्वरत्व का ध्यान करें, और नित्य अपने सत्य स्वरूप को सम्मुख रक्खें, तो यदि आपका चित्त शुरू से अस्थिर एवं चंचल स्वभाव (unstable equilibrium) है, फिर स्थिर स्वभाव (stable equilibrium) हो जायगा, और यदि वह (शुरू से) स्थिर व एकाग्र स्वभाव है, तो वह दर्जे व दर्जे समता (neutral equilibrium) को प्राप्त कर लेगा; तब यह वेदान्त, यह सचाई आपको हरदम अपने सम्मुख रखनी होगी। नित्य इस अवस्था में रहने के लिए राम अब आपको कुछ बाहर के साधन व सहकारी उपाय बताता है। इन्हें आज़माओ और आप देखेंगे कि यद्यपि लोग इसका उपदेश नहीं करते, तथापि यह है एक विचित्र उपदेश। आप यह देखेंगे कि जब लोग राम के पास आकर बातचीत करते हैं, तो कई समय दूसरों में छिद्रान्वेषण (कुटिल और दोष-दृष्टि से छिद्रान्वेषण) करके चले जाते हैं। आप जानते हैं, राम कैसे अपने आपको उनके विचारों और उपदेशों से बचाये रखता है? इसके नाना रास्ते हैं। एक रास्ता यह छोटी सी पुस्तक है जो आप अपने सामने देखते हैं, यह एक अद्भुत पुस्तक है। यह पुस्तक एक ऐसे मनुष्य द्वारा लिखी गई है, जिसकी बराबरी का कहीं नहीं मिलता है। यह मनुष्य प्रसिद्ध नहीं है। यह मनुष्य

भारतवर्ष में पूजा नहीं जाता। यह पुस्तक *श्रीमद्भगवद्गीता के समान प्रसिद्ध नहीं है, यह श्रीभगवान् कृष्ण द्वारा नहीं लिखी गई। यह उस मनुष्य द्वारा लिखी गई,जो नाम और कीर्ति से अपरिचित था। किन्तु यह एक मनुष्य है, जो आपको समस्त क्राइस्ट, कृष्ण, बुद्ध, सारे के सारे समझाता है। राम इस पुस्तक को लेता है। आप जानते हैं, यह संस्कृत में है, और जब इस पुस्तक में से राम एक पद पढ़ता है, तो जन्माजन्म के कलंकों को तथा समस्त हृदय-तल को धोने और साफ़ करने के लिए यह काफ़ी होता है। यह तत्क्षण राम को हर्षोन्माद (ecstasy, अत्यन्तानन्द) की अवस्था में डाल देता है। यह छोटी सी पुस्तक, इस पुस्तक का एक एक पद राम के हृदय को हिला देता है और उसे उन्नत कर उसमें ईश्वरत्व का विकास कर देता है। यह पुस्तक नीच प्रवृत्तियों का नाश कर देती है, और तत्क्षण माया के पर्दे को फाड़ देती है। इसलिए राम आपसे कहता है कि आप भी इसी प्रकार की पुस्तक अपने पास रक्खें, आप अपने पास कुछ ऐसे स्तोत्र रक्खें जो आपको वा आपके विचारों को उन्नत कर सकें, आपमें रूह फूँक सकें, अर्थात् आपको प्रबोधन कर सकें; और अपने पास कुछ ऐसे भजन रक्खें, जो आपको तत्काल प्रबोधन करा सकें; आप अपने पास ऐसी कविता रक्खें जो आपको चोट लगायें और ईश्वर की ओर प्रेरें। आप अपने पास बाइबिल, सर्मन ऑन दी मोंट (Sermon on the Mount) रक्खें। आप अपने प्रिय (रुचिकर) लेखकों के पदों (फ़िक़रों) और वचनों पर निशान लगायें, ऐसे पदों (फ़िक़रों पर) जो आपमें रूह फूँक सकें, या ऐसी कोई प्रेरणा पैदा कर दें जो आपके विचारों को ऊँचा करे। आप अपने पास एक छोटी नोट बुक रक्खें, जिस में

*ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय स्वामी जी के पास अवधूत गीता थी।

आप ऐसे वचनों को जमा कर रक्खें जो आपको उत्तेजित करें, आपको ऊपर उठावें, जो आपको प्रार्थना या उपासना के भावों से भर दें। आप इसी पुस्तक को रख लें, आप प्रसन्नता से इस पुस्तक के अन्त में यह कविता लिख लें। "Oh, brimful is my cup of joy"—"ओह! मेरे हर्ष का प्याला ऊपर तक पूर्ण है।" यह कविता या ऐसी ही कोई बात जो सत्पथ में आपको उत्तेजित, उत्साहित करे आप इसमें लिख लें, इसे आप हर वक्त ठीक हाथ तले (समीप) रक्खें, और जब आप मित्रों से मिलकर हटें, या जब आप भिन्न स्वभाव संगति को छोड़ें, तब अपने मन को भटकने, विक्षिप्त या निरन्तर भ्रमित अवस्था में रहने देने के स्थान पर आप तत्काल उस रूह फूँकनेवाले, उत्तेजित एवं प्रबोधन करनेवाले पद को ले लें, और उससे अपने चित्त को स्थिर और सावधान करें।

अब आप देखें कि राम ने आपको कारण अर्थात् मन का साधारण रोग बता दिया है। राम ने साधारण रीति से मानुषी आध्यात्मिक रोग को आपके सामने रख दिया है। (मन का) साधारण रोग ही चञ्चल स्वभाव है। और राम ने आपको बता दिया है कि कैसे हम मन को स्थिर एवं अचल रख सकते हैं।

हम इस विषय को अब किसी दूसरे समय शुरू करेंगे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

दुःख में ईश्वर

[तारीख ८ फरवरी १९०३, रविवार के तीसरे पहर का भाषण]

मनुष्यों को दुःख क्यों होता है? जगत् में दुःख का क्या कारण है? इस प्रश्न पर आज तीसरे पहर विचार होगा।

इतिहास में, अथवा पौराणिक ग्रन्थों में जो कुछ पढ़ा है, उसकी दृष्टि से, एवं महात्माओं के वचनों (उक्तियों), और बुद्धिमान् पुरुषों की सम्मतियों की दृष्टि से राम इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा। यह ठीक है कि इन बड़े-बड़े विद्वानों, लेखकों, महान् विचारकों तथा ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने सत्य ही कहा है। परम सत्य का जैसा रूप उनके अनुभव में आया, वैसा ही उन्होंने प्रकट किया है। परंतु जब तक आप स्वयं पूरी छानबीन न करेंगे और स्वयं अनुभव करके न देखेंगे, तब तक दुनियाँ के सारे लेखकों की सारी रचनाओं को इकट्ठा करने से भी विशेष लाभ न होगा। राम केवल वही कहेगा, जो उसने निज अनुभव द्वारा देखा है, और जो प्रत्येक व्यक्ति अपने आप अनुभव द्वारा देख सकता है।

आजकल लोगों में, बड़े-बड़े सज्जनों, इतिहासज्ञों एवं बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के प्रमाण देने की बड़ी रुचि है। और जो वक्ता उन महान् पुरुषों का प्रमाण दे सकता है, वही अधिक सन्मानित होता है। यह प्रवृत्ति आत्मघातिनी है। राम आपको अपने अनुभव की बातें कहेगा और यह बतलायेगा कि आप अपने अनुभव से क्या-क्या सीख सकते हैं।

जगत् के दुःख का प्रधान कारण यह है कि "हम आन्तरिक अवलोकन नहीं करते, हम स्वयं अपनी सम्मति स्थिर नहीं

करते, बहुत-सी बातों को हम यों ही मान लेते हैं, हम अपने सोचने का काम बाह्य शक्तियों के भरोसे छोड़ देते हैं।"

हम लोग भीतर बैठकर नहीं देखते, अपने बल पर भरोसा नहीं रखते; दूसरे जो कुछ कह देते हैं, उसे ही स्वयं-सिद्ध मान लेते हैं। मुहम्मद, बुद्ध और कृष्ण में विश्वास रखने के अतिरिक्त हम लोगों ने बेहिसाब अपूज्य देवताओं को भी गढ़ रक्खा है, जिनके आगे हम सिर झुकाते हैं। एक बालक ही यदि हमारे आचरण की टीका-टिप्पणी कर डालता है, तो बस, उतना ही हमारी शान्ति को भंग करने के लिए, हमें क्लेश पहुँचाने के लिए काफ़ी है। हम दूसरों के विचारों, दूसरों की आलोचनाओं की हद से ज्यादा परवाह करते हैं, और उन की कृपा संपादन करने में बेहिसाब समय बरबाद करते हैं। अपने आपको अड़ोस-पड़ोस के लोगों की ही आँखों से देखना, अपने सच्चे स्वरूप पर स्वयं ध्यान न देना बल्कि दूसरों की ही दृष्टि से अपना निरीक्षण करना, यह जो स्वभाव है, वही हमारे सारे दुःखों का कारण है। दूसरों की दृष्टि से अपने को देखने की जो आदत है, उसे ही वृथा अभिमान, आत्म-श्लाघा (Self aggrandisement) कहते हैं। हम दूसरों की नज़रों में अत्यन्त भले जँचना चाहते हैं। यही समाज का सामाजिक दोष है, और सभी धर्म्मों का प्रधान अवगुण है।

हिन्दुस्तान के एक ग्राम में एक आधा पागल (नीम पागल) रहता था। जैसे यहाँ, अमेरिका में अप्रेल के महीने में दूसरों को उल्लू बनाने की रीति है, वैसे ही भारतवर्ष में मार्च के महीने मे लोग अपने यार-दोस्तों के साथ तरह-तरह की ठट्टा-मसखरी (मज़ाक़) किया करते हैं। उस ग्राम के हँसमुख युवकों ने उस नीम पागल से मज़ाक उड़ाने का यह अच्छा अवसर समझा। बस, उन सभों ने उसे कुछ शराब पिलाकर मस्त बना डाला, और फिर

उसके परम विश्वस्त, परम हार्दिक मित्र को उसके पास भेज दिया। उस पगले मनुष्य के नजदीक आते ही उसका मित्र गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगा, आंखों से दिखावटी आँसुओं की धारा बहाने लगा, रोने-धोने लगा, और बोला, "भाई, मैं तुम्हारे घर से अभी अभी आ रहा हूँ, वहाँ मैंने देखा कि तुम्हारी स्त्री विधवा हो गई है, मैंने उसे विधवा देखा।" इस पर वह पागल भी अपनी पत्नी के वैधव्य (विधवापन) पर रोने-चिल्लाने और विलाप करने लगा और आँसू बहाने लगा। अन्त में दूसरे लोग आकर पूछने लगे, "तुम रोते क्यों हो?" पगले ने उत्तर दिया, "मेरी स्त्री विधवा हो गई है? इसीसे रोता हूँ।" वे बोले, "यह हो कैसे सकता है? तुमतो जीते हो और कहते हो मेरी स्त्री विधवा हो गई है? जब तक तुम उसके पति नहीं मरते, वह विधवा कैसे हो सकती है? तुम मरे नहीं, तुम स्वयं अपनी स्त्री के वैधव्य पर शोक कर रहे हो, यह तो बिलकुल बेतुकी बात है।" पर वह पागल कहने लगा, "अरे, जाओ; तुम नहीं जानते, तुम नहीं समझते; हमारे उस अत्यन्त विश्वास-पात्र मित्र ने कहा है, जो अभी हमारे घर से होकर आ रहा है, उसने हमारी स्त्री को वहाँ विधवा देखा है। वह इस बात का साक्षी है; वह देख आया है कि मेरी स्त्री विधवा हो गई!" लोगों ने कहा—"देखो, यह कैसा भारी अनर्थ (बेहूदापन) है" (हँसी)। अभी हम इस मूढ़ की कहानी पर हँस रहे हैं कि वह अपनी स्त्री के वैधव्य पर रो रहा था और लोगों की बात नहीं मानता था कि उसके जीवित रहते उसकी स्त्री विधवा नहीं हो सकती, मानो अपने व्यवहार से वह कह रहा है :—

"तुम तो कहते हो सच मेरे भाई!
पर घर से आया है मोतबर नाई।

किंतु याद रहे, जगत् के मत-पथ, धर्म तथा सभी धर्मी,

अभिमानी और 'फ़ैशनेबुल' लोग ऐसी ही विकट असंभव बातें कर रहे हैं। न तो वे अपने नेत्रों से देखते हैं और न अपने मस्तिष्क से सोचते हैं। यहाँ ही देखिये, आपका अपना आत्मा, आपका सत्य स्वरूप, प्रकाशों का प्रकाश, निरंजन, परम पवित्र, स्वर्गों का स्वर्ग, आपके भीतर विद्यमान है। आपका अपना आप, आपका आत्मा सर्वदा जीवित, अजर, अमर, नित्य उपस्थित है, फिर भी आप रो-रोकर आँसू ढारते हुए कहते हो, "अरे, हमें सुख कब प्राप्त होगा ?" और देवताओं का आवाहन करते हो कि वे आकर तुम्हें विपत्ति से उबार दें। आप देवताओं के आगे प्रणिपात होते हो, नीच भिखारी (snecking habits) का अवलंबन करते हो, और स्वयं अपने को तुच्छ समझते हो। क्योंकि अमुक लेखक, अमुक उपदेशक या महात्मा अपने को पापी कह गया है, वह हमें कीड़े-मकोड़े कहकर पुकारता है, इसलिए हमें भी वही करना चाहिए, इसलिए अपने को मृतक समझने में ही हमारी मुक्ति है। इसी तरीक़े से लोग सभी चीज़ों पर दृष्टि डालते हैं; पर इससे काम चलने का नहीं। अपने निज जीवन का अनुभव करने लग जाओ; अपने निजात्मा को भान करना आरम्भ कर दो। इस नशे की हालत को विदा कर दो जो आपको अपनी मृत्यु पर रुला रही है। अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ, चाहे आप छोटे हो या बड़े, चाहे आप उच्च पद पर हो या नीच पद पर, इसकी तनिक परवाह न करो। अपनी प्रभुता का, अपनी दिव्यता का साक्षात्कार करो। चाहे कोई हो, उसकी ओर निःशंक दृष्टि से देखो, हटो मत। अपने आपको औरों की दृष्टि से अवलोकन मत करो, बल्कि अपने आप में देखो। आपका अपना आप आपको बारंबार यह उपदेश देगा कि "सारे संसार में आप सबसे महान् (आत्मा) हो।"

इसी प्रकार लोग कहते हैं कि वेदान्त या बौद्धमतादि हमें ऐसा मानने को कहते हैं, किन्तु राम कहता है कि आपके अन्तर्स्थित स्वर्ग से यह वाणी निकल रही है कि आप अपने को क्षीण, जीर्ण और पापिष्ट कभी मत समझो। अपने भीतर के दिव्य स्वरूप का अनुभव करो।

'The mountain and the squirrel
Had a quarrel;
And the former called the latter 'Little Prig'
Bun (squirrel) replied:—
"You are doubtless very big;
But all sorts of things and weather
Must be taken in together,
To make up a year,
And a sphere
And I think it no disgrace
To occupy my place.
If I'm not as large as you,
You are not so small as I,
And not half so spry,
I'll not deny you make
A very pretty squirrel track,
Talents differ; all's well and wisely put.
If I cannot carry forests on my back.
Neither can you crack a nut."

एक बार पर्वत गिलहरी में हुई लड़ाई;
"तुच्छ जीव—घमंडी!" कह, गिरि ने अकड़ दिखाई।
गिलहरी बोली,—"तुम महान् हो, यह तो है सत्य;
किन्तु बरस भर में सब ही ऋतु आवश्यक हैं।

"ज्यों छोटी और बड़ी चीज़ मिल 'ग्रह' है बनती,
मैं जैसी हूँ, अतः उसे मैं बुरा न गिनती।
"यदि मैं तुमसी बड़ी नहीं, तो लघुता को मम,
तुम भी पाते नहीं; न हो चंचल मेरे मन।
"बात नहीं ऐसी कि कुछ मुझे अस्वीकार हो—
बन पथादि के सहते तुम संपूर्ण भार हो।
"बुद्धि भिन्न हैं, बाह्य भेद भी दुनिया में हैं,
किन्तु सुभग उपयुक्त सभी निज-निज थल में हैं।
"हम न बनों को अपनी पीठ उठा यदि सकते,
तो वृक्षों से, भला, तोड़ फल क्या तुम सकते?';

इस प्रकार, आपका शरीर उस क्षुद्र गिलहरी के समान छोटा हो सकता है, और आपसे भिन्न कोई दूसरा शरीर पर्वताकार हो सकता है, पर इससे अपने को आप कनिष्ट मत समझो। उस चमरपुच्छ (गिलहरी के) समान बुद्धिमान् बनो। याद रक्खो, यदि आपका शरीर अत्यन्त छोटा भी हो तथापि इस संसार में आपको कोई ऐसा विशेष कार्य्य करना है, जो विशाल शरीर से संपादित नहीं हो सकता। तब आप अपने आप को तुच्छ क्यों समझो? आनन्दित और प्रसन्नचित्त रहो।

एक सज्जन राम के पास आये, और कहने लगे कि मेरा बड़ा अफ़सर सदैव मेरे साथ बुरा बर्ताव करता है। राम ने उससे कहा कि आपका अफ़सर आपको इसलिए नीच दृष्टि से देखता है कि आप स्वयं अपने को नीच दृष्टि से देखते हो। यदि हम अपना सम्मान स्वयं करें, तो प्रत्येक मनुष्य अवश्य हमारा सत्कार करेगा। यदि इस छोटी-सी पुस्तक पर एक आना मूल्य लिखा हो, तो इसके लिए कोई दो आने नहीं देगा। पर इस छोटी पुस्तक का मूल्य १) रु० रक्खा गया है, तो सभी इसके लिए १) देने को राजी हैं।

इसी तरह आप अपना मूल्य कम कर दो, और देखो, कोई भी आप का अधिक मूल्य नहीं समझेगा। स्वयं अपना अधिक-से अधिक मूल्य निर्धारित करो, आत्म-सन्मान करो, अपने देवत्व (divinity), अपने ईश्वरत्व (godhead) को भान करो और प्रत्येक मनुष्य को वह मूल्य देना ही पड़ेगा।

लोग कहते हैं कि विश्वास आपका उद्धार करेगा, परन्तु बाह्य सिद्धान्तों (Principles) का विश्वास आपका उद्धार नहीं करेगा, किन्तु अपने निजी स्वरूप का विश्वास आपका उद्धार करेगा। अपने दिव्य स्वरूप में निश्चय रखते हुए विश्वास करो, आत्म-सम्मान करो, तब प्रत्येक मनुष्य आपका सम्मान करेगा।

जिस सद्गृहस्थ ने राम से अपने अफ़सर की शिकायत की थी, उसने राम के उपदेशानुसार अपने समय को अपने आत्म-देव के अनुभव में बिताना शुरू किया। वह नित्य प्रार्थना करने लगा। पर प्रार्थना का यह अर्थ नहीं कि किसी शब्द को बराबर दुहराते रहना, बल्कि अपने आत्मदेव का भान करना और अनुभव करना ही प्रार्थना है। वह इस प्रकार प्रार्थना करने लगा। इसका फल उसने देखा कि उनके अफ़सर को अब उसका सम्मान और उसके साथ सद्व्यवहार करना ही पड़ता था। एक दिन उसका अफ़सर बहुत खीझ कर बोला, पर उस सज्जन ने अति मधुर स्वर से, मनोहर रीति से उत्तर दिया और कहा—भगवन्! अवश्य ही आपकी तनख्वाह मेरी तनख्वाह से बहुत बड़ी है, और मैं जानता हूँ कि आप जो विशेष काम करते हैं, वह मुझसे नहीं होने का, और आप से मुझे सदा काम रहता है, यह भी सत्य है। पर इसके साथ यह भी सत्य है कि आपको भी मेरी आवश्यकता है। क्या मेरी जगह पर किसी को रक्खे बिना आप काम चला सकते हैं? नहीं, आप नहीं कर सकते। अतः जैसी मुझे आपकी अत्यन्त आवश्यकता है, वैसी ही आपको मेरी अत्यन्त

आवश्यकता है, और वस्तुतः आपको पहले मेरी जरूरत हुई। आप को इस जगह पर किसी के रखने की जरूरत हुई और इसलिए आपने मुझे बुला भेजा! मैं आपकी सेवा नहीं करता। यदि मैं किसी का सेवक हूँ, तो अपनी ही जरूरतों और आवश्यकताओं का सेवक हूँ। मैं आपका नौकर नहीं, बल्कि अपना नौकर हूँ। मैं किसी का दास नहीं। उत्तम अर्थ में सेवा करना ठीक है।

ऐसी अवस्था में आप जगत में किसी के अधीन नहीं हो, यदि कोई अपनी ही इच्छाओं के अधीन है, तो ऐसी अवस्था में आप जगत् में किसी और के अधीन नहीं। बाह्य अधीनता तो केवल भ्रम है। वास्तव में तो हम केवल अपने ही अधीन हैं। अतः आप अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करो, उसे प्राप्त करो, तुम्हें अपने को किसी देवता या ईश्वर, मुहम्मद वा कृष्ण अथवा संसार के किसी महात्मा के अधीन क्यों समझना चाहिए? तुम सब-के-सब स्वतंत्र हो, मुक्त हो। मुक्ति के भाव को ग्रहण करते ही वह तुम्हें सुखी बना देगा।

एक बार एशिया के एक राजा ने एक आदमी को अपराधी समझा, उसको अपराधी इसलिए समझा कि उसने राजा को सलाम नहीं किया था। उस बूढ़े राजा को जब कोई सलाम न करता, तो वह बहुत क्रोधित होता। उस अपराधी से राजा ने कहा—"तू नहीं जानता कि मैं कितना प्रतापी और कठोर शासक हूँ? तू इतना धृष्ट है! तुझे मालूम नहीं कि मैं तुझे मार डालूँगा?" उस (मनुष्य) ने इसके मुँह पर थूक दिया और इतनी कड़ी नजर से उसकी ओर देखा कि वह राजा घबड़ा गया। फिर वह बोला—"अरे मूर्ख पुतले! यह तेरी शक्ति, तेरे अधिकार में नहीं कि तू मुझे मार सके। मैं आप अपना स्वामी हूँ। तेरा अपमान करना मेरी शक्ति में है, यह मेरे अधिकार में है कि मैं

तेरे मुँह पर थूक दूँ, और यह भी मेरे अधिकार में है कि इस शरीर को सूली पर चढ़ा देखूँ, अपने शरीर का मैं आप स्वामी हूँ। तेरा अधिकार पीछे है, मेरा अधिकार पहले है।" इसी प्रकार महसूस करो, अनुभव करो कि आप सदा अपने स्वामी हो। निज आत्मा की दृष्टि से सब चीजों को देखो, दूसरों की आँखों से नहीं। अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करो, अनुभव करो कि आप ईश्वरों के ईश्वर, स्वामियों के स्वामी हो, क्योंकि आप वही हो, 'तत्त्वमसि'।

लोग क्यों दुःख सहते हैं? वे दुःख भोगते हैं निज आत्मा की अज्ञानता के कारण, जिससे उनको अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है, और जो कुछ दूसरे उनको कहते हैं, वही वे अपने को समझ लेते हैं। और यह दुःख तब तक बराबर बना रहेगा, जब तक मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर लेगा, जब तक यह अज्ञान दूर नहीं हो जायगा।

अज्ञान ही अन्धकार है। यदि किसी अँधेरे घर में आप जाओ, तो दीवार अथवा किसी और चीज से आप अवश्य ही टक्कर खायेंगे, अवश्य किसी प्रकार की चोट खायेंगे। यह अनिवार्य्य है, आप इससे बच नहीं सकते। कहीं-कहीं पूर्वी हिन्दुस्तान में झोपड़ियों में रहनेवाले कुछ लोग इतने अकिंचन होते हैं कि घर में एक दीपक भी नहीं जला सकते। राम ने गलियों में आते-जाते समय अक्सर देखा है कि घर का स्वामी अँधेरे घर में आते जाते अवश्य अपनी स्त्री या अन्य गृहवासियों को दोष देता है। वह कहता है—"अरे, तुमने यह मेज यहाँ क्यों डाल रक्खी है, अभी मेरा घुटना टूट चुका था?" अथवा इस कुरसी को यहाँ क्यों रक्खा है, अभी मेरा हाथ टूट जाता!" अथवा इसी तरह की कुछ और शिकायत करता है। क्या इसकी कोई दवा है? नहीं, बिलकुल नहीं, क्योंकि यदि वह मेज या कुरसी

घर के दूसरे कोने में रक्खी जाय, तो उसे अँधेरे में जब वहाँ जाना होगा, तब वह वहीं चोट खायगा। जब तक अंधकार है, तब तक हाथ, पैर, गर्दन वा सिर अवश्य टूटेगा, अवश्य ही कभी सिर दीवाल से टकरा उठेगा, यह बचाया जा नहीं सकता। यदि घर में सिर्फ चिराग़ जला दो, तो फिर आपको परेशान होने की ज़रूरत नहीं। जो जहाँ है, उसे वहीं रहने दो, आप एक जगह से दूसरी जगह बिना चोट खाये आ-जा सकते हैं।

संसार की भी यही दशा है। यदि आप अपने दुःखों का अन्त करना चाहें, तो आपको इसके लिए अपनी बाह्य परिस्थिति पर या अपने सामाजिक पद (ओहदे) के समाधान (adjustment) पर भरोसा नहीं करना चाहिए, वरन् अन्तस्थित सूर्य के समीकरण के उपाय पर भरोसा रखना चाहिए। सब लोग, मानो फरनीचर (furniture, सामान) को यहाँ से वहाँ हटा कर, एवं सांसारिक पदार्थों को इधर से उधर फेरकर, द्रव्य इकट्ठा कर, या बड़े-बड़े महल बनवाकर, अथवा दूसरों की ज़मीन मोल लेकर, दुःख से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। अपनी परिस्थिति के सुधारने, एवं चीज़ों को इस तरह वा उस तरह सजाने से आप कभी दुःख से नहीं बच सकते। केवल अपने घर में दीपक जलाने से, प्रकाश प्रकाशित करने से केवल अपने हृदय की अँधेरी कोठरी में ज्ञान का प्रवेश करने से ही दुःख छूट सकता है, हटाया जा सकता है या दूर किया जा सकता है। अन्धकार दूर होने दो, फिर कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता।

हिमालय के किसी भाग में कुछ ऐसे जंगली लोग रहते थे, जिन्होंने आग कभी जलाई ही न थी। पहले के जंगली लोग आग न जलाते थे—आग जलाना उन्हें मालूम न था। मछली को सुखा कर और अन्न को सूर्य की किरणों में पकाकर वे खाते थे।

वे संध्या होते ही सो जाते और सूर्योदय के बाद उठा करते थे। इस प्रकार अँधेरे से उन्हें कभी काम नहीं पड़ता था। उनके निवास-स्थान के निकट ही एक बड़ी भारी गुहा (गुफा) थी। वे जंगली समझते थे कि हमारे पूज्य पितर लोग इसी में रहते हैं। वस्तुतः बात यह थी कि किसी समय उनके कोई पूर्वज उस गुफा में गये थे, और दलदल में फँसकर या किसी नुकीली चट्टान से टकराकर मर गये थे। अतः वे जंगली लोग उस गुफा को पवित्र और पूज्य मानने लगे थे। पर उन बिचारों को अँधेरे का ज्ञान न होने से वे उस गुफा के अंधकार को बड़ा भारी राक्षस समझते थे और उसे दूर करना चाहते थे (हँसी)। आप लोग इस मूर्खता पर हँसते हैं, पर आज-कल के लोग इससे कहीं बड़ी वज्र मूर्खता कर रहे हैं; अस्तु। किसी ने कहा कि उस अन्धकार रूपी राक्षस की पूजा करो तो वह गुफा त्यागकर चला जायगा। बस, वे सब-के-सब गुफा के नज़दीक जाकर बरसों उसे दण्डवत् प्रणाम करते रहे, पर अन्धकार इस भक्ति-भाव से दूर नहीं हुआ। इसके बाद किसी ने सम्मति दी—"अँधेरे को धमकाओ और उसके साथ युद्ध करो, तो वह भाग जायगा।" फिर क्या था, सब अपना-अपना तीर-कमान, भाला, लकड़ी आदि फेंकने लगे; पर अँधेरा उससे भी दूर न हुआ, किञ्चित् भी विचलित न हुआ। तीसरे ने कहा—"उपवास करो, उपवास! उपवास करने से अन्धकार हटेगा, अब तक तुम लोग उलटा बातें कर रहे थे, असल में उपवास की आवश्यकता है।" बिचारे उपवास करने लगे, परन्तु वह राक्षस गुफा से न हटा. अन्धकार दूर न हुआ। तब अन्य किसी ने कहा—"दान करने से अँधेरा दूर होगा।" इस पर जो कुछ उनके पास था, वे सब दान में देने लगे। पर पिशाच ने इस पर भी गुफा न छोड़ा। अन्त में एक आदमी

आया, उसने कहा—"मेरी बात मानो, तो अन्धकार दूर हो जायगा।" तब उन्होंने पूछा कि वह क्या बात है? उसने उत्तर दिया—"कुछ बाँस की लकड़ियाँ लाओ, थोड़ी-सी घास उन्हें बाँधने के लिए और थोड़ा मछली का तेल लाओ।" फिर उसने कुछ चिथड़े, खर या काई अथवा कोई और चीज जलाने के लिए माँगी। इन सबों को बाँस के किनारे लपेट कर, चकमक पत्थर से आग झाड़ी और उस घास को जलाया। आग जलाई गई। इन जंगलियों ने आग पहले कभी देखी न थी, इसलिए यह जलती हुई आग उनके लिए एक अनोखा दृश्य था। अब उस मनुष्य ने उन सबों से कहा कि इस मशाल को लेकर गुफा में जाओ और जहाँ वह अन्धकार-राक्षस मिले, वहाँ से उसे कान पकड़कर बाहर घसीट लाओ। पहले उन्हें इस पर विश्वास न हुआ। वे कहने लगे—"यह कैसे ठीक हो सकता है। हमारे पूर्वजों ने उपवास करना, दान देना, पूजा आदि बतलाया था। वह सब करने पर भी यह राक्षस दूर नहीं हुआ, अब इस अनजाने आदमी पर कैसे विश्वास कर लें, यह निःसन्देह हमें ठीक राय नहीं दे सकता। इसकी राय व्यर्थ है। ओ, हम तो इसको नहीं मानेंगे?" उन लोगों ने आग बुझा दी, पर कुछ दूसरे थे, वे इतने पक्षपात-पूर्ण नहीं थे। वे प्रकाश लेकर गुफा में गये, पर वहाँ तो वह पिशाच था ही नहीं! वे उस लम्बे खोह में आगे ..ढ़े गये, फिर भी राक्षस दिखाई न पड़ा। तब उन लोगों ने सोचा कि राक्षस कहीं सुराख या दरार में छिपा होगा, इसलिए कोने-कोने में रोशनी ले गये, पर राक्षस कहीं नहीं मिला, मानो वह कभी उसमें था ही नहीं।

ठीक वैसे ही आपके अन्तःकरण की गुहा में अज्ञानांधकार रूपी राक्षस घुसा हुआ है। वही दुःख और डर उत्पन्न कर इस सृष्टि को नरक-तुल्य बनाता है। सारी चिन्तायें, सारे

दुःख दर्द आपके भीतर ही रहते हैं, कभी बाहर नहीं होते। जब कोई आपको गालियाँ देता है या अपशब्द कहता है, तब मानो वह आपके लिए ऐसा भोजन तैयार करता है, जो ग्रहण करने से हानि करेगा। इस प्रकार कोई भी वस्तु तब तक आप को क्षुब्ध वा क्रुद्ध नहीं कर सकती, जब तक आप उसे लेकर हृदय में धारण न कर लें। राम कभी किसी विषय को अपने भीतर नहीं लेता। राह चलते समय राम पर कितने ही लोग टीका करते हैं, पर ऐसे शब्दों का तब तक कोई असर नहीं होता, जब तक उन्हें सत्य मानकर हृदय में न रक्खा जाय।

वेदान्त की दृष्टि में वही मनुष्य साक्षात्कार को पाये हुए है, जो ऐसे विषैले भोजन को जरा भी ग्रहण और स्वीकार करने का कष्ट नहीं उठाता। ऐसा स्थित-प्रज्ञ पुरुष अपनी वृत्ति में कभी विक्षिप्त या क्षुभित होने नहीं देता।

अपने सत्य स्वरूप, अपने ईश्वरत्व में स्थित रहो। दूसरों की निन्दा, दूसरों पर दोषारोपण करनेवालों पर दया करो। अपने को अपमानित, पद-दलित वा पतित कभी मत समझो। अपने 'ऐश्वर्य्य' की प्रतीति करो, अपने दिव्य स्वरूप में निष्ठा रक्खो; अन्यथा सब अज्ञान है, और सब कुछ अन्धकार है। आपके अन्तः करण का अज्ञान ही है, जो आपके लिए (संसार को) नरक बनाता है। इस अंधकार को दूर करने के लिए आप (ज्ञान के अतिरिक्त) चाहे जो उपाय भले ही करें, पर किसी से कुछ न सरेगा।

जब तक आप अपने अन्तःकरण के अन्धकार को दूर करने पर न तुलोगे, तब तक तीन सौ तेंतीस कोटि क्राइस्ट क्यों न अवतार लें, पर तो भी कुछ लाभ न होगा। परावलम्बी मत बनो। जब तक आपके हृदय में अज्ञान है, तब तक इस देव-मन्दिर से उस मन्दिर में जाना, या इस समाज से उस

समाज में सम्मिलित होना, तथा क्राइस्ट या कृष्ण के आगे प्रार्थना करना, यह पूजा, यह पदार्थ-पूजा या वह पदार्थ-पूजा, सब बेकार हैं। जो मन माने करो, किन्तु कुछ होने का नहीं। इसका एकमात्र उपाय है प्रकाश, और वह प्रकाश है अपने दिव्य स्वरूप का ज्वलन्त ज्ञान और उसमें जीता-जागता विश्वास। यही एकमात्र उपाय है, और दूसरी राह नहीं—(नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।)

ऐ महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में विराजमान देव! ऐ प्रति-व्यक्ति-रूप में मेरे आत्मन्! इन सब शरीरों के रूप में ऐ मेरे प्रिय शुद्ध अपना आप! ऐ सर्व-देह-रूपिणी जगज्जननि! ऐ सबरूपधारी आनन्दमय आत्मन्! प्रकाश का तात्पर्य्य है सत्य का इतना अधिक अनुभव कि सब दृश्यमात्र देह और रूप शून्यता में परिणत हो जायँ।

भीतरी प्रकाश या सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव वस्तु-मात्र को स्फटिक बना देगा और सब नाम-रूप व्यक्तियों को वायु का बुद्बुदा सा बना देगा। अनुभवी पुरुष के सामने कैसा ही व्यक्ति आ जाय, वह उस व्यक्ति के तुच्छ अहंकार या बाह्य-शरीर को नहीं देखेगा, वह केवल (उसमें) ईश्वरत्व देखेगा। उसके लिए तो बाह्य रूप या शरीर एक मिथ्या भ्रम, अन्धकार और अज्ञान है।

अज्ञान के दूर होने का तात्पर्य है ईश्वर-दर्शन, अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन, तत्त्व-मात्र का साक्षात्कार, आत्मा का अनुभव और सब भय तथा चिन्ता से छुटकारा!

ऐ दिव्यस्वरूप! ऐ परमात्मदेव!! इन सब शरीरों में विद्यमान, ऐ मेरे परम प्रिय परमेश्वर!!! औरों की दृष्टि में जो लोग मेरे शत्रु कहलाते हैं, वे सब-के-सब वस्तुतः मेरे निजात्मा हैं; और जो लोग दूसरों की दृष्टि में मेरे मित्र कहलाते हैं, वे सब-

के-सब भी वस्तुतः मेरे निजात्मा हैं। क्षुद्र अहंभाव को मत देखो, बाह्य व्यक्तित्व पर ध्यान न दो। अन्य सब शरीरों में ही नहीं, अपितु अपने शरीर में भी ईश्वर-दर्शन करना ही प्रकाश है, जिससे निज आत्मा और ईश्वर बिलकुल एक-जैसा दीखने लगता है। 'ईश्वर' मेरे सत्य-आत्मा (वास्तविक रूप) का पर्य्यायवाची शब्द है। वह वास्तविक स्वरूप 'मैं' सब जगह है, इस 'मैं' का अनुभव करो, उसीका निदिध्यासन करो, उसीका अनुष्ठान करो; सब दीवारें, सब कठिनाइयाँ, सब विघ्न और सब बाधायें हवा हो जायँगी। कैसा अद्भुत दर्शन है! कैसा सुन्दर सत्य है!! कितना भव्य तत्त्व है!!! दुःख है कि इसका वर्णन नहीं हो सकता, दुःख है कि किसी शब्द की वहाँ पहुँच नहीं, यह दुःख है कि कोई भाषा इसे चित्रित नहीं कर सकती। यह एक असली तत्त्व है, यदि आपको इसकी जिज्ञासा होगी, यदि आप में इसके लिए उत्कट अभिलाषा होगी, तो आप इसे अवश्य पालेंगे।

जब हम लोग ज्योतिष्-शास्त्र का अध्ययन करते हैं, तब हम वहाँ ज्योतिष्-सम्बन्धी गणना करते हैं, तब भिन्न-भिन्न तारा-गणों के बीच के अन्तर को नापते समय और उन (तारों) के परिमाण का हिसाब लगाते समय हम लोग इतने विशाल क्षेत्रों को देखते हैं कि उनके सामने गणित की दृष्टि से यह पृथ्वी शून्यवत् बिन्दु-मात्र होजाती है।

इसी प्रकार, जब आप परम तत्त्व का साक्षात्कार करने लगते हैं, जब आपको यह प्रतीत होने लगता है कि "प्रकाशों का प्रकाश, देवों का अधिदेव, ईश्वरों का ईश्वर स्वयं मैं ही हूँ", तब यह विराट् आकाशगंगायें, ये सब खगोलीय तारे एक उपेक्षणीय स्वल्प बिन्दु-मात्र रह जाते हैं। जब आप ऐसा अनुभव करते हैं, ऐसा निदिध्यासन करते हैं, ऐसा विचार करते हैं—अजी, तब

यह कैसे संभव है कि संसार के महाभयास्पद (Bugbears, हौवे-वाटे) आप पर कोई प्रभाव डाल सकें ?

जब इन महान् तारागणों के सामने यह पृथ्वी शून्यता को प्राप्त हो जाती है, तब उस सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के प्रकाश की उपस्थिति में—मेरे सत्यस्वरूप आत्मा के सम्मुख इन बिचारी लौकिक बाधाओं और चिन्ताओं की, भला, कैसे कुछ गिनती हो सकती है ?

तत्त्व का साक्षात्कार करो, उसका अनुभव करो, उसे अपना जीवन बनाओ, और जब आप उसकी पराकाष्ठा (पूर्ण सत्ता) का अनुभव कर लोगे, तब कोई भी, कुछ भी, आप को विचलित नहीं कर सकेगा। चाहे करोड़ों सूर्यों का प्रलय हो जाय, अगणित चन्द्रमा भले ही गल कर नष्ट हो जायँ, पर अनुभवी ज्ञानी पुरुष मेरु की तरह अटल और अचल रहता है। उसे क्या हानि हो सकती है ? भला, संसार में ऐसा है ही क्या जो उसे कष्ट दे सके ?

अहो, आश्चर्य ! महत्आश्चर्य !! ऐसा महान्, ऐसा असीम अवर्णनीय महिमा-पूर्ण आपका सत्य स्वरूप है और (फिर भी लोग) इसे भूल जाते हैं।

वह सूर्य, वह अनन्त सूर्य, आँखों पर के एक छोटे से परदे से छिपा है। और परदा आँखों के इतना निकट है कि सारा संसार उससे ढका हुआ है। ऐसा तेजोमय उज्ज्वल तत्त्व और ऐसे तुच्छ अज्ञान से ढका है ! अरे, दूर करो ऐसे दुर्बल व अशक्त करनेवाले अज्ञान को, परे करो उसे। अनुभव करो कि "मैं परमेश्वर, ज्योतिषांज्योति, अकथ्य और वर्णनातीत हूँ।" "तत्त्वमसि, तत्त्वमसि" (तुम वही हो, वही तुम हो !)। अहा ! उस सत्ता को जब आप भान करने लगते हैं, तब सभी चीजें कितनी सरल व कितनी साफ़ हो जाती हैं।

राम कोई बात इतिहास से या महात्माओं की जीवनी से

लेकर नहीं कहता है। राम तो वही कहता है, जो उसका निजी अनुभव है, और जिसको आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

राम कहता है, जिस समय हम सत्य का अनुभव करते हैं, और तत्त्व को भान (प्रतीत) करने लगते हैं, उस समय यह जगत वास्तव में स्वर्ग बन जाता है। और तब, न कोई शत्रु रहता है, न भय, न किसी प्रकार का दुःख-दर्द रहता है, और न चिंता। अवश्य, अवश्य यह तत्त्व ऐसा ही है।

जब हम किसी बहुत ऊँचे स्थान पर हों, तब नीचे की चीजों के बीच की ऊँचाई-निचाई का लोप हो जाता है। पर नीचे से यदि एक घर बहुत ऊँचा दीखता है, तो दूसरा बहुत नीचा, अथवा कोई सड़क ऊँची नजर आती है, तो दूसरी नीची। पर जब हम उन्हीं चीजों को किसी खूब ऊँचे टीले पर चढ़कर देखते हैं, तो वह भेद मालूम नहीं पड़ता। इसी प्रकार जब आप आध्यात्मिक वैभव के शिखर पर चढ़ोगे, जब आप निज सत्य स्वरूप को भान (महसूस) करने लगोगे, एवं जब आप भीतर के तत्त्व का अनुभव करोगे, तब आप के लिए शत्रु-मित्र अपकारी और उपकारी का तुच्छ भेद सब मिट जायगा। इन तुच्छ भेद-भावों की प्रतीति ऐसी है, जो हम लोगों को अशांत बनाती है, और असुखकर परिणाम उत्पन्न करती है। इनके परे पहुँच जाओ, ताकि जो तत्त्व है, वही प्रत्यक्ष हो जाय, और सब भेद-भाव लुप्त हो जायँ। इसे ही वेदान्त 'एकत्वम्' कहता है। ईश्वर परम सत्य है, जगत् वा बाह्य दृश्य तो 'माया' है।

इसलिए आत्मा का, अपने निज स्वरूप का, इस दर्जे तक अनुभव करो कि यह जगत् असत्य भान हो, और ईश्वर या वास्तविक परमदेव प्रत्यक्ष हो जाये। जब आप अपने भाई को मनुष्य कहकर पुकारते हैं और उसके भीतर परमात्मदेव का अनुभव नहीं करते, अरे, तब आप कितना घोर पाप करते

हैं। अपने इस कृत्य से आप उसके भीतर के आत्मदेव की हत्या करते हैं।

मातृ-हत्या, स्त्री-हत्या, मनुष्य-हत्या आदि अनेक प्रकार की हत्यायें वर्णित हैं, पर प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का अनुभव न कर के आप ईश्वर-हत्या या देव-हत्या नामक घोर पाप करते हैं। जब आप किसी मनुष्य को पिता, भाई, पुत्र, दोस्त या दुश्मन कहकर संबोधन करते हैं और उसके अन्तरस्थ परम-देव का अनुभव नहीं करते, तब आप शब्दों का कुछ ऐसा प्रयोग करते हैं कि अन्तरस्थ परमदेव की हत्या हो जाती है। जब शरीर, आकार, अथवा बाह्य मायाविक रूप इतना प्रधान हो जाता है कि जिससे भीतर का ईश्वर विस्मृत हो जाय, तब आपकी अधोगति होती है। जब-जब आप अपने हृदयस्थ देवता की हत्या करने का यत्न करते हैं, तब-तब, (कहना चाहिए कि) इस संसार में आपका सर्वनाश होता है। यह ईश्वर-हत्या, यह देव-हिंसा ही अज्ञान है, और यही अज्ञान संसार के दुःखों का मूल है। यह तत्त्व स्वप्न-मात्र रह जायगा, यदि लोग इसे व्यवहार में नहीं लायेंगे। यह एक तथ्य है, इसे अनुभव करो और अपने को सुखी बनाओ। इसकी प्रतीति करो, अर्थात् इसका निदिध्यासन करो, इसे आचरण में लाओ और तब आप देखेंगे कि आप अद्भुत संसार में वास कर रहे हैं, आप देखेंगे कि सारी शक्तियां (ऋद्धि-सिद्धियाँ) आपकी सेवा कर रही हैं; इसका निदिध्यासन करो, फिर सारे सूर्य, चन्द्र और तारे आपका हुक्म बजायेंगे। निरन्तर प्रयोगों द्वारा आप इसे (इस अवस्था को अथवा इस कथन की सत्यता को) ठीक पायेंगे।

सुखी है वह मनुष्य, जो सदा आत्मदेव को अनुभव कर सकता है, जो सदा सबके साथ एकता अनुभव कर सकता है।

एक संस्कृत-श्लोक है, जिसका शब्दार्थ है कि "जैसे किसी गुहा में सैकड़ों वर्षों के अन्धकार को, प्रकाश लाने पर, निकलते देर नहीं लगती, वैसे ही उस मनुष्य का हाल है, जिसने अपने में जन्म से ही अज्ञानान्धकार जुटा रक्खा है, पर जब यह तत्त्व, यह आत्म-ज्योति, उसके हृदय-मन्दिर में दमकती है, तो यह सब अज्ञान भाग जाता है।"

इस विषय में राम का यह प्रतिदिन का अनुभव है कि जब वह प्रत्येक विद्यमान मनुष्य या व्यक्ति में आत्मा का दर्शन करता है, जब वह प्रत्येक मनुष्य की देह को ईश्वर के (शरीर) तुल्य मानता है या यों कहो कि जब वह मनुष्य के व्यक्तित्व की जगह उसके भीतर के आत्मतत्त्व को देखता है, तब वह दुःख नहीं पाता; किन्तु जब वह केवल शरीर को देखता है, जब वह किसी व्यक्ति के व्यक्ति-मात्र पर ही दृष्टि डालता है, तब राम अवश्य दुःख उठाता है; किन्तु पहले की सब न्यूनताओं और गत सफलताओं के अनुभव से अब राम इतना होशियार हो गया है कि किसी व्यक्ति को परमात्मा से भिन्न किसी अन्य भाव से देखने की कभी भी, बल्कि स्वप्न में भी, कोई संभावना उसे नहीं रही। राम प्रत्यक्ष देखता है कि आपको सत्स्वरूप मानने से, आपको निज आत्मा अनुभव करने से, और ऐसा अनुभव करने से कि "ये सब शरीर मेरे ही हैं, ये सब देह मेरी ही देह के समान हैं", (दूसरे) लोग भी वैसा ही समझने लग जाते हैं।

मजनूँ नामक एक मनुष्य हो गया है। लोग उसे 'प्रेमियों का राजा' कहा करते हैं। उसके समान किसी ने प्रेम नहीं किया। किन्तु उसका प्रेम था अपनी प्रेम-पात्री के शरीर पर, उसके व्यक्तित्व पर। इसी से वह जन्म-भर में उसे देख न सका।

राम कहता है कि यदि आप अपनी इच्छाओं को पूर्ण करना

चाहते हैं, तो आपको उन इच्छाओं को त्यागना चाहिए, उनसे परे हो जाना चाहिए। पर उस (मजनूँ) विचारे को यह रहस्य मालूम नहीं था। फिर भी संसार भर में वह आदर्श प्रेमी था। कहते हैं कि भारी निराशा के कारण उसका दिमाग़ बिगड़ गया, वह उन्मत्त हो गया। और विचारा यह पागल शाहज़ादा अपने माता-पिता, घर-द्वार को छोड़ वन-वन में भटकने लगा। यदि वह कोई गुलाब का फूल देखता, तो उसे अपनी प्रिया समझ, उसके पास दौड़ जाता, इसी तरह वह (cypress) सरू वृक्ष को माशूक़ा (प्रिया) समझ प्यार करता। हरिन को देख वह उसे अपनी माशूक़ा समझता और उसके पास जाता। ऐसा ही उसका भाव था; वह हर जगह उसे देखता और इन क्षुद्र वस्तुओं को अपनी माशूक़ा के रूप में परिणत कर डालता। किंतु उसके प्रेम का विषय भौतिक था, इसी से उसे इतना कष्ट भोगना पड़ा।

राम कहता है, प्रेम करो और मजनूँ की तरह प्रेम करो, किंतु ईश्वर को, आत्मा को, परमात्मदेव को अपना प्रेम-पात्र बनाओ। क्या सारा संसार ही सुख के पीछे पागल और उन्मत्त नहीं हो रहा है ? और सुख तो 'ईश्वर' का ही पर्य्याय-वाचक शब्द है। मजनूँ विचारा जानता ही न था कि कहाँ परम सुख व ईश्वर मिलता है। वृक्षों में, पशु-पक्षियों में जिस मजनूँ ने अपनी प्रियतमा का दर्शन किया था, उस मजनूँ के समान जिस मनुष्य ने तत्त्व का दर्शन किया है, वही मनुष्य धन्य है ! एक दिन मजनूँ इसी वन में मूर्छित होकर गिर पड़ा। इसी समय उसका पिता उसकी खोज में वहाँ आ पहुँचा। वह मजनूँ को धूल से उठाकर, झाड़-पोंछ कर कहने लगा—"प्यारे बेटे ! क्या तू मुझे पहचानता है ?" मजनूँ बेसुध देखता रहा। माशूक़ा बिना उसकी दृष्टि में समस्त जगत् शून्यवत् था। उसके रोम-रोम से यही ध्वनि निकल रही थी, "कौन पिता, पिता कौन

है ?" पिता ने फिर कहा, "मेरे प्यारे बेटे! क्या तू मुझे नहीं पहचानता, मैं तेरा पिता हूँ ?" उसने उत्तर दिया, "पिता कौन ?" तात्पर्य यह कि क्या दुनिया में मेरी माशूका के सिवा और भी कोई चीज़ है ?

जैसा प्रेम मजनूँ को उस भौतिक पदार्थ, उस मांस और त्वचा के लिए था, वैसा ही तत्त्व के साथ प्रेम रखना तत्त्वानुभव है। दिव्य प्रेम की इस उच्च शिखर में जब आप पहुँच जाते हैं, जब आप इतनी ऊँचाई पर चढ़ जाते हैं कि आप पिता में, माता में, प्रत्येक व्यक्ति में और किसी का भी नहीं, किंतु केवल ईश्वर का दर्शन पाते हैं, जब आप पत्नी में पत्नी का नहीं, किंतु केवल उस परम प्रिय ईश्वर का दर्शन करते हैं, तब अवश्य आप स्वयंमेव ईश्वर हो जाते हैं। हाँ, तब आप वास्तव में ईश्वर के समक्ष हो जाते हैं।

जब तक मजनूँ जीवित रहा, तब तक वह अपनी माशूका (lady love) को न देख सका। कवि आगे लिखता है कि (मरने पर जब) वह खुदा के सामने लाया गया, खुदा ने कहा— "अरे मूढ़! तूने एक भौतिक, सांसारिक पदार्थ को इतना क्यों प्यार किया? जितना प्रेम तूने अपनी प्रियतमा पर व्यर्थ किया, यदि तूने उसका कोटि अंश भी मुझे अर्पण किया होता, तो आज तुझे मैं बिहिश्त का फ़रिश्ता (स्वर्ग का देवता) बना देता।" कहा जाता है, मजनूँ ने उत्तर दिया, "ऐ खुदा! मैं तुझे इस (धृष्टता) के लिए माफ़ कर देता हूँ। पर यदि सचमुच ही तुझे मेरे इश्क की इतनी चाह थी, तो स्वयं मेरी माशूका बनकर मेरे पास क्यों न आया? यदि तू मेरी मुहब्बत का भूखा था, तो तुझे मेरी माशूका, मेरे प्रेम का विषय बनना था।" इस मजनूँ ने तो खेल ही उलटा दिया, किंतु राम कहता है कि आपको सत्य स्वरूप के साथ ऐसा ही उत्कट

प्रेम रखना चाहिए, अपने आत्मा को अवश्य प्यार करना चाहिए, उसे ही अपना प्रेमपात्र समझना चाहिए। उसे प्यार करो, अनुभव करो, मजनूँ की तरह अनुभव करो, ताकि और कोई वस्तु आप के पास न आने पाये, जब तक कि वह प्रियतम सत्य स्वरूप के ही रूप में उपस्थित न हो। उसमें आप केवल प्रियतम देव को देखो, और कुछ नहीं।

इस पर शायद आप कहो, "क्या जरूरत है? इसे हम अनुभव करना नहीं चाहते। हम तो अपने इस नरक में ही सुखी हैं।" तो राम कहता है, "सम्भव है कि आप सुखी हों, किन्तु आप का ध्येय वही है। अतः सड़क पर पैर घसीटते हुए चलने में समय नष्ट करने से क्या लाभ? यहाँ आपको आना ही पड़ेगा; पर कीचड़ में चलकर परेशानी तो न उठाओ। रेल की ऊँची सड़क पकड़ो, बिजली की गाड़ी, नहीं-नहीं, विमान ले लो, सड़क के किनारे अपना वक्त बरबाद मत करो।'

आप प्रतिदिन अपने अड़ोस-पड़ोस का अवलोकन करो, क्या मालूम पड़ता है? आप देखोगे कि प्रकृति का ऐसा प्रबन्ध है कि आप उस लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायँ। यह एक नैसर्गिक घटना है। जब कोई मनुष्य शान्त, स्थिर, पवित्र और आनन्द की वृत्ति में होता है, तब कुछ देर तक उस शान्त, स्वस्थावस्था में रहने पर वह देखता है कि उस अवस्था के साथ-साथ कोई अच्छी खबर आती है, या कोई शुभ परिवर्तन होता है, अथवा कोई उत्तम घटना घटती है; निरपवाद ऐसा होता ही है।

उस साम्यावस्था में, उस शान्त, अचंचल दशा में रहो, और आप देखोगे कि कोई मित्र मिलने आता है, या कोई प्रिय वस्तु मिलती है, अथवा आपके लिए कोई गौरव-जनक बात होती है। जब साधारण मनुष्य इस सफलता पर फूल उठते हैं, या इसको आत्मिक महत्त्व देते हैं (तब उन्हें दुःख भोगना

हो पड़ता है) यदि आप उस भौतिक रूप को हृदय में स्थान दोगे, यदि आप उसमें आसक्त हो जाओगे और उसे जकड़ रक्खोगे, उसे बेहद प्यार करने लगोगे, तो आप देखोगे कि अवश्यमेव कुछ अकथ घटना घट जायगी, और वह उस वस्तु को हर लेगी या उसमें कोई नवीन (अवांछित) परिवर्तन पैदा कर देगी। यह दैवी विधान है, यह टाला नहीं जा सकता।

यदि इस विषय पर पुस्तकें नहीं लिखी गई हैं, तथापि दैवी विधान यही है। इसी प्रकार जब आप किसी वस्तु में आसक्ति रख उसके मोह में अत्यन्त फँस जाते हैं, जिससे कोई प्रसंग उत्पन्न होकर वस्तु को हर लेता है और आप दुःखी एवं निकृष्ट दशा में होते हैं, तब दो प्रकार की घटनायें घटती हैं। कुछ लोग इस प्रकार मुँह की खाकर बाह्य दशा को दोष देना, हाथ-पैर पटकना और बाह्य स्थिति की समालोचना करना आरंभ करते हैं। ऐसे लोगों पर और भी कड़ी उलझनें आती हैं; तब वे चिल्ला उठते हैं—"अरे! विपत्तियाँ कभी अकेली नहीं आतीं।" ऐसे एक बार दुःख उठाने के बाद भी जो लोग अपने चित्त की समता प्राप्त नहीं करते, बल्कि दूसरों की समालोचना करते और उन पर दोष लगाते रहते हैं, वे क्षण-भंगुर अवलंब (आश्रय) के पीछे छटपटाते फिरते हैं, क्योंकि बुरे दिन अकेले नहीं आते; परन्तु कुछ काल तक कष्ट झेलने पर उनके चित्त की स्थिति ऐसी हो जाती है कि जिसमें अदृश्य बल प्राप्त हो जाता है। तब साम्यावस्था आती है, 'यद्भाव्यं तद्भवतु' भाव का उदय होता है, तब उन वासनाओं के त्याग की वृत्ति, चित्त-प्रसन्नता तथा विश्व-व्यापक शान्ति की दशा उपस्थित होती है; तब दुःख के बादल दूर हो जाते हैं, और फिर बाहर से भी अच्छी अवस्था प्राप्त होती है। वे पुनः सत्पथभ्रष्ट हुए केवल बाह्य रूपों और व्यक्तियों पर निर्भर रहने लग जाते हैं, जिससे फिर

कठिनाइयों में जा फँसते हैं, और तब कुछ काल के बाद वे धर्म की शरण में आते हैं। कहते भी हैं कि विपत्तियाँ मनुष्य को धर्माभिमुख करती हैं (Misfortunes lead to religion)।

इसी तरह आपके दैनिक जीवन में दिन-रात हुआ करता है, प्रत्येक दुःख की रात्रि के बाद सुख का प्रभात आता है, और प्रत्येक सुख के दिवस के बाद दुःख की निशा होती है। जब तक आप बाह्य रूपों में आसक्ति रक्खेंगे, तब तक यह उत्थान और पतन होता ही रहेगा; एक के बाद दूसरे का आना जारी रहेगा। पर इस आन्तरिक उत्थान-पतन का उद्देश्य क्या है? आपको अपने भीतर के सूर्य्य का अनुभव कराना ही इस आन्तरिक पतनोत्थान का उद्देश्य है।

पृथ्वी पर रात्रि और दिवस होता है। पर सूर्य्य में सर्वदा दिन ही दिन रहता है। पृथ्वी के घूमने से ही दिवा-रात्रि होती है, पर सूर्य्य में रात होती ही नहीं, वहाँ सदा दिव्य प्रकाश, सदा दिन रहता है।

आप पर आपत्ति, दुःख और चिन्तायें इसलिए आती हैं कि आप भीतर के वैकुण्ठ का अनुभव करें। इनका काम आप को यही सुझाने का है कि आप हृदयस्थ सूर्य्यों के सूर्य्य, प्रकाशों के प्रकाश का अनुभव करें और जिस समय आपने अनुभव कर लिया, उसी समय आप सारे सांसारिक दुःख-दर्दों से, परिवर्तनों से परे हो गये।

अच्छा, हम लोगों को उन्नत करना ही इन दुःख-दर्द आदि का उद्देश्य कैसे है? सुख का प्रथमागमन हमें यह बतलाता है कि सुख सदा उसी समय मिलता है, जिस समय हम अपने भीतर के आत्मदेव में संलग्न और निमग्न रहते हैं। अथवा जिस समय हम विश्व के साथ अपनी एकता भान करते हैं। इस प्रकार वह हमें बतलाता है कि जब हमारी विश्व के साथ चित्त से एकता होती

है, तब सब सुख हमारे हो जाते हैं; तब वे हमें अवश्य मिलेंगे ही, यही दैवी विधान है। जो विपत्ति है, वह हमें बतलाती है कि मैं भौतिक भ्रममय वा मायिक विषयों की आसक्ति एवं मोह का पीछा करती हूँ। कष्ट हमें बतलाते हैं कि भौतिक पदार्थों में आसक्ति रखना, एवं इन भौतिक विषयों को सत्य समझना ही दुःख-दर्द एवं चिन्ता को लाना है। इस प्रकार ये दुःख हमें सूचित करते हैं कि भौतिक पदार्थ मिथ्या हैं, अतएव वाह्य सांसारिक नाम-रूपों पर हमें अपना समय और शक्ति नष्ट न करनी चाहिए। सभी विपत्तियाँ यही शिक्षा देती हैं। राम सारे जगत् के इतिहास को इसी दैवी विधान से प्रतिपादित कर सकता है। 'शेक्सपियर' (Shakespear) के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस, (Merchant of Venice) नामक नाटक में आपने देखा होगा कि जब तक पोर्शिया (Portia) के शरीर मे वसैनियो (Bassanio) आसक्त था तब तक वह पतित था, सफल-मनोरथ न हो सका। किन्तु बक्सों को चुनते समय उसकी दशा अवर्णनीय थी, वह शून्यावस्था में था; वह बड़ी ही भव्य स्थिति में था। वहाँ ईश्वर, देवता वा किसी स्वर्गीय दूत का उल्लेख तो नहीं है, पर ध्यान पूर्वक पढ़ने से पता मिलेगा कि जब उसका चित्त साम्यावस्था में था, जब वह ईश्वर से अभिन्न हो रहा था, उसी समय वह सफल हुआ। भले ही शेक्सपियर ने इसे स्पष्ट न किया हो। कवि लोग इसका स्पष्ट चित्रण नहीं करते। पर है यह एक तथ्य, जो प्रतिदिन अनुभव सिद्ध होता है। सब सुख यही उपदेश देते हैं कि आप सदा साम्यावस्था में रहें। वे यही बतलाते हैं कि आपकी समस्त विश्व और प्रकृति के साथ एकता होनी चाहिए। दुःख निषेधात्मक शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि आप जगत् के पदार्थों से कभी ममता न जोड़ें, और उन्हें कभी सत्य न समझें। वे उपदेश देते हैं कि आप सर्वगत ईश्वर का

उच्छेदन न करें, और न आप नाम-रूप पर आसक्त होकर ईश्वर को ही भुला दें। सभी दुःख और सभी सुख आपको वेदान्त का पाठ पढ़ाते हैं। जब सब लोग इस पर विश्वास नहीं करते, तो क्या इससे कुछ और सिद्ध हो जाता है? नहीं, इससे केवल यही सिद्ध होता है कि इस सत्य को दुनिया नहीं समझ पाती, इसी से दुनिया दुःखी है। आप सत्य का अनुभव करो, फिर आप सुखी होंगे।

भारत में मिट्टी के बरतन बनाने के लिए अमेरिका के समान मशीनें (कल) नहीं है। वहाँ कुम्हार चाक पर बरतन गढ़ते हैं। चरणों से एक गहरे भाँडे में मिट्टी गूंधी जाती है। फिर दोहरी रीति बरती जाती है। भीतर की ओर से किसी वस्तु का आधार देकर बाहर से उसे थपथपाते हैं, और मिट्टी को बरतन में घड़ लेते हैं।

वैसे ही ये बाहरी थपेड़े आपकी उन्नति करा रहे हैं, आप को ईश्वर बना रहे हैं। यह दोहरा तरीका है। भीतर का आधार बनाये रखिये, दुःख कठोर आघात हैं, और सुख अन्तर का आश्रय हैं। सुख-दुःख के जोर से चरित्र संगठित होता है। दुःख जो बाहर से कठोर आघात-तुल्य है और सुख जो अन्तर के आधार तुल्य है—दोनों का ही उद्देश्य आपका आन्तरिक ईश्वरत्व प्रकट करना, अन्तःस्थ ईश्वर को व्यक्त करना, एवं आपकी दिव्य प्रकृति को प्रस्फुटित करना है। यह प्रकृति का नियम है कि (उसकी) तलवार के जोर के आगे आपको अपना ईश्वरत्व प्राप्त करना ही होगा। और यदि आप ऐसा नहीं करते, तो तमाचे पर तमाचे, लात पर लात ही नसीब होंगे। यदि आप इससे बचना और छुटना चाहते हैं, तो कृपया आत्मा का, निज सत्य स्वरूप का अनुभव करिये। यही ध्येय है।

O, happy, happy, happy Rama,
Serene and peaceful, tranquil, calm.

My joy can nothing, nothing mar,
My course can nothing, nothing bar.

My livery wear gods, men, and birds,
My bliss supreme, transcendeth words.

Here, there and every where,
There, where's no more a "where ?"

Now ever, anon, and then,
Then when's no more a "when"?

This, that, and which, and what,
That that's above a "what ?"

First, last, and mid, and high,
The one beyond a "why ?"

One, five and hundred, All,
Transcending number one and all.

The subject, object, knowledge, sight,
E'en that description is not right.

Was, is, and e'er shall be,
Confounder of the verb "to be"

The sweetest Self, the truest Me,
No Me, no Thee, no He.

राम आनन्द - समुद्र लीन,
अविचल, सुशान्त विकंप-हीन।
मेरा आनन्द अति विशाल ;
कोई सके नहिं विघ्न डाल।
मेरे रथ की गति अविरोध ;
कौन करेगा उसका रोध।
मेरा दिया हुआ चपरास ;
देवादिक पहने सहुलास।
मेरा शब्दातीतानन्द,
दिव्य,—करे वाचा को मन्द।
यहाँ वहाँ और जहाँ तहाँ—
कहाँ ?' जहाँ पर है नहिं वहाँ ;
भूत, भविष्य, सभी काल में—
अथवा ,काल'-हीन काल में !
सब से अतीत, सब वस्तु में,
प्रारंभ अन्त औ मध्य में।
प्रश्नों औ कारण से परे,
जो है संख्या से भी परे।
'कर्त्ता', 'कर्म', 'दृश्य' औ 'ज्ञान',
जिसका उचित नहीं अभिधान।
'अस्ति', 'नास्ति' 'है', 'था' का जाल,
बस, देता है भ्रम में डाल।
सबसे सच्ची 'अपनी' सत्ता,
बस, वह प्रियतम आत्मा एक।
जिसे त्यागकर 'हम', 'तुम', 'वह',
इन सबका कोई नहीं विवेक।

यही 'सर्व' है, परम आत्मा है, जो (सब कुछ होते हुए भी) अवर्णनीय है; वही तुम हो—'तत्त्वमसि'।

इस तत्त्व का अनुभव करो। जब लोग आकर राम के शरीर की पूजा करते हैं, तब राम अप्रसन्न होता है। राम के भीतर में इतना काफ़ी आनन्द, सुख, मोद भरा है कि प्रशंसा अथवा धन द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख से वह मुक्त है।

मेरा सुख अकथनीय और असीम है। आन्तरिक (आनन्द का) दिव्य मूल इतना काफ़ी है कि उसने राम को नाम, कीर्ति व द्रव्य के दरवाज़े पर सुख के लिए हाथ पसारने की आवश्यकता से मुक्त कर दिया है। मेरे भीतर काफ़ी सुख है।

अरे! अनुभव करो, अनुभव करो, उसे प्राप्त करो। वही मुक्त करेगा आपको इस याचक-प्रवृत्ति से, जो लोगों को सांसारिक सुख की खोज में प्रवृत्त कराती है।

भारत में एक स्त्री के नौ पुत्र थे। एक दिन उसके द्वार पर एक भिक्षुक आया, और उस (स्त्री) ने उसे कुछ भिक्षा दी। वह भिक्षुक इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसको आशीर्वाद दिया और भगवान् से ऐसे प्रार्थना की "हे प्रभो! इस देवी को तू सात बच्चों की माता बना।" जब उस सच्चे भाव वाले साधु ने उसे सात बच्चों की मा बनाने की प्रार्थना की, तो वह रुष्ट हो गई, क्योंकि यह उसके लिए शाप हो गया; क्योंकि उसके पहले ही से नौ लड़के थे, इससे उसके दो लड़कों की हानि होती थी। उसने उस भिक्षुक से फिर से आशीर्वाद देने की प्रार्थना की, और पुनः साधु ने वही आशीर्वाद दिया। वह स्त्री क्रोधित हो गई और बहुत से लोग वहाँ इकट्टे हो गये, और उसके क्रोध का कारण पूछने लगे। यह सुनकर उन लोगों को हँसी छूटी कि यह तो आशीर्वाद न होकर शाप हो गया। इसी प्रकार राम के अन्दर अकथनीय आनन्द भरा है, सर्वो

को उस आनन्द का उपभोग करने दो। वही हम सभों को मुक्त, इस संसार के सभी विषयों से मुक्त करेगा।

हिमालय की वर्फानी नदियों के कमलों के समान शरीर को, व्यक्तित्व को, बिना किसी की दृष्टि और ज्ञान के ही विकसित होने दो। चाहे वह शरीर शूली पर चढ़ाया जाये या क़ैद में रक्खा जाये, चाहे महासागर की विशाल तरंगें इसे निगल जायें या उष्ण कटिबन्ध (Torrid zone) की गरमी इसे झुलसा दे—अथवा और कुछ बाधा भले ही आ पड़े पर उस भीतर के निजानन्द का रंग भंग नहीं हो सकता। उसी आनन्द का, उसी परात्पर आन्तरिक सुख का, आप अनुभव करो, और जगत् के सब दंभ और मूढ़ता एवम् अन्धकार से परे हो जाओ।

ईश्वरों के अधीश्वर, देवों के अधिदेव बनो। "तत्त्वमसि! तत्त्वमसि!" (वही तुम हो! वही तुम हो!!)

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

साधारण बातचीत

गोल्डेन गेट हाल, बृहस्पतिवार, २२ जनवरी, १६०२

प्रश्न—"हम स्वाधीन होंगे"—स्वामी जी के इस कथन का क्या अर्थ है ?

उत्तर—"हम स्वाधीन होंगे" यह वाक्य यथार्थ में भ्रान्ति-मूलक है। हमारा स्वाधीन होना वास्तव में भ्रान्तिमय है, क्योंकि हम इस समय भी स्वाधीन हैं, हम आदि से ही स्वाधीन हैं, हम कभी बन्धन या दासता में थे ही नहीं। इस प्रकार यह कहना, "हम स्वाधीन होंगे", असलियत में गलत है। साधारण बात चीत में ज्ञान या ज्ञान प्राप्त करने के अर्थ में यह वाक्य बोला जाता है। आप जानते हैं कि गुलामी की क़ैद, जिससे इस संसार के लोग छूटते या ऊपर उठते हैं, वास्तविक क़ैद, दासता या बंधन नहीं है, यह केवल गलत विचार, अज्ञान और मिथ्या ज्ञानार्जन का फल है। दासता या बन्धन वास्तव में नहीं है, और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, सच्चे निज स्वरूप या आत्मा का अनुभव आपको तुरन्त स्वाधीन, सदा के लिए स्वाधीन कर देता है। वह स्वाधीनता कभी गई नहीं थी। इसलिए भविष्य में आनेवाली स्वाधीनता का विचार नहीं करना है, बल्कि उस स्वाधीनता का विचार करना है, जो सदा आप की रही है, जो आपका जन्मजात स्वत्व है, जो आपका अपना असली स्वरूप है।

एक आदमी के गले में एक सुन्दर बहुमूल्य हार था। एक समय वह उसे बिल्कुल भूल गया। अपने गले में हार न देखकर उसे बड़ा रंज हुआ। उसकी खोज में वह इधर-उधर

भटकने लगा, पर वह न मिला। तब किसी ने उससे कहा कि हार तो तुम्हारे ही गले में , लो, वह बड़ा खुश हुआ। यथार्थ में हार मिला नहीं था, क्योंकि वह तो बराबर वहीं था। वह खोया नहीं था, बल्कि ओझल हो गया था । इसी तरह आपका सच्चा आत्मा, "मैं हूँ" कल , आज, सदा एकसाँ रहा है, और रहेगा; किन्तु मन या बुद्धि को केवल अज्ञान पर विजय पाना है। मन जब विश्वास करता है कि मूल्यवान् हार मिल गया, तब इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि आपको अपनी स्वाधीनता फिर मिल गई। आपको अपना प्यारा हार मिल गया, जो यथार्थ में कभी खोया ही नहीं था।

प्रश्न—क्या हमारी आत्मा का व्यक्तित्व निरंतर बना रहता है ?

उत्तर—आप समझ सकते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर "आत्मा" शब्द के अर्थ पर निर्भर है। यदि रूह (Soul) का अर्थ आत्मा माना जाय, तो वह न कभी जन्मा था, और न मरेगा। जब जन्म और मृत्यु ही नहीं, तो निरन्तरता कहाँ से आ सकती है। यदि "आत्मा" को आप आने-जानेवाला शरीर या सूक्ष्म शरीर समझते हैं, तो जीवन की धारा अविच्छिन्न और निरन्तर है।

याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। ये ऋषि बड़े धनी थे । ये भारत के अत्यन्त सम्पत्तिशाली राजाओं के गुरु थे। उन्हें दोनों स्त्रियों में अपना धन बाँट कर वन-गमन (एकान्त-सेवन) की इच्छा हुई। मैत्रेयी ने अपना हिस्सा लेना नामंजूर किया। उसने कहा, यदि धन से अमरता मिल सकती होती, तो मेरे पति उसका त्याग क्यों करते !

आप देखते हैं कि मैत्रेयी के दिल में यह ख्याल पैदा हुआ कि "मेरे प्रिय पति, जो भारत के एक बहुत बड़े धनी हैं, इस

दौलत को छोड़कर दूसरी तरह का जीवन क्यों अपना रहे हैं। अवश्य ही एक तरह का जीवन छोड़कर दूसरी तरह का जीवन कोई भी मनुष्य तब तक नहीं ग्रहण करता, जब तक नये जीवन में पुराने की अपेक्षा अधिक सुख, अधिक चैन नहीं समझता। इससे स्पष्ट है कि अपने वर्तमान जीवन की अपेक्षा मेरे पति को उस जीवन में, जिसे वह ग्रहण करनेवाला है, अधिक सुख-चैन होगा।" उसने सोचा और अपने पति से पूछा, "क्या सांसारिक सम्पत्ति की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पत्ति में अधिक सुख है, अथवा इसके विपरीत है ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "अमीरों का जीवन जो कुछ है सो है, परन्तु उसमें असली सुख, सच्चा आनन्द, वास्तविक स्वाधीनता नहीं है।" तब मैत्रेयी ने कहा, "वह कौन सी चीज़ है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को स्वतंत्र बना देती है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को लौकिक लोभ और तृष्णा से मुक्त कर देती है ? वह जीवन-सुधा मुझे बताइये, मैं उसे चाहती हूँ।"

याज्ञवल्क्य का सारा धन और दौलत तो कात्यायनी के हाथ लगा, और मैत्रेयी को उनकी सारी आध्यात्मिक सम्पत्ति मिली। वह आध्यात्मिक सम्पत्ति क्या थी ?

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। (बृह० उपनिषद्)

इस पंक्ति के कई अर्थ हैं। मोक्षमूलर ने इसका कुछ और ही अर्थ लगाया है। बहुतेरे हिन्दू एक दूसरा ही अर्थ करते हैं।

एक अर्थ के अनुसार, "पति के प्रिय होने का कारण यह नहीं है कि उसमें कुछ गुण हैं, या उसमें कोई विशेषता है। जो प्यार के योग्य है, उसके प्रिय होने का कारण यह है कि वह

स्त्री के दर्पण का काम देता है। जिस तरह से हमें शीशे में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी तरह अपने पति रूपी दर्पण में स्त्री अपने आपको देखती है, और इसीलिए वह पति को प्यार करती है, इसीसे पति उसे प्यारा है।"

दूसरा अर्थ यह है कि "स्त्री पति के लिए नहीं प्यार करती, बल्कि इसलिए कि उसे पति में सच्चे तत्त्व, परमेश्वर, सच्चे परमात्मा के दर्शन होने चाहिए।"

आप जानते हैं कि यदि प्रेम के पलटे में प्रेम नहीं मिलता, तो कोई प्रेम नहीं करता। इससे प्रकट होता है कि दूसरों में प्रतिबिम्बित केवल अपने आप ही को हम प्यार करते हैं। हम अपने सच्चे आत्मा को, भीतरी ईश्वर को, देखा चाहते हैं, और कभी किसी वस्तु को हम उसी के लिए प्यार नहीं करते।

यह एक कल्पना है। इसे जाँचिये, इसकी छान-बीन कीजिये, और आपको यह मालूम होगा कि वस्तुओं के प्यारी होने का कारण सच्चा अपना आप है। सम्पूर्ण मधुरता आप के भीतर के सच्चे अपने आप (आत्मा) में है। ऐसे भावों का दुरुपयोग न करो। जो सीढ़ी सदा आपके चढ़ने के लिए लगी है, उसे अपने को अज्ञान या संकट में गिराने या उतारने-वाली न बनाओ। इस मामले को जाँचो, तो देखोगे कि सच्चा माधुर्य, सच्चा आनन्द, सच्चा सुख कहाँ है। आप जानोगे कि वह केवल आपके अपने-आप, सच्ची आत्मा, अर्थात् ईश्वर में है। इसे देखो और स्वतंत्र (मुक्त) हो जाओ। इसे जानो और सब सांसारिक आकांक्षाओं से ऊपर उठो। अपने को उठाओ, इन नीची, क्षुद्र, तुच्छ इच्छाओं से अपने को ऊपर उठाओ। ईश्वर से एक हो जाओ।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। (बृह० उपनिषद्)

"सचमुच, लड़कों के लिए लड़के प्यारे नहीं हैं, किन्तु अपने (आत्मा के) लिए लड़के प्यारे हैं।"

"लड़के सच्चे अपने आप, सच्ची आत्मा के लिए प्यारे हैं।" जब आपके लड़के आपके विरुद्ध हो जाते हैं, तब आप खिन्न होते हैं, उन्हें भगा देते हैं, अपने पास से हटा देते हैं। अरे, तब तो आप देख सकते हैं कि लड़के किसके लिए प्यारे थे।

उदाहरण के लिए, आपको अपने लड़के के लिए कुछ कपड़ों की ज़रूरत पड़ती है। आपको कपड़े बहुत अच्छे लगते हैं, परन्तु कपड़े कपड़ों के लिए आपको प्यारे नहीं हैं, बल्कि लड़के के लिए प्यारे हैं। लड़का कपड़ों से अधिक प्यारा है। इस तरह हम देखते हैं कि लड़का अपने निजस्वरूप आत्मा के लिए प्यारा लगता है। आत्मा में, सच्चे अपने आप में अवश्य ही लड़के से अधिक सुख, अधिक आनन्द होगा।

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥ ५ ॥ (बृहदारण्यक उपनिषद्, दूसरा अध्याय, ४ ब्राह्मण)

"सचमुच, सम्पत्ति के लिए सम्पत्ति प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने आपके लिए सम्पत्ति प्यारी होती है।"

आप इस देवता और उस देवता से विनय करते हैं, और कहते हैं कि "हे देव! आप बड़े श्रेष्ठ हैं, आप बड़े कृपालु और दयालु हैं, आप बड़े सुन्दर हैं, आप ही सब कुछ करते हैं।" इत्यादि। ऐसा आप क्यों कहते हैं? इसलिए कि देवता आपकी ज़रूरतों को पूरा करता है, इसी कारण से कि देवता आपके अपने आपकी, आपमें असली सच्चे अपने आपकी सेवा करता है। देवता के लिए आप देवता से विनय नहीं करते, बल्कि अपने लिए करते हैं। इस पर ध्यान दो। सच्चा अपना आप सब सुखों का, आनन्द का मूल है। इसे जानो और इसे अनुभव करो।

हिन्दुस्थानी कठपुतली के तमाशे में एक आदमी परदे के पीछे बैठा रहता है, और उसके हाथ में बहुत से बारीक तार होते हैं। ये तार पुतलियों की स्थूल देह से जुड़े रहते हैं। जो लोग पुतलियों का नाच देखने आते हैं, उन्हें ये महीन तार नहीं दिखाई पड़ते, और न उन तारों का खींचनेवाला ही परदे के पीछे बैठा देख पड़ता है। इसी तरह, इस संसार में, ये सारे स्थूल शरीर, स्थूल कठपुतलियों के तुल्य हैं। आम तौर से लोग इन्हीं स्थूल शरीरों को वास्तविक रूप से करने-वाला, स्वतंत्र और कर्त्ता मानते हैं और बाह्य देह-दृष्टि अर्थात् परिच्छिन्नात्मा की ही दृष्टि से सारी बातचीत करते हैं। वे शरीर को स्वतंत्र कर्त्ता समझते हैं, और यदि उनके मित्र तथा नातेदार उनके अनुकूल कुछ करते हैं या उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, तो वे प्रसन्न होते हैं। पर यदि मित्र और नातेदार उनके विपरीत काम कर बैठते हैं, तो घृणा, निराशा, फूट और बेचैनी पैदा हो जाती है, और मित्रों तथा नातेदारों को चाहने के बदले ये उनसे घृणा करने लग जाते हैं। एक इस प्रकार के लोग हैं। दूसरे प्रकार के लोग, जो उच्च श्रेणी के हैं, वे महीन तार, डोरों पर बड़ा जोर देते हैं। ये लोग अधिक बुद्धिमान्, अधिक तत्त्वज्ञ और अधिक आध्यात्मिक हैं। ये लोग उस महीन तार रूपी डोरे की सारी महिमा बताते हैं। स्थूल शरीर से रहित और स्वतंत्र अभौतिक वस्तु या भूत-प्रेत को ये लोग प्रत्येक कर्म का सच्चा कारण समझते हैं। भूत-प्रेत से अभिप्राय इनका निज आत्मा नहीं, बल्कि सूक्ष्म शरीर है। अपनी हद तक ये लोग ठीक हैं। ये कारण और कार्य की दृष्टि रखते हैं। ये सूक्ष्म तार और स्थूल शरीर पर उसके प्रभाव को देखते हैं, परन्तु हम जानते हैं कि मनुष्य से सम्बन्ध रखनेवाली शक्ति, परदे के पीछे असली तत्त्व या वस्तु, इन महीन तारों या तारों को खींचनेवाली असली

शक्ति, सबको भान करनेवाली शक्ति, ये सबके सब यथार्थ में उसी अकथनीय शक्ति स्वरूप आत्मा से नियंत्रित होते हैं, जो देश, काल या वस्तु से परिच्छिन्न नहीं है। यही सच्ची अमरता, यथार्थ सुख, आनन्द और प्रसन्नता है। यही सब कुछ है। यही आत्मा है।

इन सब उपद्रवों से स्पष्ट होता है कि लोगों के ये सकल सम्बन्ध और सम्पर्क मानो मानव-जाति के लिए उपदेश रूप हैं, वे मनुष्य के लिए एक प्रकार की शिक्षा हैं। आपके सांसारिक सम्बन्ध और सम्पर्क आगे चलकर जिस महान् अवस्था में आपको खींच ले जाते हैं, वह अपने निज स्वरूप का अनुभव है, जो तार खींचनेवाला या पर्दों की ओट में असली तत्त्व है। ये उपद्रव आप पर स्पष्ट करते हैं कि आपको अपने आपका अनुभव करना चाहिए, आपको अपने स्वरूप की असलियत का बोध होना चाहिए, जो सबके पीछे है, मनुष्य के मन और शरीर का भी शासक और नियन्ता है। लोगों के मन और शरीर भी इस परम शक्ति, इस वास्तविक प्रेम, इस उत्कृष्ट तत्त्व के शासनाधीन हैं।

इस तरह यह देखना और समझना है कि जब आप किसी सुहृद् का अवलोकन करते हैं, तब आप उसकी ओट में स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप का अवलोकन करते हैं; जब आप उसे बातचीत करते सुनते हैं, तब सुनने की क्रिया का नियमन आप के भीतर के निज स्वरूप द्वारा हो रहा है, जब किसी मित्र की शक्ति आपके ध्यान में आती है, तब उसके भीतर परमेश्वर पर आपका ध्यान जाता है; जब आपको इस शक्ति का परिज्ञान हो जाता है, तब आप धोखे में नहीं होते, आपको क्लेश नहीं होता, आप क्षुभित नहीं होते।

ठीक जैसे लोग जड़ पुतलियों को देखते हैं, उसी तरह वे जानते हैं कि इन सबके पीछे शक्ति मेरा सच्चा स्वरूप है।

लोगों के कामों के पीछे की ताक़त को देखो। उसका अनुभव करो, और जानो कि तुम वही हो। उसे ही उसी उग्रता या गंभीरता से जानो, जिस उग्रता से तुम रूप और रंग को जानते हो।

ब्रह्म तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद।
क्षत्रं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद।
सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद।
इदं ब्रह्मं, इदं क्षत्रं, इमे लोकाः, इमे देवाः।
इमानि भूतानि, इदं सर्वं, यदयमात्मा ॥ ६ ॥

(बृह० उपनिषद्)

"जिस किसी ने ब्राह्मणत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसे ब्राह्मणत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने क्षत्रियत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसी को क्षत्रियत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने लोकों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र समझा, उसी को लोकों ने त्याग दिया। जिस किसी ने देवताओं को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र जाना, उसको देवताओं ने दूर कर दिया। जिस किसी ने प्राणियों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को प्राणियों ने त्याग दिया। जिस किसी ने भी किसी भी वस्तु को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को हर एक वस्तु ने त्याग दिया। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये प्राणी, यह सब वही आत्मा है।" यह तो आत्मदेव की स्पष्ट और सरल व्याख्या हुई।

इसे अपने दिलों में उतर जाने दो, और तब आप अनुभव

करोगे कि आप स्वाधीन हैं, तब आप अपना जन्म-स्वत्व लौटा हुआ पाओगे।

"ये ब्राह्मण-वर्ग, वेद, सब कुछ वही आत्मा है", यह ईश्वरीय नियम है। यदि किसी भौतिक पदार्थ पर आप उसी के निमित्त भरोसा या आश्रय करोगे, तो वेद और ईश्वरीय नियम (दैवी विधान) के कथानुसार आपको परास्त होना पड़ेगा। आपको अपनी इच्छित वस्तुओं से परे होना चाहिए। यही विधान है। जब किसी महान् पुरुष या किसी अति शक्तिशाली शासक के सामने आप पहुँचते हो, और उसके शरीर या उसके व्यक्तित्व पर आप भरोसा करने लगते हो, तब, वेद का कथन है, आप बहुत ही निर्बल नरकुल का सहारा लेते हो, और आप गिर पड़ोगे। आप पाप करते हो, क्योंकि उसकी सच्ची वास्तविकता या आत्मा की अपेक्षा आप उसके शरीर को अधिक महत्त्व देते हो। सत्य वस्तु के स्थान पर आप झूठे रूप-रंग को बैठाते हो। आप अन्तर्गत परमेश्वर को, भीतर के आत्मतत्त्व को झूठा करते हो। आप प्रतिमा पूजते हो, आप शरीर की आकृति की उपासना करते हो, आपकी पूजा केवल मूर्ति-पूजा है, न कि परमात्मा की या ईश्वर-पूजा और आपको इसके परिणाम-स्वरूप व्यथा और पीड़ा भोगनी पड़ेगी। यही दैवी विधान है। वेद कहते हैं कि व्यावहारिक संसार में विचरते समय अथवा अपने सांसारिक कामों को करते समय भी परमेश्वर या अन्तरात्मा पर दृष्टि रक्खो। लोगों को चाहिए कि सांसारिक कामों का कम महत्त्व मानें, उन्हें स्वप्न-मात्र समझें, न कि अन्तर्निहित सत्य या आत्मा के समान महत्त्व-पूर्ण समझें। तत्त्व को व्यक्तित्व से अधिक समझो। मित्र का चित्र उस चित्र की खातिर नहीं, बल्कि मित्र की खातिर प्यारा होता है। मित्र चित्र से अधिक प्यारा है। पदार्थों के सम्बन्ध में स्वयं पदार्थ को

अपेक्षा असली तत्त्व को ही अधिक देखना चाहिए। ऐसा करने
से सांसारिक सम्बन्ध और सांसारिक काम बड़ी मधुरता से,
सरलता से, अविषमता से चलेंगे। अन्यथा संघर्ष, अड़चन और
क्लेश होगा। यही विधान है।

यहाँ पर हम एक कहानी कहेंगे:—

एक छोटे गाँव में एक पगली औरत रहती थी। उसके पास
मुर्गा था। गाँव के लोग उसे छेड़ा करते थे, उसके नाम धरा
करते थे, और उसे बहुत परेशान करते और क्लेश पहुँचाते थे।
अपने निकट रहनेवाले अपने गाँव के लोगों से उसने कहा—"तुम
मुझे तंग करते हो, तुम मुझे हैरान और दुःखी करते हो; देखो,
अब मैं तुमसे बदला लूँगी, मैं तुम्हारी करतूतों का प्रत्युत्तर
दूँगी और तुमसे सख्त बदला लूँगी।" पहले तो लोगों ने उसके
कहने पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चीखी, "गाँववालो,
खबरदार! सावधान! मैं तुम पर बड़ी सख्ती करूँगी।" उन्होंने
उससे पूछा—"तू क्या करनेवाली है।" उसने कहा—"मैं इस
गाँव में सूर्य न उदय होने दूँगी।" उन्होंने उससे पूछा—"किस
तरह तू ऐसा करेगी।" उसने उत्तर दिया, "जब मेरा मुर्गा बाँग
देता है, तभी सूर्य उदय होता है। यदि तुम मुझे इसी तरह दिक़
करते रहोगे, तो मैं अपना मुर्गा लेकर दूसरे गांव चली
जाऊँगी, और तब इस गांव में सूर्य उदय ही न होगा।"

यह सही है कि जब मुर्गा बाँग देता है, तब सूर्य उदय होता
है, किन्तु मुर्गे की बाँग सूर्योदय का कारण न थी; कदापि
नहीं। उसे बड़ा कष्ट था, उसने गांव छोड़ दिया, और दूसरे
गाँव को चली गई। जिस गांव में वह गई, वहाँ मुर्गा बोला
और उस गांव में सूर्योदय हुआ। किन्तु जिस गांव को वह छोड़
आई थी, उसमें भी सूर्य उदय हुआ। इसी प्रकार मुर्गे का बाँग
देना आपकी अभिलाषाओं की याचना और चाह भरी प्रकृति

है। आपकी अभिलाषायें मुर्गे की बाँग की तरह हैं, और आपकी इच्छित वस्तुओं का आपके सामने आ जाना सूर्योदय के समान है। इच्छित वस्तुओं की चाह या उत्कट अभिलाषा का उत्थान, शासन, नियंत्रण और नियमन एक अनन्त एवं शुद्ध आत्म रूप सूर्य के अधीन होता है। सच्चा स्वरूप या शासक सूर्य ही है, जो सुबह या शाम, दिन या रात को उत्पन्न किया करता है। इसी शुद्ध आत्मा व अनन्त वस्तु के अधीन सारे सांसारिक व्यवहार परिचालित और अनुशासित होते हैं। यह इन्द्रियों में प्रवेश कर जाता है। यह तार खींचनेवाला (सूत्रधारी) उक्त सूर्यों के सूर्य और प्रकाशों के प्रकाश स्वरूप से नियंत्रित होता है। यह याद रक्खो।

साधारणतः लोग ये सब बातें तुच्छ, भिखारी, भुक्खड़ और स्वार्थी जीवात्मा पर आरोपित करते हैं। यह भूल न करो, कृपया इससे बचो। जाँचो तो। जो सूर्य मुर्गे की आँख में प्रवेश करता है, और उसका गला खोलकर उससे बाँग दिलवाता है, वही सूर्य प्रातःकाल को सुशोभित करनेवाला भी है। देखो, मुर्गे की बाँग और सवेरे का होना वास्तव में सूर्य की सुख-प्रद गरमी और शक्ति द्वारा शासित या सम्पादित होता है। एक ओर इन जीवित पदार्थों को, और दूसरी ओर अपने विचारों को देखो, ये सब तरह उसी सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के प्रकाश, वास्तविक स्वरूप, आत्मा, असली अपने आपसे शासित, नियंत्रित और वेष्टित और व्याप्त होते हैं। इस तत्व को जानो, और स्वाधीन बनो। मिथ्या आरोपण मत करो। गलत अर्थ न निकालो। पदार्थों को ही सच्चा मत समझो। जब हम वस्तुओं को ही पीड़ा और रंज का असली कारण समझते हैं, तब हमारा विश्वास मिथ्या है। ऐसा समझो, ऐसा अनुभव करो, और सब चीजों को एक गहरा मज़ाक़, महान नाटकीय अभिनय (खेल) मानो।

कोई क्लियोपैट्रा (Cleopatra) या मैक्बैथ (Macbeth) का अभिनय (खेल) भले ही करे, किंतु असलियत में वह आत्मघाती या नरघाती नहीं है; वह राजा या रानी नहीं है। वह केवल अभिनेता (Actor) है; और वह तो अमुक-अमुक भलामानुस है। इसी तरह, आप कोई भी काम करो, पर यह न भूलो कि आपका सच्चा स्वरूप परमेश्वर है। जान लो कि "मैं हूँ" निर्विकार है, वही सम्पूर्ण आनन्द है, समग्र सुख है। इसे न भूलो। इसे समझो और मुक्त वा स्वतंत्र हो जाओ।

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ् शक्नुयाद् ग्रहणाय,
दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ७ ॥
(बृह० उह० अ० २ ब्रा० ४ मं० ७)

"अब जिस तरह ढोल का शब्द, जब वह पीटा जाय, तो बाहर से नहीं पकड़ा जा सकता, किन्तु शब्द तभी पकड़ा जाता है, जब ढोल या ढोल का पीटनेवाला पकड़ा जाता है।" इसी प्रकार इच्छा के सब भौतिक पदार्थ तभी पकड़े जा सकते हैं, जब कि वह, जो उनकी उत्पत्ति का मूल है, और जिससे वे निकलते हैं, पकड़ा जाता है।

स यथा शंखस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ् शब्दाञ् शक्नुयाद् ग्रहणाय,
शंखस्य तु ग्रहणेन शंखध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

"जिस प्रकार शंख की ध्वनि, बजते समय, बाहर से नहीं पकड़ी जा सकती, किन्तु ध्वनि तभी पकड़ी जा सकती है, जब शंख या शंख का बजानेवाला पकड़ लिया जाता है।"

इसी प्रकार जिसकी ब्रह्म से एकता है, उसकी सब इच्छायें परिपूर्ण हो जाती हैं। उसे कभी कोई धोखा न देगा। उसे कभी कोई पीड़ा या कष्ट न होगा।

स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानां त्वगेकायनम्, एवं सर्वेषां गन्धानां नासिका एकायनम्, एवं सर्वेषां रसानां जिह्वैकायनम्

एवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनम्, एवं सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनम्, एवं सर्वेषां संकल्पानां मन एकायनम्, एवं सर्वासां विद्यानाम् हृदयमेकायनम्, एवं सर्वेषां कर्मणां हस्तावेकायनम्, एवं सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम्, एवं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनम्, एवं सर्वेषामध्वनां पादावेकायनम्, एवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ ११ ॥

"जिस तरह जल-मात्र का केन्द्र समुद्र है, इसी प्रकार सब स्पर्शों की त्वचा, सब गन्धों की नाक, सब रसों (स्वादों) की जिह्वा, सब रंगों का नेत्र, सब शब्दों का कान, सब संकल्पों का मन, सब विद्या का हृदय, सब कर्मों का हाथ, सब आनन्दों का उपस्थ, सब त्यागों की पायु, सब गतियों का पैर और सब वेदों की वाणी केन्द्र वा गति है।"

उसी तरह सम्पूर्ण संसार और संसार के सारे पदार्थ अपना केन्द्र निज स्वरूप, पवित्र आत्मा में रखते हैं। सारे रोगों का केन्द्र भी उसी में है। सभी शब्दों, रंगों, रसों, इन्द्रियों द्वारा कर्मों का अपना केन्द्र केवल आत्मा या निजस्वरूप में मिलता है। उसी से हर एक वस्तु निकलती है।

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते, न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेव। एवं वा अर इदं महद्भूत मनन्तमपारं विज्ञानघन एव, एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमि, इति होवाच याज्ञवल्क्यः॥ १२॥

"पानी में डाले जाने पर नमक का ढेला जिस तरह गल जाता है और फिर निकाला नहीं जा सकता, किन्तु (पानी में) सब कहीं हमें नमक का ही स्वाद मिलता है, उसी तरह सचमुच, ऐ मैत्रेयी, यह अनन्त, निःसीम, महद्भूत, जो विज्ञान-स्वरूप-मात्र है, इन तत्त्वों से आविर्भूत होता है, और फिर इन्हीं में विलीन हो जाता है। हे मैत्रेयी! मैं कहता हूँ, जब वह चला जाता है, तब कोई संज्ञा नहीं रहती।" यह याज्ञवल्क्य

ने कहा। इन तत्त्वों का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की उससे एकता हो जाती है, तब वह नाम और रूप के आश्रित नहीं रहता।

सा होवाच मैत्रेयी, 'अत्रैव मा, भगवान् मूमुहत्, न प्रेत्य संज्ञास्ति', इति।

तब मैत्रेयी ने कहा, यह कहकर आपने मुझे भ्रम में डाल दिया—"जब वह चला जाता है, तब उस (प्रेत) की संज्ञा नहीं रहती।"

मैत्रेयी के मन में सन्देह हुआ कि यदि यह आप ही सब क्लेशों का लानेवाला है, यदि यही कष्ट और रंज तथा प्रत्येक उत्पत्ति का कारण है, यदि हमारा मन कुछ भी नहीं है, यदि हमारा व्यक्तित्व जब विनष्ट हो जाता है, तब तो अवश्य हमारा पूर्ण लोप है। इसलिये उसने कहा, "मैं विलोप नहीं चाहती। आपका यह अपना आप किस काम का जब कि वह विलोप, मृत्यु, विनाश रूप है? मैं इसे नहीं चाहती, यदि सर्वस्व खोना पड़ेगा, तो मैं इसे नहीं चाहती।"

स होवाच, न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा, अरे इदं विज्ञानाय ॥१३॥ यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति; यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत, तत् केन कं जिघ्रेत् तत् केन कं पश्येत्, तत् केन कं शृणुयात्, तत् केन कमभिवदेत्; तत् केन कं मन्वीत, तत् केन कं विजानीयात्? येनेदं सर्वं विजानाति, तं केन विजानीयात्? विज्ञातारमरे केन विजानीयात्? ॥ १४ ॥

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"ए मैत्रेयी, मैंने भ्रम में डालनेवाली कोई बात नहीं कही। प्रिये! जानने के लिए यह काफी है। क्योंकि जहाँ यह द्वैत-सा होता है, वहाँ एक दूसरे को सूँघता है, एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे को

सुनता है, एक दूसरे का अभिवादन करता है, एक दूसरे को मनन करता है, एक दूसरे को जानता है। किन्तु जब इसका आत्मा ही यह सब कुछ हो गया, तो कौन किसको सूँघे, कौन किसको देखे, वह किससे किसको सुने, कैसे वह किसी का अभिवादन करे, किससे किसको मन में लाये, किससे किसको जाने ? जिससे इस सबको वह जानता है, उसको वह किससे जाने ? प्रिये ! वह विज्ञाता (अपने) को किससे जाने ?"

न सुनने के दो कारण हो सकते हैं । एक तो यह कि कोई मनुष्य बहरा और गूँगा हो, और दूसरा यह कि आपसे बाहर (परे या पृथक्) कोई शब्द ही न हो । ऐसे ही न देखने के दो हेतु हो सकते हैं । एक तो आपका अन्धापन, और दूसरे आपके सिवाय किसी और वस्तु का न होना, जिसे आप देखें । न सूँघने के भी दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो आपमें सूँघने की इन्द्रिय का न होना, दूसरे आपसे बाहर सूँघी जानेवाली किसी वस्तु का ही न होना। इस तरह यहाँ मैत्रेयी ने यह शंका की है कि यदि (अद्वैत अवस्था में) वास्तविक एवं शुद्ध आत्मा से ही हमें सुनना, देखना, सूँघना, रसास्वादन करना पड़ता है, तो (ऐसी अवस्था में) वस्तुतः क्या हम बहरे और गूँगे या अंधे तो नहीं हो जाते ? इस शंका का समाधान यह कहकर किया गया है कि अपने भीतर शुद्ध आत्मा में देखने का कारण ऐसा नहीं है, वल्कि इसलिए है कि अनन्त स्वरूप (आत्मा) के सिवाय कोई और वस्तु है ही नहीं, जिसे आप देखें। यह बात नहीं है कि सुनने की शक्ति न रहने के कारण आप कुछ नहीं सुनते, वल्कि कारण यह है कि सुनने को कुछ है ही नहीं। न कोई द्वैत है, न परिच्छिन्नता है। ऐसे ही न कोई पदार्थ है

जिनका आप मनन करें। वहाँ आप कुछ विचारते नहीं, इसका कारण यह नहीं है कि आपकी विचार-शक्ति जाती रही, वरन् इसलिए कि आत्मा के सिवाय कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं। फिर, यह दिखलाया गया है कि वहाँ केवल अनन्त आत्मा होने से वही अनन्त आत्मा कानों के सुनने और नाक के सूँघने का कारण है। यह सब कुछ आत्मा की ही शक्ति के कारण से है। नेत्र देखते हैं, तो आत्मा के ही प्रताप और प्रकाश के कारण। एक अनन्त आत्मा ही सकल इन्द्रियों के अस्तित्व का हेतु है।

मन जब उस अनन्त अवस्था में, उस अवर्णनीय लोक में पहुँच जाता है, तब (अपने से भिन्न कुछ और) वह अनुभव नहीं कर सकता; क्योंकि विचार वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। विचार-शक्ति उसको जो स्वयं उसका शासन करता हो, कैसे वेध सकती है?

कल्पना करो कि हमारे पास दो फलोंवाला एक चिमटा है। और यह चिमटा आपकी अँगुलियों के अधिकार में है। चिमटे के फल आपकी अँगुलियों के मज़बूत चंगुल में हैं, तब इन फलों से आप जो चीज़ चाहें पकड़ सकते हैं। किन्तु फलों में यह ताक़त नहीं है कि पलटकर आपकी उन अँगुलियों को पकड़ लें, जो इन फलों को पकड़कर चलाती हैं।

इसी तरह आपकी चेतना या बुद्धि, मन या दिमाग़, चिमटे के फलों की तरह हैं, किन्तु यह चिमटा विलक्षण प्रकार का है। साधारणतः चिमटों में दो फल या फलटे होते हैं, किन्तु इस चिमटे में तीन फल हैं। एक तो 'क्यों' का है, दूसरा फल 'कब' का है; और तीसरा फल 'कहाँ' का है; यही देश, काल और वस्तु हैं।

किसी बात या तथ्य को पूरी तरह से समझने का क्या अर्थ है ?

पूरी तरह से किसी चीज़ को समझने का अर्थ है उसे इन फलों से, इन फज़टों से मज़बूती के साथ पकड़ना। जब आप किसी चीज़ का 'क्यों', 'कब' और 'कहाँ' से जान लेते हैं, तब आप उसे समझ जाते हैं, उसका बोध हो जाता है। यों कह सकते हैं कि तब वह आपके, बुद्धि के, अधीन स्थित है। आपकी बुद्धि उसमें और उसके मध्य में होकर स्थित है, वह बुद्धि के अधीन स्थित है।

बुद्धि, या समझ, तीन फलवाले विचित्र चिमटे के समान है। बुद्धि से सब चीज़ें समझी जा सकती हैं, किन्तु इसके साथ ही यह बुद्धि, आपका यह चित्त, खुद चिमटे की तरह शरीर रूपी 'राज्य' के इस विचित्र 'शासक' या विचार-कर्त्ता के शासनाधीन है। समझ इस विचित्र शक्ति (आत्मा) के शासन के अधीन है, इसके प्रभुत्व में है।

क्या आपकी बुद्धि, आपका चित्त, स्वतंत्र है ? यदि है, तो वह सुषुप्ति की दशा में, गाढ़ निद्रा की अवस्था में, क्यों जाता है ? यदि वह स्वतंत्र होती, तो सब दशाओं में एकसी ही रहती। वह स्वाधीन नहीं है। बुद्धि, समझ, एक उच्चतर शक्ति के वश में है। बुद्धि में यह बल नहीं है कि वह उलटकर अनन्त या शुद्ध आत्मा को पकड़ ले, जिसके अधीन वह स्वयं है। वह आपसे यह प्रश्न नहीं कर सकती, "आप क्यों, कब और कहाँ थे ?" बुद्धि 'असली' व शुद्ध 'आत्मा' से प्रश्न करने की शक्ति नहीं रखती। बुद्धि 'आत्मा' को समझ या ग्रहण नहीं कर सकती। 'आत्मा' बुद्धि से ऊपर है, परे है।

बुद्धि यद्यपि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, तथापि वह अपने को उसमें वैसे ही निमज्जित कर सकती है, जैसे बुलबुले

समुद्र में। बुलबुले समुद्र से बाहर नहीं निकल सकते, किन्तु वे फूट कर उसमें डूब सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, किन्तु वह अपने को आत्मा में लीन कर सकती है। और वस्तुतः माया (बुद्धि) का यही सारांश और तात्पर्य है। बुद्धि आत्मा या परमेश्वर से यह नहीं पूछ सकती कि "क्यों, कब और कहाँ तुमने दुनिया की सृष्टि की?" साहस-पूर्वक वह ऐसा प्रश्न नहीं कर सकती।

यही आत्मा, सत्ता का सच्चा समुद्र, यही शासक और परि-चालक स्वरूप, यही अनुभव करने योग्य, निदिध्यासन करने योग्य, देखने योग्य और जानने योग्य है, जिससे अनन्त के साथ एकता हो जाती है। यह सच्चा स्वरूप या आत्मा 'मैं हूँ' कहलाता है। यह सच्चा स्वरूप या पूर्ण 'अहं' देशकाल-वस्तु से परे है। इस पूर्ण, सच्चे स्वरूप का निरूपण ॐ से किया जाता है। ॐ का अर्थ है 'मैं हूँ', और ॐ को उच्चारण करते समय आपको किसी दूसरे के प्रति सम्बोधन नहीं करना पड़ता। ॐ को उच्चारण करते समय यह न समझो कि आप अपने से बाहरवाले किसी दूसरे को पुकार रहे हैं। ॐ को उच्चारण करते समय आप अपने को इस सच्चे 'मैं हूँ' से एक समझो। ऐसी दृढ़ भावना से चित्त उस तत्त्व में निमग्न हो जाता है। इस पक्के विश्वास से, चित्त के इस सजीव ज्ञान से, चित्त मानो एक जल-बुदबुद सा हो जाता है, जो तत्त्व के अगाध 'समुद्र' में फूट जाता है। आत्मानुभव का यही मार्ग है। मन के इस सजीव ज्ञान का तुम्हें पकड़ लेना, तुम्हारे मिथ्या अहंकार का हर ले जाना ही तुम्हें स्वाधीन कर देने या उस तत्त्व की प्राप्ति का मार्ग है।

सच्चा 'मैं हूँ' इस शरीर में और उस शरीर में (अर्थात् प्रत्येक देह में) दिखाई देता है। सत्य स्वरूप 'मैं हूँ', शासक

परिचालक, नियामक, अनन्त आत्मा इस नन्हें से अणु में भी वैसा ही है जैसा विराट्, शक्तिशाली समुद्र में। सब देश-काल-वस्तु में एकसा है। ठीक ऐसा समझो, अनुभव करो कि आप वह सत्य स्वरूप 'मैं हूँ' हो, अनुभव करो कि आप अनन्त, अविनाशी आत्मा हो, और फिर देखो कि कैसा रूपान्तर होता है, आपकी स्थिति में कैसा महान परिवर्तन हो जाता है। यही विचार करो कि आप सकल दिशाओं में व्याप्त हैं, आप सब कालों में स्थित हैं, आप वह आत्मा हैं जो समग्र दिशाओं का आश्रयदाता है। अनन्त देश आप पर निर्भर हैं, आप उसे उठाये हुए हैं। अनन्त देश, अनन्त काल, अनन्त वस्तु, अनन्त शक्ति, अनन्त तेज, अनन्त बल, मैं हूँ। यह तथ्य अज्ञान का नहीं है। अपने को जो कुछ भी मैं समझता हूँ, उसका वास्तव में कारण यह है, और यही कारण सदा आपका भी है। ऐसा विचार करते ही आप ऊपर उठ जाते हो, उन्नत हो जाते हो, आप सकल स्वार्थमय उद्देश्यों से मुक्त हो जाते हो। इस पर निश्चय करो, और यह (निश्चय) सारी चिन्ताओं और दुखों को छिन्न-भिन्न कर देता है; आप सब द्वेषों, क्षोभों, दिक़्क़तों और उत्पातों से छूट जाते हो। अनुभव करो कि आप वही 'मैं हूँ' हो। वही आप हो।

आपकी बुद्धि को अपने कारणस्वरूप से यह पूछने का कोई अधिकार नहीं है, कारण से अपने को तद्रूप करने का कोई अधिकार नहीं है।

यह दुपट्टा या उपरना लो। यदि यह किसी चीज से तद्रूप होता है, तो उसे अवश्य उस रेशम से ही तद्रूप होना चाहिए जिसका कि वह बना है, अथवा जिसमें उसका प्रादुर्भाव हुआ है। अपनी लम्बाई, चौड़ाई या मोटाई के साथ उसे अपने को तद्रूप करने का कोई अधिकार नहीं है

इसी तरह, बुद्धि को यदि अपने को किसी से तद्रूप करना है, तो अपने ही तत्व से, अपनी ही सत्य प्रकृति से (जिसकी कि वह बनी हुई है) उसे तद्रूप होना चाहिए। उसे बुदबुदा हो जाना चाहिए, और फूटकर उस महान् समुद्र, आत्मा 'मैं हूँ' से एक हो जाना चाहिए। देह से उसकी एकता नहीं की जा सकती। देह तो केवल एक कार्य या परिणाम है। और, इसीलिए देह से अपने को एक करने का बुद्धि को कोई अधिकार नहीं है।

अरे! सत्य ईश्वर को, आत्मा को, इस श्रेष्ठ शक्ति को सांसारिक सम्बन्धों, दुनियावी मामलों से एक नहीं किया जा सकता। तुम वही श्रेष्ठ परमात्मा हो। सत्य तत्त्व हो। यह जानो, यह विचारो, यह अनुभव करो, और इस तरह सकल क्लेशों तथा शोकों से परे होकर छूट जाओ।

घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं ?

१६०२

३० दिसम्बर (१६२२) को एकेडेमी आफ़ साइंसेज़ में दिया हुआ व्याख्यान ।

महिलाओं तथा भद्र पुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन् !

आज हमारे पास लोगों के बहुत से प्रश्न-पत्र आये हैं । जब कोई वकील किसी अदालत में जाता है, तब शायद वह इतने ही काग़ज़ात अपने साथ लाता है, किन्तु वे सब सुने नहीं जाते। इन प्रश्नों की विपुल संख्या ही इन सबको न सुनाये जाने या इनका उत्तर न दिये जाने का अवसर बनती है । एक दूसरा कारण भी है, जिससे हम इनमें से बहुत से प्रश्न-पत्रों को हाथ में न लेंगे । इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध प्रेत-लोक या परलोक से है । अभी आप इस लोक में हो, और जिस विषय से वर्तमान में आपका कोई सरोकार नहीं है, उस पर कुछ कहने की अपेक्षा यह बेहतर होगा कि आपके हृदय और व्यवसाय से अधिक सम्पर्क रखनेवाले विषय की कुछ चर्चा की जाय ।

पिछली बार जो विषय उठाया गया था, उसी को हम यहाँ जारी रक्खेंगे । वह विषय बड़ा महत्त्व-पूर्ण है । "आत्मानुभव प्राप्त करने की आकांक्षा करना क्या किसी विवाहित मनुष्य के लिए युक्ति-सङ्गत होगा ?" यह विषय है । यह विषय लम्बा है, और आज की वक्तृता में हा इसकी पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती । फिर भी, आओ, देखें कि आज इसके बारे में हम क्या-क्या जान सकते हैं ।

भारत में एक बड़ा ही निर्दयी और हास्य-जनक (हँसोड़ा) मालिक था। वह अपने नौकरों को बड़े ही मज़ेदार ढँग से घोर पीड़ा दिया करता था। एक बार नौकर ने एक अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन (खाने की चीज़) मालिक के लिए तैयार किया। मालिक चाहता था कि नौकर उसे न खासके। यह चीज़ रात को पकाई गई थी। मालिक ने कहा, "हम इसे अभी न खायँगे, सवेरे खा लेंगे। इस समय जाकर लेटो, सवेरे ही हम लोग इसे चक्खेंगे।" मालिक का असल इरादा उसे सवेरे खाने का इसलिए हुआ कि उस समय तक उसे खूब भूख लग आवेगी। रात को कुछ भी न खाने के कारण वह सवेरे चाट पोंछकर खा जायगा, और नौकर के लिए कुछ भी न बचेगा। यह मालिक की असली नीयत थी। वह चाहता था कि नौकर छिलके और टुकड़े खाय, परन्तु इस अभिप्राय को नौकर से साफ़ नहीं कह सकता था। उसने नौकर से कहा—"जाओ, आराम करो, और सवेरे हम में से वह मनुष्य इसे खायगा, जो सबसे सुन्दर और सुखकर स्वप्न देखेगा। यदि सवेरे तक तू अत्युत्तम स्वप्न देख लेगा, तो सारा हिस्सा तेरा होगा, अन्यथा सब मैं ले लूँगा और खा जाऊँगा, और तुम्हें अपने को छिलकों और टुकड़ों से संतुष्ट करना पड़ेगा।" सवेरा हुआ। मालिक तथा नौकर एक दूसरे के सामने बैठे। मालिक ने नौकर से कहा कि अपने स्वप्न को बयान करो। नौकर ने कहा, "जनाब, आप मालिक हैं, आगे आपको चलना चाहिए। पहले आप अपने स्वप्नों को बतायें, बाद को मैं अपना बयान करूँगा।" मालिक ने अपने मन में सोचा कि यह ग़रीब नौकर, यह जाहिल, अपढ़ मनुष्य कोई अति मनोहर स्वप्न नहीं गढ़ सकता। वह कहने लगा, "मैं तो अपने स्वप्न में हिन्दुस्तान का महाराजा

हुआ। मैंने अपने स्वप्न में देखा कि यूरोप और अमेरिका की सारी शक्तियाँ भारत के राजा के अधीन आ गईं, और भारत के सम्राट् की हैसियत से मैं सारे संसार पर हुकूमत करने लगा।" आप जानते हैं कि यह स्वप्न उस क्रूर, निर्दयी मालिक का था। सच्चे भारत-निवासी मांस के उन लोथड़ों को, जो बादशाह कहलाते हैं, अपने सामने उन्हें रखकर उनकी उपासनाकरने वाली बच्चे जैसी रीति को जारी रखना नहीं चाहते। अच्छा, यह उस मनुष्य का स्वप्न था। मानों उसने अपने को भारत के सिंहासन पर बैठाकर सारे संसार पर हुकूमत करता हुआ समझा, और तब उसे सारे संसार के महान् सम्राट् अपने सामने खड़े और वंदना करते हुए मिले। इसके सिवाय, उसने देखा कि सारे देवता और साधु-महात्मा उसके दरबार में लाये गये, और उसके दायें या बायें (राम भूल गया कि दायें या बायें) बिठलाये गये। अपना स्वप्न सुना चुकने के बाद उसने नौकर से अपनी कहानी, अपना स्वप्न, सुनाने के लिए कहा।

बेचारा नौकर, सिर से पाँव तक काँपता हुआ बोला, "हुजूर, हुजूर, मैंने इस तरह का कोई स्वप्न नहीं देखा।" मालिक फूल उठा और बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि सारा स्वादिष्ट भोजन अब मेरे ही पल्ले पड़ेगा। नौकर कहने लगा कि "स्वप्न में मुझे एक विराट् दानव दिखाई पड़ा, बड़ा विकराल, महा भयंकर दैत्य मुझे अपनी ओर आता दिखाई पड़ा। उसके हाथ में एक लपलपाती तलवार थी।" मालिक पूछने लगा, "फिर क्या हुआ, फिर क्या हुआ?" तब उसने कहा, "सरकार! वह मेरे पीछे दौड़ा, वह मुझे मार डालने को ही था।" मालिक मुसकराया कि यह तो अच्छा लक्षण है। "वह मुझे मारने लगा, वह मेरा वध करने की चेष्टा कर

रहा था।" मालिक ने पूछा "फिर तुमने क्या किया ? तुम्हें क़त्ल करने में उसका क्या अभिप्राय था ?" नौकर ने कहा, "उसने मुझसे कहा वह स्वादिष्ट भोजन खा जाओ या मर जाओ।" मालिक ने पूछा "और तब तुमने क्या किया ?" नौकर ने कहा, "मैं चुपके से रसोई घर में चला गया और हर एक पदार्थ खा डाला।" मालिक ने कहा, "तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया ?" नौकर ने जवाब दिया, "जनाब, आप तो सारी दुनिया के बादशाह थे। आपके दरबार में बड़े बड़े लोगों का बहुत ही शानदार जमाव था, और लोग तलवारें निकाले तथा तोपें-बन्दूकें लिये हुए थे। यदि मैं आप महाराजाधिराज के पास पहुँचने का यत्न करता, तो वे मुझे मार डालते। मैं आपके पास पहुँचकर बता भी न सका कि मैं किस संकट में हूँ। इसीलिये वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने के लिए मैं लाचार हुआ, मुझे अकेले ही उसे चखना पड़ा।"

राम आपसे कहता है कि आप वचन-दत्त स्वर्ग (promised) paradise), वचन-दत्त वैकुण्ठ या प्रतिज्ञाबद्ध परलोकों का स्वप्न देख रहे हैं। आप इन्हीं चीज़ों का स्वप्न देख रहे हैं, और ये रोचक स्वप्न हैं, ये मधुर स्वप्न हैं, और ऐसे ही स्वप्नों में आप आकाश में महल बना रहे हैं, या शायद बालू पर ही बना रहे हैं। आप आकाश में महल बना रहे हैं, और आप सोच रहे हैं कि "हमें यह करना चाहिए और वह करना चाहिए। हमें शैतान से डरना चाहिए और हमें ईश्वर से डरना चाहिए। हमें इस तरह बर्ताव करना चाहिए, अन्यथा अमुक-अमुक देवदूत हमें नरक से स्वर्ग न जाने देगा।" आप इन चीज़ों का स्वप्न देख रहे हैं, किन्तु राम कहता है कि वह नौकर होना बेहतर है, जिसने दैत्य के डर से सामने उपस्थित स्वादिष्ट भोजन खा लिया था। वैसा करना अच्छा है। वह एक ऐसी बात थी, जिसका

सम्बन्ध वर्तमान से था। वह एक ऐसी बात थी, जो उस समय सत्य थी। जो मामले आपके हृदय के निकट हैं, जिनका सम्पर्क आपके व्यापार और आपके चित्त से है, पहले उन पर ध्यान देना अधिक वाञ्छनीय है, और परलोक अर्थात् स्वप्नों का वह लोक, अपनी फ़िक्र आप कर लेगा। उदारता का आरम्भ घर से होता है। पहले घर से आरम्भ करो।

राम अब उस प्रश्न पर आता है, जिसका आप सबसे वास्ता है। वह प्रश्न यह है, "विवाहित दम्पति किस तरह रहें कि उनके विवाह का परिणाम संकट, चिन्ता, पीड़ा और रंज से दूर हो?" लोग कहते हैं, "ऐ ईश्वर! तू हमारी तकलीफ़ों को दूर कर दे। हे ईसा! तू मेरे क्लेशों को हटा दे। हे कृष्ण और बुद्ध! मेरे दुःखों को हर ले।" किन्तु राम कहता है कि मृत्यु के बाद वे आपकी तकलीफ़ों को दूर करें या न करें, पर इस जीवन में आपके कष्टों को कौन हरेगा? इस जीवन में पति को स्त्री का ईसा मसीह होना चाहिए, और स्त्री को अपने पति का ईसा मसीह। पर हालत यह है कि हर एक स्त्री अपने पति के लिए और हर एक पति अपनी स्त्री के लिए जुडास इसकैरियट* (Judas Iscariot) बन रहा है। यह मामला कैसे सुधरे, बात ठीक हालत में क्योंकर आये? प्रत्येक पति और प्रत्येक स्त्री को संन्यास का आलिङ्गन करना होगा। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा, ईसाई संसार के अनुसार, त्याग और संन्यास की मूर्ति थे। इसी तरह हर एक स्त्री यदि त्याग की मूर्ति हो जाय, तो वह अपने पति की त्राता हो सकती है। संन्यास एक ऐसा शब्द है, जिससे हर एक काँपता

*हज़रत ईसा के उस शिष्य का नाम है, जिसने ईसा को समय पर धोखा दिया था। इसलिए धोकेबाज़ से अभिप्राय है।

और थर्राता है। हर एक इस शब्द से थर्राता है, किन्तु त्याग के बिना आपके परिवार में स्वर्ग आने की कहीं ज़रा सी भी सम्भावना नहीं है। त्याग शब्द के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति है। पिछले व्याख्यानों में यह शब्द इतनी बार बर्ता गया है कि इसके असली अर्थ समझा देना अब बहुत ज़रूरी है। त्याग यह नहीं चाहता कि आप हिमालय के सघन जंगलों में चले जायें; संन्यास यह नहीं चाहता कि आप सारे कपड़े खोल कर नंगे हो जायें; संन्यास आपसे नंगे सिर और नंगे पैर चलने को नहीं कहता। यह त्याग नहीं है। यदि त्याग का यही अर्थ होता, तो विवाहित जोड़े के लिए त्याग का अभ्यास कैसे संभव हो सकता था? वे दोनों स्त्री और पति की तरह रहते हैं, उनके परिवार है, उनके सम्पत्ति है। वे लोग त्यागी कैसे हो सकते हैं? हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में त्याग का जो चित्र खींचा गया है, वह है साथ साथ बैठे हुए भगवान् शिव और भगवती पार्वती का, और उनका परिवार भी उनके आस-पास बैठा है। भगवान् शिव और उनकी अर्द्धांगी पार्वती, एक साथ स्त्री-पुरुष की तरह रहते हैं, अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में वे त्याग की मूर्ति कहे गये हैं। लोग समझते हैं कि त्याग शब्द से हिन्दुओं का अभिप्राय है वन को चले जाना, समाज से अलग रहना, हर एक वस्तु से दूर भागना, हर एक चीज़ से नफ़रत करना। पर हिन्दुओं के अनुसार त्याग शब्द के ये अर्थ नहीं हैं। अपने गार्हस्थ्य जीवन में भी हिन्दुओं को 'संन्यास' का चित्र खींचना पड़ता है। यदि यह वेदान्त, यदि यह तत्त्वज्ञान या परम सत्य केवल वन को चले जानेवाले थोड़े से लोगों के लिए होता, तो यह किस काम का है? हमें इसकी ज़रूरत नहीं। इसे गंगा नदी में फेंक दो, हमें यह न चाहिए! यह त्याग,

इस भौतिक ज्ञान से भी आपको बड़ी सहायता मिलती है, किन्तु यह असली ज्ञान नहीं है, यह अकेला आपको कदापि कोई शान्ति नहीं दे सकता। जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है, वह सत्य का ज्ञान है, असली आत्मा का ज्ञान है; आप जो वास्तव में हैं, उसका ज्ञान है। अच्छा, आप जो कुछ हैं, क्या उसका ज्ञान आपको बुद्धि द्वारा मिल सकता है। क्या वह यथेष्ट होगा? किसी हद तक, किन्तु पूरी तरह नहीं। इसलिए कि आप ज्ञानी हो सकें, आप जीवन्मुक्त हो सकें, यह विशाल संसार आपके लिए स्वर्ग हो जाय, आपको इस दिव्य ज्ञान का अनुभव करना होगा—इस ज्ञान का कि "आप परमात्मा हैं, आप ही दैवी विधान हैं, आप विदेह, परम शक्ति और तेज हैं, अथवा जो कोई भी नाम इसे देना पसन्द करें, वह वस्तु आप हैं, या यह ज्ञान कि आप परमेश्वर हैं।" यह ज्ञान केवल बुद्धि द्वारा ग्राह्य हुआ ही नहीं, बल्कि भाव की भाषा में भावित, आपके आचरण में आचरित, आपके रक्त में रंजित, आपकी नसों में दौड़ता हुआ, आपकी नाड़ियों के साथ फड़कता हुआ, आपमें भिद कर और व्याप्त होकर आपको जीवन्मुक्त बना सकता है। वह ज्ञान त्याग रूप है। यह ज्ञान प्राप्त करो, और आप त्यागी पुरुष हैं।

वन को चला जाना तो उद्देश्य-प्राप्ति का एक साधन मात्र है, विश्वविद्यालय में जाने के समान है। महाविद्यालय में हम विद्योपार्जन करते हैं, परन्तु यह कभी नहीं समझा जाता कि हमें सदैव वहाँ रहना है। इसी तरह इस ज्ञान को पाने के लिए आप कुछ काल के लिए भले ही जंगल को चले जायँ, किन्तु वेदान्त-दर्शन यह कभी नहीं सिखाता कि वनवास का नाम त्याग है। त्याग का आपके स्थान, स्थिति या शारीरिक कार्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। उसे इन

बातों से कोई मतलब नहीं। त्याग तो आपको आपकी असली परमोच्च दशा प्राप्त कराता है, आपको आपके श्रेष्ठ पद पर ला बिठाता है। त्याग केवल आपकी शक्तियाँ बढ़ाता है, आपके तेज की वृद्धि कराता है, आपका बल पुष्टतर बनाता है, और आपको ईश्वर बना देता है। वह आपका सारा दुःख हर लेता है, वह आपकी सम्पूर्ण चिन्ता और भय भगा देता है। आप निर्भय और सुखी हो जाते हैं।

एक विवाहित पुरुष इस त्याग को कैसे पा सकता है? यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरे को सुखी करने की ठान लें, तो आज ही मामला निपट सकता है। तुम्हारी इंजीलें तब तक कुछ भी भला नहीं कर सकतीं जब तक कि स्त्री और पति एक दूसरे रक्षक और ईसा मसीह बनने की न ठान लें। देखिये, जब लोग धार्मिक व्याख्यानों में आते हैं, तब उनसे हर एक चीज़ त्यागने को कहा जाता है, अपने शरीर और सम्पत्ति को ईश्वर का समझने के लिए कहा जाता है, और अपने को देह न मानकर ईश्वर मानने के लिए कहा जाता है। उन्हें ऐसा उपदेश किया जाता है। उन्हें कुछ ज्ञान मिलता है। किन्तु जब वे घर लौटते हैं, तब क्या होता है? स्त्री आकर कहती है "हे प्रियतम! मुझे एक बड़ा गौन (gown, लहँगा) चाहिए", और वह कहता है कि मेरे पास पैसा नहीं है। इसका क्या अर्थ है? बच्चा आता है, और कहता है, "दादा! प्यारे दादा!! भीतर आओ।" सब मेरा पुत्र! मेरी स्त्री!! मेरी लड़की! मेरी बहन!! ऐसा कहने लगते हैं।

यही लड़की, बहन, सम्पत्ति, घर और परिवार, यह सब गिरजा-घर में ईश्वर को दे दिया गया था। घर पहुँचते ही ईश्वर से सब लौटा लिया गया। वह 'मेरा', 'मेरा' हो गया। अब वह ईश्वर का नहीं रहा। यह क्षणिक और चंचल भाव

जिसने चित्त पर क़ब्ज़ा कर लिया था, "ऐ ईश्वर! मैं तेरा हूँ, मैं तेरा हूँ, सब कुछ तेरा है, मैं सर्वस्व तेरे अर्पण करता हूँ", स्त्री और बच्चों का मुख दिखाई पड़ते ही एक पल में वह भाव ग़ायब हो जाता है।

आप देखते हैं कि आध्यात्मिक उन्नति और अपनी वर्तमान स्थिति में पारिवारिक जीवन एक दूसरे के विपरीत हैं, परस्पर-विरोधी हैं। गिरजाघर में जो कुछ कहा गया था, वह घर में उलट दिया गया, बल्कि शायद उससे भी कुछ अधिक किया गया। यह तो पिनैलोपीज़ (Penelopese)* की सी बात हुई। वह दिन भर सूत को लपेटा और बटा करती थी और रात आते ही लपेटे या बटे हुए सूत को फिर उधेड़ देती थी, अर्थात् जैसा का तैसा कर डालती थी। इसी तरह आप सबके सब गिरजाघरों में, अपनी-अपनी प्रार्थनाओं और उपदेशों में आध्यात्मिक उन्नति रूपी सूत बटते हो और घर में आकर सारा बटा हुआ उधेड़ देते अर्थात् खोल देते हो, किया-धरा मिटा देते हो। यदि यही हालत बनी रही, तो कोई आशा नहीं है। यदि आप ईश्वर से मज़ाक नहीं करते हो, यदि अपनी प्रार्थनाओं को आप पाखंड नहीं बनाना चाहते हो, तो ठीक ढंग से आपको मामले पर ध्यान देना होगा। आपको वह कारण हटाना होगा, जो आपकी आध्यात्मिक उन्नति को रोकता है। आपको घर की हालत सुधारना पड़ेगी। प्रत्येक स्त्री को अपने पति का ईसा मसीह बनना होगा, और प्रत्येक पति को अपनी स्त्री का त्राता। लोग कहते हैं, "अहा! मैं तुम्हें चाहता हूँ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।" कैसा गपोड़ा है! यदि वस्तुतः आप अपनी स्त्री या पति को प्यार करते होते, तो उसके लिए कुछ स्वार्थ-त्याग करने की भी सामर्थ्य आपमें

* ओडेसयिस (Odysseus) की पत्नी का नाम है।

होती। यदि आप सचमुच उसे प्यार करती या करते हो, तो आप को उस पर कुछ निछावर भी करना चाहिए। पर क्या आप कुछ स्वार्थ-त्याग करते हो ? नहीं करते, नहीं करते। स्त्री पति को अधिकार में रखना चाहती है, और पति स्त्री का अधिकारी बनना चाहता है, मानो वह कोई जड़ पदार्थ है, जिसका वह अधिकारी हो सकता है, जो उसकी सम्पत्ति हो सकती है। एक दूसरे को अपने अधीन करना चाहते हैं। यदि सचमुच आप एक दूसरे से प्रेम करते हो, तो आपको एक दूसरे के हित की वृद्धि करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्या सचमुच आप ऐसा करते हो ? आप समझते हो कि मैं ऐसा करता हूँ; पर आपकी समझ में भूल है। भाई ! स्त्री या पति की इन्द्रिय-वासनाओं की तृप्ति करना उसे सुख पहुँचाना नहीं है, उसे सच्चा सुख देना नहीं है, कदापि नहीं। यदि सुख पैदा करने का यही एक उपाय होता, तो सभी परिवार सुखी होते। पर क्या ऐसा है ? क्या ये परिवार सुखी हैं ? हज़ारों में एक भी नहीं। वे सुखी क्यों नहीं हैं ? क्योंकि वे यह नहीं जानते कि एक दूसरे का सुख क्योंकर बढ़ायें, और एक दूसरे के हित की वृद्धि कैसे करें ? वे यह जानते नहीं। वे समझते हैं कि केवल पाशविक वासनाओं की तृप्ति करना ही सुख का बढ़ाना है। एक दूसरे के मिथ्याभिमान का पोषण करना, यह वास्तविक हित करना नहीं। किसी ने कहा है कि "प्रेम करना तो रंज से संधि करना है" (To love is to make a compact with sorrow)। और अधिकांश उपन्यासकारों, ऐतिहासिकों और इस संसार के लोगों का यही अनुभव है—"प्रेम करना शोक से नाता जोड़ना है।" किन्तु क्या इसमें प्रेम का कोई दोष है, जो वह रंज पैदा करता है ? नहीं। प्रेम का आप

जो उपयोग करते हो, वह दूषित है, और वही अपने साथ दुःख-दर्द लाता है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थ में एक कथा है कि भारत के प्रसिद्ध देवता, भारत के प्रभु ईसामसीह, भगवान् कृष्ण को एक बड़ा दैत्य खाये जाता था। उन्होंने अपने हाथ में एक खंजर ले लिया। वे खा लिये और निगल लिये गये। अपने को अजगर के पेट में देखकर उन्होंने अजगर का हृदय वेध दिया। हृदय फट गया, अजगर घाव से मर गया, और भगवान कृष्णचन्द्र बाहर निकल आये। ठीक यही मामला है। प्रेम क्या है? प्रेम कृष्ण है, अर्थात् प्रेम परमेश्वर है, प्रेम ईश्वर है, और वह हृदय में प्रवेश करता है, विषय-लोलुप मनुष्य के चित्त के भीतर वह पैठ जाता है, वह हृदय में घुस जाता है, और जब वह आसन जमा लेता है, जब हृदय के भीतर में उसे स्थान मिल जाता है, तब वह वार करता है। और, परिणाम क्या होता है? हृदय फट जाता है, हृदय घायल हो जाता है। फल-स्वरूप व्यथा और शोक हाथ लगते हैं। सांसारिक प्रेम के हर एक मामले में रोना और दाँतों का पीसना ही रहता है। यही रीति है। यही दैवी विधान है। यही घटना है। किसी भी सांसारिक पदार्थ से ज्यों ही आपने दिल लगाया, किसी भी लौकिक वस्तु को ज्यों ही आप उसीके लिए प्यार करने लगे, त्यों ही कृष्ण भगवान् आपमें प्रवेश कर जाते हैं और आपको घायल कर देते हैं, हृदय फट जाता है, आप शोक-पीड़ित हो जाते हो, आप विलाप और रुदन करने लगते हो; "अरे, यह प्रेम तो बड़ा निष्ठुर है, इसने मुझे तबाह कर दिया।"

यह एक दैवी विधान है—"इस दुनिया में जो कोई आदमी किसी व्यक्ति या दुनियावी चीज़ में अपना दिल

लगायेगा, उसे तकलीफ़ उठानी पड़ेगी । या तो वह प्रियजन अथवा प्रिय पदार्थ उससे छीन लिया जायगा, या उनमें से एक मर जायगा, या उनमें कलह हो जायगी।" यह अनिवार्य नियम है । इसे लापरवाही से मत सुनो, इसे (इस सत्य को) अपने हृदयों में गहरा उतर जाने दो, अपने-अपने चित्तों में इसे प्रवेश करने दो । जब कभी कोई मनुष्य किसी सांसारिक पदार्थ से अनुराग करता है, जब कभी कोई मनुष्य किसी वस्तु में सुखान्वेषण की चेष्टा करता है, तब उसे धोखा होता है, वह तुरन्त इन्द्रियों द्वारा ठगा जाता है । लौकिक पदार्थों में अपना दिल लगाकर आप सुख और आनन्द नहीं पा सकते । यह क़ानून है । आपके सभी सांसारिक प्रेमों की परिसमाप्ति हृदयों के टूटने में होगी, अन्यथा कुछ भी न होगा । शक्तिशाली मुद्रा (रुपया)पर भरोसा न करो, ईश्वर पर भरोसा करो । इस चीज़ या उस चीज़ पर भरोसा न करो, ईश्वर पर भरोसा रक्खो, अपने आत्मा या अपने आप पर भरोसा करो । हर एक सांसारिक स्नेह अपने साथ में दुःख लाता है, क्योंकि सांसारिक अनुराग-मात्र बुतपरस्ती (प्रतिमा-पूजा) है । सुन्दर प्रतिमायें, सुन्दर मूर्तियाँ इत्यादि बना दी जाती हैं, ये सारे शरीर भी मूर्तियाँ, प्रतिमायें हैं; ये सब पुतले, चित्र, प्रतिमूर्ति हैं । आप एक चित्र को चित्र के लिए ही प्यार करने लगते हैं, और जिस व्यक्ति का वह चित्र है, उसकी उपेक्षा करते हैं । क्या इसमें आप बुतपरस्ती नहीं करते हो ? कल्पना करो कि आपके पास आपके एक मित्र का चित्र है, और आप उसे अपने साथ रखते हैं, आपको उससे प्रेम है, उसे चूमते-चाटते हैं, वह आपका पूर्ण प्रेम-पात्र है, यहाँ तक कि वह मनुष्य, जिसका वह चित्र है, जब आप के घर आता है, तब आप उसकी चिन्ता नहीं करते, उसका आदर नहीं करते। क्या यह ठीक है ? क्या यह उचित है ?

क्या तब वह मित्र अपना चित्र आपके पास छोड़ेगा ? नहीं, नहीं। उसने अपनी तसवीर आपको इसलिए दी थी कि आप उसे याद रक्खें। उसने अपनी तसवीर आपको इसलिए नहीं दी थी कि आप उसे भूल जायँ। वह चित्र आपका इष्ट नहीं होना चाहिए था। चित्र को चित्र की खातिर ही प्यार करने लगना बुतपरस्ती है। आपको ईश्वर से प्यार करना था, आपको मालिक से, चित्र के स्वामी से प्यार करना था। इसी तरह, इस संसार की सभी चीज़ें ईश्वर का चित्र, चिह्न-मात्र हैं। स्त्रियाँ और पति इन्हीं चित्रों के शिकार होते हैं। वे बुतपरस्ती का शिकार बनते हैं, और मूर्तियों के गुलाम हो जाते हैं। आपको इंजील आपको बताती है कि आपको कोई मूर्ति स्थापित न करना चाहिए, ईश्वर की प्रतिमा न बनाना चाहिए, और आपको मूर्ति-पूजा न करना चाहिए। मूर्ति-पूजा शब्द से यह मतलब नहीं था कि आपको इन प्रतिमाओं की उपासना न करना चाहिए। मतलब यह था कि ये जो जीती-जागती मूर्तियाँ हैं, इनके फेर में पड़कर असली तत्व को न भूल जाओ, यही अभिप्राय था।

भारत में एक क़ब्रिस्तान में राम ने एक क़ब्र पर एक अभिलेख देखा, जो इस प्रकार था:—

Here lies the babe that now is gone,
  "An idol to my heart.
If so the wise God has justly done
  'T was needful we should part."

"यहाँ वह बच्चा लेटा हुआ है, जो अब (परलोक) सिधार गया है, और जो मेरे हृदय-मन्दिर की प्रतिमा था। यदि ऐसा हुआ है, तो विज्ञ ईश्वर ने ठीक ही किया है, हमारा जुदा हो जाना ज़रूरी था।"

यह अभिलेख एक महिला ने लिखा था। वह उस बच्चे को बेहद चाहती थी। वह भूल से, उस असली तत्व से, बच्चा जिसका चित्र-मात्र था, बच्चे को अधिक मानने लगी थी, और इस लिए बच्चे का हरण उचित ही था। यही दैवी विधान है, यही नियम है। यदि आप चित्रों का ठीक उपयोग करोगे, तो वे आपके पास रहेंगे, यदि उनका दुरुपयोग करोगे, तो स्नेहभंग या वियोग, रंज, चिन्ता और भय होगा। ठीक ठीक उपयोग करो। हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, किन्तु जब हम असली तत्व को अधिक प्यार करें, तत्वको चित्र से अधिक प्यार करें। केवल तभी हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, अन्यथा कदापि नहीं। यही दैवी विधान है। यही त्याग है।

इसी ढंग से हर एक घर में संन्यास का अभ्यास किया जाना चाहिए।

अब और अच्छी तरह यही बात समझायी जाती है, देखिये। पुरुष या नारी, सज्जन या महिला, देवता या देवी के रूप में, आप यहाँ हैं। यहाँ आपका प्रेम-पात्र है। अब कौन-सी चीज आपको मोहती है, आपको खींचती है, आपको प्रेम-पाश में बाँधती है ? क्या उसकी देह, उसकी त्वचा, उसके नेत्र, नाक, कान इत्यादि ? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। आप कवियों की अपेक्षा अधिक युक्ति-संगत, विवेकशील, यथार्थवादी (rational) बनिये। वास्तव में ये चीजें आपको आकर्षित नहीं करतीं। यदि ये प्रेम की पात्र होतीं, यदि इनमें कोई मोहिनी शक्ति होती, तो वे देह के प्राण-रहित हो जाने पर भी चित्ताकर्षक बनी रहतीं। जब प्राणी मर जाता है, उस दशा में भी आप शरीर से आकर्षित बने रहते, किन्तु उस समय आप आकर्षित नहीं होते। तो फिर जादू किसमें था ? किसने यह मोहिनी शक्ति अर्थात् आकर्षण और जादू उत्पन्न किया था ?

यह काम तो भीतरी तत्त्व का था, उस अन्तर्गत 'जीवन' का था, भीतरी शक्ति का, भीतर की 'आत्मा' का था, और किसी का नहीं। यह भीतर का परमेश्वर ही है, जो हर एक के नेत्रों के द्वारा आपसे बातचीत कर रहा है। शरीर भीतरी परमेश्वर का चित्र, प्रतिमूर्ति या पोशाक है। पोशाक को इसके पहननेवाले व्यक्ति (देही) से, भीतरी असलियत से, अधिक प्यार मत करो। अपने भीतर विचार करो और आप समझ जाओगे।

कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक चित्ताकर्षक होते हैं, उनमें अधिक शोभा होती है। जिस विषय पर चर्चा करने की चाल नहीं है, उस पर यदि राम कुछ कहता है, तो क्षमा कीजियेगा। यह एक विचित्र बात है कि हम इन बातों को नहीं सुनते, जो हमारे चित्त को बहुत ही अधिक भाती हैं। साधारणतः इस विषय की चर्चा करने की चाल नहीं है। किन्तु चूँकि यह विषय अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है, और वास्तव में आपसे वास्ता रखता है, और दूसरे लोग भी इस विषय पर कम बोलते हैं, इसी कारण से राम इस पर बोलता है।

अच्छा, जो यह सौन्दर्य्य या शोभा है, यह सौंदर्य्य या शोभा कहाँ से आती है ? शोभा, चेष्टा और सजीवता (उत्साह) क्या वस्तु है ? वह है क्या ? क्या वह आँख, कान या नाक के कारण से है ? नहीं, नेत्र-कान इत्यादि में तो वह प्रकट होती है। आपने क्लियोपैट्रा (Cleopatra), उस मिस्री युवती, आफ्रिका-वाली क्लियोपैट्रा, उस हब्शी युवती का वृत्तान्त सुना होगा। उसने उस सम्राट् (ध्यान रहे) ऐंटोनी को मोह लिया था, लुभा लिया था, तसवीर बना दिया था। यह सब सुन्दरता के द्वारा हुआ था। सुन्दरता, शोभा आपके भीतर के परमेश्वर से मिलती है, और किसी दूसरी चीज़ से नहीं। वह चेतनता (*activity*)

है। चेतनता, उद्योग-शक्ति या गति किसके कारण से है ? देखिये ! आप मार्ग चल सकते हो, ढालू पहाड़ों पर चढ़ सकते हो, आप इधर-उधर विचर सकते हो, जहाँ चाहो जा सकते हो। किन्तु देहपात होने पर क्या हो जाता है ? प्राणान्त होने पर, वह चेतनता और उद्योग-शक्ति, आपके भीतर का वह ईश्वर, जो आपको ऐसी-ऐसी ऊँचाइयों पर उठा ले जा-सकता था, जो पहले आपकी सहायता किया करता था, वैसी अब नहीं करता। तो फिर इस शरीर के अन्दर कौन है, जिसके कारण नसें डोलती हैं, बाल बढ़ते हैं, आपकी नाड़ियों में रक्त का संचार होता है ? वह कौन है ? शरीर के अंगों को यह सब चाल, शक्ति, फुर्ती देनेवाला कौन है ? वह कौन है ? वह एक 'विश्वव्यापी शक्ति' है, एक 'विश्वेश्वर' है, जो वस्तुतः आप ही हो, वह 'आत्मा' है। जब कोई मनुष्य मर जाता है, तब उसे कुछ आदमियों को स्मशान या कब्रिस्तान उठाकर ले जाना पड़ता है। और जब वह जीवित था तब वह कौन चीज थी जो उसका मनों भारी बोझ बड़ी-बड़ी ऊँचाइयों पर, ऊँचे ऊँचे पहाड़ों पर उठा ले जाती थी ? वह कोई अदृश्य, अवर्णनीय वस्तु है, परन्तु है अवश्य। वह आपके अन्दर आत्मदेव है, वही हर एक शरीर में परमात्मा है, और वही परमेश्वर हर एक वस्तु को शक्ति और कमनीयता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति की गति और चेष्टा में शोभा का कारण भी वही परमेश्वर है। जब कोई मनुष्य सोया होता है, तब उसके नेत्र नहीं देखते; जब वह सोया होता है, तब उसके कान नहीं सुनते। जब मनुष्य मर जाता है, तब भी उसके नेत्र जहाँ के तहाँ रहते हैं, पर वह देखता नहीं, उसके कान ज्यों के त्यों रहते हैं, पर वह सुनता नहीं। क्यों ? क्योंकि भीतर का वह ईश्वर या आत्मदेव अब उसी तरह

सहायता नहीं करता जैसे पहले करता था। वह भीतर का ईश्वर ही है, जो नेत्रों के द्वारा देखता है, वह भीतर का ईश्वर ही है, जो कानों को सुनवाता है, वह भीतर का ईश्वर ही है, जो नाक को सूँघने की शक्ति देता है, और सब रगों का शक्ति-दाता भी वही भीतरी ईश्वर परमात्मा ही है। अन्तर्गत ईश्वर ही समस्त वाह्य शोभा एवं सौन्दर्य्य का सारांश तत्त्व है। यह सब अन्तर्गत परमेश्वर है। इसे याद रक्खो। इस पर ध्यान दो। आपके सामने कौन है? जब आप किसी व्यक्ति की ओर देखते हैं, तब आपसे नज़र कौन मिलाता है? वही भीतर का ईश्वर! बाहरी नेत्र, त्वचा, कान इत्यादि आवरण-मात्र हैं। ये केवल बाहरी वस्त्र हैं, और कुछ नहीं।

इस दुनिया में जब लोग पदार्थों को प्यार और उनकी इच्छा करने लगते हैं, तब वे भीतर की असलियत की अपेक्षा पोशाक को, वस्त्र को अधिक प्यार करने लगते हैं, जिस पोशाक के द्वारा कि वह (भीतर की असलियत) चमकती है। इस प्रकार वे भीतर के सत्य, मूल और तत्त्व की अपेक्षा वस्त्रों, वाह्य रूपों वा आकारों को अधिक प्यार और पूजा करते हैं। इसी से लोग दुःख उठाते हैं, और इस पाप के कुफल भोगते हैं। यह तथ्य है। इससे ऊपर उठो, इससे ऊपर उठो। प्रत्येक स्त्री और पति को एक दूसरे में परमेश्वर को देखने का यत्न करना चाहिए। भीतरी ईश्वर को देखो, भीतर के ईश्वर की पूजा करो।

हर एक वस्तु आपके लिए ईश्वर बन जानी चाहिए। नरक का खुला द्वार होने के बदले स्त्री को पति के लिए दर्पण के समान होना चाहिए, जिसमें वह परमेश्वर के दर्शन कर सके। पति को भी नरक का खुला द्वार होने के बदले स्त्री के लिए दर्पण के समान होना चाहिए, जिसमें वह भी परमेश्वर को देख सके।

कोई स्त्री अपने पति को, या पति अपनी स्त्री को, यह अनुभव, यह ईश्वरत्व, समस्त शक्तियों की यह वेदान्तिक एकाग्रता, कैसे प्राप्त करा सकता है ? यह साधना वे कैसे कर सकते हैं ?

यदि किसी स्त्री को अपने पति का उद्धार करना है, तो पहले उसे अपने पति को सभी बाहरी गन्दगियों से बचाना होगा। यदि मनुष्य अविवाहित है, तो वह सब तरह के प्रलोभनों का शिकार बन सकता है। वह बेपतवार की नौका की तरह होता है, जो सदा पवनों और तूफ़ानों के वश में है, चाहे वे किसी दिशा से भी चलें। जब तक कोई मनुष्य अविवाहित होता है, बिना आत्मिक ज्ञान के रहता है; जब तक वह अविवाहित है, तब तक सब ओर से उसे सब प्रकार की गन्दगियाँ भोगना पड़ती हैं, और स्त्री को पहले इन्हीं प्रलोभनों से अपने पति को बचाना होता है। पर अब होता क्या है ? साधारणतः स्त्रियाँ इन प्रलोभनों से अपने पतियों को नहीं बचातीं, किन्तु वे (स्त्रियाँ) स्वयं उनके कंधों पर भारी बोझ हो जाती हैं। यह तो ठीक ऐसा ही है जैसे कोई मनुष्य अपने सारे रुपये देकर बड़ी रक़म का एक नोट ख़रीद ले। तब वह दूसरे प्रलोभनों के बोझ से तो छूट जाता है, परन्तु इस एक प्रलोभन की अधीनता पिछली सभी अधीनताओं (Humiliations) से अधिक बोझल हो जाती है। अब वह पहले के से प्रलोभनों के अधीन नहीं है, किन्तु अब यह एक ही प्रलोभन या अधीनता उसके लिए काफ़ी है।

यह बात ठीक उस घोड़े की-सी है, जो बचाव के लिए किसी मनुष्य के पास गया था। आप जानते हैं कि एक समय था, जब मनुष्य भी वन में रहता था, घोड़ा भी जंगल में रहता था। हिरन और बारहसिंगे भी जंगल में रहते थे, जैसे कि

आजकल। एक बार एक घोड़ा बारहसिंगे से लड़ाई में हार गया। बारहसिंगे ने अपने सींगों से घोड़े को घायल कर दिया। घोड़ा सहायता के लिए मनुष्य की शरण में गया। मनुष्य ने कहा, "बहुत अच्छा, मैं तुम्हारी मदद करूँगा। मेरे हाथ में तीर हैं। तुम मुझे अपनी पीठ पर चढ़ा लो, और मैं जाकर तुम्हारे दुश्मनों को मार दूँगा।" आदमी घोड़े की पीठ पर सवार हुआ, जंगल में गया और बारहसिंगे का वध किया। वे विजयी होकर घर लौटे। घोड़ा बड़ा खुश था। अब घोड़े ने जाना चाहा। घोड़े ने मनुष्य को धन्यवाद दिया और कहा, "जनाब! मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। अब मैं विदा होना चाहता हूँ।" आदमी आया और बोला, "ऐ घोड़े! ऐ घोड़े! तुम कहाँ जाओगे? चूँकि अब मुझे मालूम हो गया है कि तुम बड़े काम की चीज हो, मैं तुम्हें जाने न दूँगा। तुम्हें मेरा चाकर होना पड़ेगा, तुम्हें मेरा गुलाम बनना होगा।" घोड़ा बारहसिंगे, हिरन और वन के अन्य पशुओं से बच गया, किन्तु उसकी स्वाधीनता जाती रही, और गुलामी, जो उसकी बाहरी सफलता का नतीजा थी, उसकी स्वाधीनता की हानि की पूर्ति न कर सकी।

यही हाल मनुष्य का है। विवाह के बाद वह बहुतेरे प्रलोभनों से बच जाता है, किन्तु एक ही प्रलोभन, गुलामी या पराधीनता जो स्त्री के सम्बन्ध से प्राप्त हुई है, ठीक उसी बर्ताव के तुल्य है, जो मनुष्य ने घोड़े के साथ किया था।

अच्छा, अब स्त्री पुरुष को बचानेवाली कैसे बने? वह उसे कुछ प्रलोभनों से तो बचाती है। इस बात की दौड़ जहाँ तक है, यह बहुत ठीक है, बहुत अच्छी है। पर दूसरी बात यह है कि उसे मनुष्य को गुलामी में न जकड़ना चाहिए। (अमेरिकावाले कहते हैं कि उन्होंने

फिलीपाइन "Philippine" निवासियों को जीता है, किन्तु यदि वे स्वयं सावधान न रहें, तो गुलामी फँस जायँगे।) यह कैसे हो सकता है ? स्त्री को अपने पति को गुलाम बनाने का यत्न न करना चाहिए, और पति को स्त्री अपने अधीन न करनी चाहिए। यह एक दूसरा क़दम है। यदि यह किया जा सके, तो आशा है, अन्यथा कोई आशा नहीं। यह एक ऐसी बात है जो कभी नहीं, या बहुत कम, आपके ध्यान में लाई जाती है, परन्तु है यह एक तथ्य। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा मानव-जाति का उद्धारकर्त्ता माना गया था, और यह कहा गया था कि वह सारे विश्व का उद्धार करेगा. सारा पाप धो डालेगा, और स्वर्ग का साम्राज्य भूमि पर ले आयेगा, किन्तु आपकी सारी इंजीलों, कुरानों और वेदों के होते हुए भी, इन सबके होते हुए भी, दुनिया को हम वैसी ही अधार्मिक अब भी पाते हैं, जैसी पहले थी। कारण क्या है ? कारण यह है कि दोषों के असली मूल का उच्छेद नहीं किया गया है। वास्तविक कठिनता आपके परिवार-मण्डल में है। जब तक स्त्री पति का सच्चा हित करने की न ठान लेगी, और पति स्त्री का हित करने की न ठान लेगा, तब तक धर्म का अभ्युदय नहीं हो सकता; धर्म के लिए कोई आशा नहीं है।

आप जानते हैं कि यह भाफ और बिजली का जमाना (समय) है। धर्म को तो गठरी बाँधकर चल देना चाहिए। ऐ ईसाइयो ! ऐ हिन्दुओ ! ऐ मुसलमानो ! यदि आप सचमुच यह चाहते हो कि संसार के सभी दुःख निर्मूल हो जायँ, यदि आप चाहते हो कि मानव-जाति की व्यथा दूर हो जाय, तो आपको इस पर ध्यान देना चाहिए, वैवाहिक सम्बन्धों को सद्भावों पर स्थापित करना चाहिए, आपको हर एक महिला और भद्र पुरुष के हृदय में यह उतार देना चाहिए कि अपना

स्त्री या अपने पति के लिए ईसामसीह बनना उसका अपना कर्त्तव्य है। यह हमारा अवश्य कर्त्तव्य है, ईसा बनने को हम वाध्य हैं। और यह कैसे हो सकता है? यदि स्त्री पति को दास न बनाना चाहे और पति स्त्री को अपने अधीन न करना चाहे, तो यह हो सकता है। सबको अपने आपसे मुक्त करो, तो आप स्वाधीन हो जाओगे। यही दैवी विधान है। Action & reaction are equal & opposite. "क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर और आमने-सामने (उलटी) होती हैं।" स्त्री को अपने अधीन बनाओ, उसे अपना गुलाम बनाओ, तो आप भी गुलाम हो जाओगे। ओह! अत्यन्त विकट उक्ति है। सत्य सदैव अप्रिय है, विकट है। हजरत ईसा ने यह विकट सत्य सिखाया था, और उसे पीड़ा पहुँचाई गई, अर्थात् उसे सूली मिली। सुक़रात आया और उसे विष दिया गया। सत्य को लोग प्रसन्नता से कभी ग्रहण नहीं करते। यह कथन दारुण मालूम होता है, पर है ऐसा ही। जरा ध्यान दो।

एक आदमी ने एक बैल के गले में एक रस्सी डाल रक्खी है, वह बैल के सींगों में बँधी हुई है, और रस्सी का दूसरा सिरा वह अपने हाथ में पकड़े है। वह समझता है कि बैल उसका नौकर है, उसका गुलाम है, किन्तु वह भी बैल का ठीक उतना ही गुलाम है, जितना बैल उसका। किस कारण से वह बैल को अपने अधिकार में बतलाता है? इसलिए कि बैल उसे छोड़ नहीं सकता। अब खयाल करो, यदि यही एक कारण है कि बैल उसे छोड़ नहीं सकता, तो हम कहते हैं कि वह भी तो बैल को छोड़कर नहीं जा सकता। क्योंकि वह बैल को नहीं छोड़ सकता, इसलिए बैल उसे नहीं छोड़ सकता। यदि वह बैल को छोड़ सकता, यदि वह आज़ाद

होता, यदि वह बैल का गुलाम न होता, तो बैल उसका गुलाम न होता। यही दैवी विधान है।

क्या आप यह नहीं देखते कि सभी कुटुम्ब कष्ट भोग रहे हैं? क्या यह तथ्य नहीं है? क्या यह तथ्य नहीं है कि सब परिवार इस संसार में, यूरोप में, अमेरिका में, भारतवर्ष में, जापान में, सब कहीं, कष्ट भोग रहे हैं? लोग कहते हैं, 'सुखी घर, सुखी घर।' कैसी प्रवञ्चना (bumbug) है! कैसा ज़बानी जमा-खर्च है! कोरी बातचीत, केवल स्वप्न है!! यह क्या बात है कि लोग कष्ट पा रहे हैं, और घर सुखी नहीं हैं? और क्या आप अपने अन्तर्हृदय से नहीं चाहते कि परिवार सुखी हों? यदि आप सुख चाहते हो, तो उत्सुक बनो, घर को एक बड़ा मज़ाक़ न बनाओ! उत्साही बनो, सच्चे बनो, कारण का पता लगाने की चेष्टा करो। उसे जाँचो, उसकी छान-बीन करो, उसका अनुसंधान करो, और आप देखोगे कि परिवारों में फूट और सद्भाव के अभाव का केवल मात्र एक कारण है कि वे प्रकृति के क़ानूनों को नहीं जानते हैं, और मूढ़ हैं। वे अज्ञान रूपी दैत्य के क़ब्ज़े में हैं। वे नहीं जानते कि प्रकृति की योजना (Plan of Nature) क्या है, विकास का पथ किधर है। वे यह नहीं जानते। राम आपसे कहता है कि जिस रास्ते पर विकास चलता है और जैसे सारी प्रकृति काम करती है, वह यही है कि हर एक क़दम बक़दम, धीरे-धीरे, अपने भीतर के ईश्वर की प्राप्ति के निकट पहुँचता जाय। यही पथ है, यही रेखा है जिस पर इस संसार के सभी चमत्कार चल रहे हैं। हर एक को अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करना चाहिए। भीतर के ईश्वर का अनुभव प्राप्त करके हर एक को पूर्ण आत्मा, पूर्ण ईश्वर हो जाना चाहिए। लोग इसे हृदयङ्गम नहीं करते, इसीलिए यह सब जीवन संग्राम है।

अपनी स्त्री या अपने पति से अपना सम्बन्ध ऐसे स्थापित करो कि ठीक मार्ग पर उन्नति हो; आप प्रकृति की योजना (Plan) के अनुकूल काम कर सको। प्रकृति की योजना (Plan) है 'स्वाधीनता! स्वाधीनता!! स्वाधीनता!!!' अपनी स्त्री को अपने से मुक्त कर दो, तो आप उससे (उसके बंधन से) मुक्त हो जाओगे। इसका अर्थ क्या है? क्या इसका यह अर्थ है कि सारे बन्धन तुरन्त तोड़ दिये जायँ, फ़ौरन काट दिये जायँ, गौर्डियन ग्रन्थि (Gordiant Knot) * की तरह काट दिये जायँ? क्या यही अभिप्राय है? क्या इसका यह अर्थ है कि हर एक नर इस संसार में खुला छोड़ दिया जाय और प्रत्येक नारी नितान्त निरंकुश हो जाय? नहीं, कदापि नहीं। इस तरह से स्वाधीनता नहीं मिल सकती, यह तो दासता है, गुलामी है। साथी को 'स्वतंत्र' बनाने का यह मतलब है कि आप उसे ऐसा बना दो कि वह आपके अन्तर्गत ईश्वर पर विश्वास या भरोसा करे, न कि आपकी देह पर। जब आप उसे प्यार करो या वह आपको प्यार करे, तब आप उसके अन्तर्गत ईश्वर से प्रेम करो और उसे अपने अन्तर्गत ईश्वर का प्रेमी बनाओ। लोग कहते हैं कि "हम सब के सब ईसामसीह पर विश्वास करते हैं।" राम कहता है कि आपको अपनी स्त्रियों और पतियों पर विश्वास करना चाहिए।

---

* एक पेचीदी गाँठ जिसको फ्रिगिया के बादशाह गाँर्डियन ने अपनी गाड़ी के एक सिरे में लगाई हुई थी और यह घोषणा दे रक्खी थी कि जो कोई इसे खोलेगा, वह एशिया का बादशाह हो जायगा। सिकन्दर ने इसका हाथ से खोलना कठिन देखकर इसे तलवार से काट दिया, जिससे इसका नाम गार्डियन नॉट से प्रसिद्ध हो गया। अभिप्राय अति कठिन वा पचीदा गाँठ से है।

राम कहता है, 'अपने साथी के मांस-पिंड पर विश्वास मत करो, भीतर के ईश्वर पर विश्वास करो।" इस बाहरी खाल और मांस को परदे के तुल्य जानो, और इसे आप अपने लिए पारदर्शी बना लो, जिससे परदे के पार भीतर के ईश्वर को देख सको।

हमको उस पक्षी की तरह होना चाहिए जो एक क्षण में किसी झूलती हुई फुनगी (डाली) पर उतर पड़ता है। उसे डाली के झुकने का बोध होता है, किन्तु वह निर्भय गाता रहता है, यह जानता हुआ कि उसके पंख हैं। डाली ऊपर-नीचे झूलती है, पर पक्षी भयभीत नहीं होता, क्योंकि यद्यपि वह डाली पर बैठा हुआ है, तथापि वह अपने परों के भरोसे है। ऐसा समझो। पक्षी जानता है कि वह डाली पर भरोसा नहीं कर रहा है, बल्कि अपने परों पर। यही ढंग है। उसका भरोसा उस डाली पर नहीं है जिस पर वह बैठा हुआ है; वह अपने पंखों पर भरोसा करता है।

इसी तरह जहाँ कहीं आप हों, अपनी स्त्री और बच्चों से कितने ही अनुरक्त क्यों न हो, किन्तु उनमें दिल न लगाओ। हृदय को परमेश्वर के साथ रक्खो, दिल की लौ अपने भीतर के परमात्मा से लगाये रहो। यही उपाय है। आप स्वयं ऐसा बर्ताव करो, और अपनी स्त्री तथा बच्चों से भी ऐसा ही बर्ताव करवाओ। आप उनसे मुक्त हो जाओगे, और वे आपसे मुक्त होंगे। पराधीनता का नाम नहीं रहेगा। स्वाधीनता! स्वतंत्रता!! इस तरह हर एक अमेरिका-निवासी स्वाधीन हो सकता है।

व्याख्यान का रोचक अंश अब आता है।

एक स्थान पर एक अत्यंत सुन्दर चित्र देखा गया। उस चित्र या तसवीर में एक बड़ा अच्छा आसन (couch) था। उस

आसन पर बड़े उज्ज्वल शाही गद्दे और तकिए थे। एक बड़ी सुन्दर रानी उस आसन पर लेटी हुई थी, कौच के एक ओर बच्चे थे, और राजा एक कुरसी पर बैठा था। तसवीर बड़ी अच्छी थी, बड़ी मनोहर थी, अति सुन्दर थी। रानी बहुत बीमार थी। मरणासन्न थी। उसका पति, राजा आँसू गिरा रहा था, और उसके बेटा-बेटी रो रहे थे। यह एक सुन्दर चित्र था। क्या आप इस तसवीर के मालिक होना पसन्द करेंगे। अहा! अवश्य आपमें से हर एक पसन्द करेगा। यह चित्र इतना मनोहर था कि यदि आप इसे देखते, तो अवश्य खरीद लेते। क्यों आप इस चित्र के मालिक होना चाहेंगे? इसमें एक ऐसी मनोहरता थी, जो आपको मंत्र-मुग्ध सा बना देती। किन्तु क्या वह मरणप्राय रानी होना आप पसन्द करते हैं? उत्तर दीजिये। वह रानी होना क्या आप पसन्द करते हैं? वह बड़ी अमीर थी, किन्तु मरणासन्न थी। और क्या आप वह रोता हुआ पति या बिलखते हुए बच्चे होना पसन्द करते हैं? नहीं।

वेदान्त चाहता है कि आप अपने घरों में, अपने परिवारों में ईश्वर की तरह रहो; अपने मकानों में गवाह की तरह, निर्विकार ईश्वर की तरह अनासक्त रहो, किसी तरह से मिले या उलझे हुए न रहो। अपने मन को सदा स्थिर रक्खो, सदा अनासक्त रक्खो, अपने चित्त और हृदय को सदा भीतर के परमेश्वर पर जमाये रक्खो, और सारे घरेलू मामलों को उसी तरह देखो, जिस तरह आप उस चित्र को देखते हो। आप जानते हैं कि जब आप साक्षी की तरह इसे देखते हैं, तब यह सुख का कारण होता है; जब आप इसमें उलझ कर आसक्त होते हैं, तब यह मुसीबत का सामान बन जाता है! यदि इस संसार के व्यापार में हम फँस जाते हैं, तो हमारी बड़ी दुर्दशा होती है। जब निर्विकार स्थिति-बिन्दु

से साक्षीवत् हम इसे देखते हैं, तब हमें आनन्द आता है, तब यह अति रुचिर हो जाता है। इसी तरह अन्तर्गत परमेश्वर को प्राप्त करो। राम के सब व्याख्यान सुनो, धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आपको यह विश्वास हो जायगा। राम ज़िम्मा लेता है कि इस संसार का कोई भी व्यक्ति यदि राम के सारे व्याख्यान सुन लेगा, तो उसके संशय दूर हो जायँगे, उसे अपने ईश्वरत्व में अवश्य विश्वास हो जायगा। पहले अपनी दिव्यता तथा ईश्वरत्व में गहरा विश्वास (पक्का निश्चय) प्राप्त करो। इसे पा लो, फिर उस विधि से, या उन उपायों से, जो बताये जायँगे, आप उस परमेश्वर में अपना केन्द्र जमाओ, वही हो जाओ, अपने आपको शाश्वत और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अनुभव करो। "वही मैं हूँ, वही।" यह अनुभव करो और अपने सभी घरेलू सम्बन्धों तथा इन सब मामलों को इस तरह देखो कि मानो वे एक तसवीर हैं, मानो तुमसे कोई लगाव ही नहीं है। यह विपरीत और प्रकृति के विरुद्ध जान पड़ता है। लोग कहते हैं कि यदि हम इन मामलों में न उलझें, तो कोई उन्नति ही कर नहीं सकते। अरे! आप भूल रहे हो। उन मामलों में फँसते ही आपकी उन्नति रुक जाती है। जब आप लिखते हो, तो लिखना व्यक्तित्वहीन (अकर्तृत्व) भाव से होता है। उस समय आपका अहं-भाव, आपका तुच्छ अहंकार, मिथ्या अहंकार बिलकुल ग़ैरहाज़िर होता है; और अनायास यंत्रवत् काम होता रहता है। यह एक प्रकार से प्रतिक्रिया रूप कर्म है, हाथ अपने आप लिखता जा रहा है। क्यों? क्योंकि आप अपने तुच्छ अहंकार को, स्वार्थी अहं को, उस मामले में नहीं घुसेड़ते। ज्यों ही आप अपने चित्त में विचारने लगोगे, "अहः, मैंने खूब ही लिखा है, मैंने कमाल किया है," त्यों ही आप भूल कर बैठोगे।

इस तरह से हम देखते हैं कि काम केवल तभी होता है,

जब हम तुच्छ स्वार्थी अहंकार से छुटकारा पा जाते हैं। जिस क्षण आप के स्वार्थी अहंकार ने रंग जमाया, उसी क्षण काम बिगड़ा। सर्वोत्तम कर्म वही कर्म होता है, जो अकर्तृत्व-भाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ है इस छोटे व्यक्तिगत, स्वार्थी अहंकार से छुटकारा पाना, जीव भाव की इस मिथ्या कल्पना को दूर करना। सूर्य चमकता है। सूर्य में यह भाव नहीं है कि मैं काम कर रहा हूँ। क्योंकि सूर्य अहंकार (व्यक्तिगत भाव) से शून्य है, इसी से वह इतना मनोहर और चित्ताकर्षक है। नदियाँ बहती हैं। उनके बहने में कोई तुच्छ व्यक्तिगत अहंभाव नहीं है, किन्तु काम हो रहा है। दीपक जलता है, किन्तु व्यक्तिगत अहं-भाव—"मैं महान् हूँ, मैं जल रहा हूँ, मैं प्रकाश कर रहा हूँ"—प्रकाश का कारण नहीं हो सकता। फूल खिलते हैं और चारों ओर मधुर सुगंधि फैलाते हैं, किन्तु उनमें इस भाव का लेश भी नहीं है कि वे बड़े मधुर हैं, वे बड़े रुचिर हैं।

इसी तरह आपका काम स्वार्थमय अहंकार (अहम्मन्यता) के दूषण से सर्वथा मुक्त होना चाहिए। आप अपना काम ठीक नक्षत्रों और सूर्य्य के काम के समान होने दो, अपना काम चन्द्रमा का सा काम होने दो। तभी आपका काम सफल हो सकता है। केवल तभी आप इस संसार में वस्तुतः कुछ कर सकते हो। संसार के नेता, धीसम्पन्न पुरुष यह रहस्य रखते थे, सब तालों में लगनेवाली यह परताली (Master-key) उनके अधिकार में थी। वे अपने को अकर्तृत्व दशा में डालना जानते थे और तभी उनका कार्य इतना फल-फूल सका। यही नियम है। इस भ्रान्त विचार को त्याग दो कि जब तक किसी मामले में आप अपने को आसक्त न कर लोगे, तब तक आपका अभ्युदय कदापि न होगा। ऐसा विश्वास करना आपकी भूल है।

दैवी विधान यह है कि मन तो शान्त, स्थिर और अचञ्चल हो, और शरीर सदा कर्मरत रहे। चित्त तो स्थिति-शास्त्र (स्टेटिक्स, Statics) के नियमाधीन रहे, और देह गति-शास्त्र (डाइनेमिक्स, Dynamics) के नियमाधीन हो। बाह्य शरीर काम करता रहे और भीतरी अपना आप सदा स्थिर रहे, यही दैवी विधान है। स्वाधीन बनो। वस्तुओं को ठीक उसी तरह कोमलता से स्थित रहने दो, जिस तरह दृष्टिगोचर भू-प्रदेश [Landscape] नयनों पर स्थित हो जाता है। दृष्टिगोचर भूप्रदेश नेत्रों पर यद्यपि पूरी तरह, विशालता से, अवस्थान करता है, किन्तु अति कोमलता से। वह नेत्रों पर बोझ नहीं डालता। सम्पूर्ण भूभाग (Landscape) का अवस्थान नेत्रों पर होता है, किन्तु नेत्र स्वाधीन हैं, भार से दबे नहीं हैं। अपने घरेलू मामलों में, अपने पारिवारिक और सांसारिक जीवन में आपकी स्थिति भी ठीक वैसी ही होनी चाहिए। आप इन सब व्यापारों को देखो और निर्लिप्त बने रहो, स्वतंत्र रहो। आपको स्वाधीनता मिल सकती है केवल सच्चे आत्मज्ञान के द्वारा, पूर्ण तत्त्व के अनुभव द्वारा, जिसे वेदान्त कहते हैं। सच्चे आत्मदेव का अनुभव करो, और सारे नक्षत्र तथा तारागण आपकी आज्ञा पालन करेंगे।

Roll on, ye suns and stars, roll on,
Ye motes in dazzling Light of lights,
In me, the Sun of suns, roll on.
O orbs and globes, mere eddies, waves
In me the surging oceans wide
Do rise and fall, vibrate, roll on

O worlds, my planets, spindles turn;
Expose me all your parts and sides,
And dancing, bask in light of life.
Do suns and stars or earths and seas
Revolve the shadows of my dream ?
I move, I turn, I come, I go.

The motion, moved and mover I,
No rest, no motion, mine or thine,
No words can ever me describe.

Twinkle, twinkle, little stars,
Twinkling, winking, beckon, call me.
Answer first, O Lovely stars !

Whither do you sign and call me ?
I'm the sparkle in your eyes,
I'm the life that in you lies.

तात्पर्य:—

सूर्यो और नक्षत्रो, बढ़े चलो, तुम लुढ़कते रहो,
प्रकाशों के चमत्कृतकारी प्रकाश में आगे बढ़ो !
मुझ सूर्यों के सूर्य में, लुढ़कते रहो।
भँवर मात्र ए ग्रहो-मण्डलो और भूगोलो,
तरंगाकुल विशाल समुद्रो लहरोंवत् मुझमें
उठो और गिरो।

आन्दोलित हो, लुढ़कते चलो।
ए लोको, मेरे ग्रहो, धुरों पर घूमो;
अपने सब अंग और पार्श्व मुझे दिखाओ,
और नाचते हुए, जीवन के प्रकाश में तपो।

सूर्यो और नक्षत्रो, भूमियो और समुद्रो !
चक्कर देते रहो मेरे स्वप्न की प्रतिच्छाया को,
मैं चलता हूँ, मैं फिरता हूँ, आता हूँ मैं, जाता हूँ मैं।

गति, गतिमान् और हूँ गतिकारक मैं।
न विश्राम, न गति है मेरी या तेरी।
शब्द कोई मुझे कदापि वर्णन कर नहीं सकते।

चमको, चमको, छोटे तारो।
चमकते हुए, पलकते हुए, संकेत करो, पुकारो मुझे।
उत्तर पहले दो; ऐ सुन्दर तारो !
कहाँ के लिए संकेत तुम्हारा, कहाँ तुम बुलाते हो मुझे ?
तुम्हारे नयनों की प्रभा हूँ मैं,
तुम में है जो जीवन वह मैं ही हूँ।

यह है तुम्हारा सच्चा स्वरूप। तुम वास्तव में जो कुछ हो, वह यह है। यह अनुभव करो और मुक्त हो। यह अनुभव करो और तुम विश्व के स्वामी हो जाते हो। यह अनुभव करो और तुम देखोगे कि तुम्हारे उद्यम के सभी विषय, तुम्हारे सारे व्यापार आप-से-आप, अत्यन्त वांछनीय रूप में तुम्हारे सामने आ खड़े होंगे। तुम देखोगे कि सफलता को तुम्हारी खोज करना पड़ेगी, और तुम सफलता को ढूँढ़ते न फिरोगे। तुम देखोगे कि भीतर के परमेश्वर पर यह विश्वास, भीतर के परमेश्वर की यह अनुभूति, सारे विश्व को तुम्हारा क्षुद्र दास बना देगी, इस संसार की प्रत्येक वस्तु को तुम्हारे अधीन कर देगी। तुम देखोगे कि सफलता और अभ्युदय तुम्हें ढूँढेंगे, और तुम्हें उनको ढूँढ़ना न पड़ेगा। "यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आता, तो मुहम्मद पहाड़ के पास जायगा।" जिस क्षण तुम इन सांसारिक

पदार्थों में सुख ढूँढ़ना छोड़ दोगे और स्वाधीन हो जाओगे, अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करोगे, उसी क्षण तुम्हें मुहम्मद के पास न जाना पड़ेगा, मुहम्मद तुम्हारे पास आवेगा। यही दैवी विधान है। यही रहस्य है, यही गुह्य भेद संसार का शासन कर रहा है। यही सिद्धान्त तुम स्वयं हो। यह अनुभव करो, अपनी स्त्री और बच्चों को यह अनुभव कराओ। खुद स्वाधीन हो और उन्हें स्वाधीन बनाओ। इस प्रकार तुम अंधकूप या कारागार को साक्षात् वैकुण्ठ बना दोगे, तुम अपने घरों में अपने लिए स्वर्ग बनाओगे, तुम अपने अप्रिय झगड़ालू घरों को सुखी घर बना लोगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है! इस अनिवार्य निर्दयी क़ानून से तुम बच नहीं सकते। यही एक रास्ता है, फाटक खोलने का यही एकमात्र मंत्र है; यही एक मास्टर चाबी (Master Key) है, जो संसार के सब खज़ानों को खोल देती है। यदि तुम अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करो, तो तुम मुक्त हो। ऐसा अनुभव करने में दूसरों की सहायता करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव

[ता० १ फरवरी १६०३, रविवार, सन्ध्या-समय]

"क्या कोई विवाहित मनुष्य (गृहस्थ) आत्म-साक्षात्कार की अभिलाषा कर सकता है ?"* यह प्रश्न कुछ समय पहले राम से पूँछा गया था और उसका पूर्ण उत्तर भी उस समय दिया गया था।

राम आज उसी विषय को नहीं छेड़ेगा, किन्तु उसी के समान एक अन्य विषय पर बोलेगा।

उस प्रश्न के उत्तर में कामनाओं के स्वरूप का निरूपण दिया गया था। अर्थात् "कामना क्या वस्तु है; और मनोरथ मनुष्य के स्वभाव पर क्या प्रभाव डालते हैं ? कामनाओं की पूर्ति से क्योंकर सुख और अपूर्ति से क्योंकर दुःख होता है ?" आदि प्रश्नों का विचार किया गया था। यह प्रश्न बहुत बड़ा और जटिल है, और इस पर राम ने बहुत गंभीरता-पूर्वक विचार भी किया है। राम के अनुसंधानों का फल "मनोवेग शास्त्र (Dynamics of mind)"†-नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया जावेगा।

"क्या अपने पुत्र, कलत्र, और सगे सम्बन्धियों में रहनेवाला गृहस्थ अथवा दूसरे शब्दों में एक साधारण सांसारिक मनुष्य

---

*यह विषय गत पृष्ठ ६० के 'निश्चल चित्त' शीर्षक व्याख्यान में वर्णित है।

† मनोवेग शास्त्र नाम का ग्रन्थ 'राम' ने आरंभ ही किया था कि शरीर ने साथ न दिया। इस नाम से दो-चार पृष्ठ पर कुछ नोट लिखने के बाद 'राम' ब्रह्म-लीन हो गये। अतएव अब इस ग्रंथ का केवल नाम रह गया, आकार बनने नहीं पाया।

तत्त्व या आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है ?" यह प्रश्न है।

हम इस प्रश्न के एक अंग पर विचार करेंगे। वेदान्त केवल इतना पूछता है "क्या तलवार आपके शत्रुओं का नाश कर सकती है ?"

यदि इस प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' कहा जा सकता है, तो "क्या कोई सांसारिक गृहस्थ तत्त्व का साक्षात्कार कर सकता है ?" इस प्रश्न के उत्तर में भी 'हाँ' कहा जा सकता है। यह सब केवल उस तलवार अथवा गृहस्थी के बन्धन के उपयोग पर निर्भर है। उसी एक तलवार से हम अपना नाश कर सकते हैं, और उसी से हम बाहरी आक्रमणों से अपने को बचा सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपनी गृहस्थी के बन्धनों और सम्बन्धों के दुरुपयोग से अपना विनाश कर सकता है, या अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है, और अपने भीतर परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। अतः यह प्रश्न भी उसी प्रकार हल होता है।

हमारा टहलना, घूमना, हमारे स्वास्थ्य-सम्बन्धी दैनिक नित्य-कर्म हमारे सुख और आनन्द का कारण हो सकते हैं—वे हमारे लाभ- तथा सुधार का कारण बन सकते हैं, यदि उचित रीति से हम उनका पालन करें। परन्तु उनके दुरुपयोग से वही सैर-सपाटे, क्लेश, अशान्ति एवं व्याधि का कारण बन सकते हैं।

इसी तरह हमारे पारिवारिक सम्बन्ध भी हमें उन्नत और निरोग बन सकते हैं, वही हमारा समूल नाश भी कर सकते हैं।

एक बड़ा सज्जन पुरुष था। उसके पास एक बहुत लुच्चा और बदमाश नौकर था। वह प्रत्येक काम को उल्टा ही किया करता था। अपने मालिक की आज्ञाओं के पालन करने का उसका ढंग बड़ा निराला था। वस्तुतः उसके कार्य करने

की शैली ऐसी थी कि गंभीर-से-गंभीर मनुष्य भी उससे झल्ला उठता। पर वह धर्मात्मा मालिक उस नौकर पर कभी क्रुद्ध न होता, उलटे वह उस दुष्ट के साथ बड़े प्रेम का बर्ताव करता। एक समय उसके एक अतिथि ने उस नौकर के विरुद्ध बहुत-सी शिकायतें कीं। वह उसके कामों से बहुत खिन्न और क्रुद्ध हुआ था, उसने उसके मालिक को उसे निकाल देने को कहा। पर मालिक ने उत्तर दिया—"आपकी सम्मति अत्युत्तम है, और आपने शुभेच्छा-पूर्वक यह सम्मति दी है। मैं जानता हूँ कि आप मेरे शुभ-चिन्तक हैं और मेरे कार्य्यों की वृद्धि चाहते हैं, इसीसे मुझे यह सम्मति देते हैं। पर मैं इस बात को अधिक जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा काम काज खराब हो रहा है। इससे मेरे व्यापार को हानि पहुँच रही है। किन्तु मैं उसे इसीलिए रखता हूँ कि वह इतना अवज्ञाकारी और अविश्वासी है। यह उसका दुष्ट आचरण और खराब स्वभाव है, जिससे वह मुझे इतना प्रिय हो रहा है। वह पापी, दुष्ट और नमकहराम है, इसी से मैं उसे अधिक प्यार करता हूँ।" उसका ऐसा कहना सचमुच बड़ा ही आश्चर्यजनक था।

वह मालिक बोला—दुनिया में जितने लोगों से मेरा वास्ता पड़ा है, उन सबमें से एक यही मनुष्य ऐसा है, जो मेरी आज्ञाओं का उल्लंघन करता है, जो मेरे लिए अप्रिय, अकीर्तिकर और हानिकर काम करता है; और जितनों से मेरा वास्ता पड़ा, वे सबके सब इतने कोमल स्वभाव, इतने अच्छे और इतने प्रेमी हैं कि वह कभी मुझे रुष्ट करने का साहस नहीं करते। इसलिए यह नौकर असाधारण है। यह एक तरह का मुगदर (Dumb-bell) है, जो मेरी आध्यात्मिक शिक्षा का उत्तम साधन बन रहा है। जिस प्रकार बहुत

से लोग अपना शारीरिक वल वढ़ाने के लिए मुगदर आदि फेरते हैं, उसी प्रकार यह नौकर मेरे आत्मिक वल की वृद्धि-निमित्त मुगदर का काम देता है, और इससे मेरा आध्यात्मिक शरीर पुष्टि पाता है। इस नौकर द्वारा मुझे आध्यात्मिक वल प्राप्त होता है। संक्षेप में इस नौकर के साथ मुझे एक प्रकार की कुश्ती लड़नी पड़ती है, जिससे मुझे शक्ति प्राप्त होती है।

अतः राम इस तथ्य को आपके सामने उपस्थित करता है, और इसकी ओर आपका ध्यान इसलिए दिलाता है कि यदि आपको गृहस्थी-वन्धन आपकी उन्नति के मार्ग में विघ्न-रूप अथवा अड़चन-पत्थर मालूम पड़ें, तो भी आपको खिन्न होने की आवश्यकता नहीं। ठीक उसी धर्मात्मा मालिक का अनुकरण करो। भेद-भावों और कठिनाइयों को शक्ति और वल का नवीन स्रोत वना लो।

ग्रीस देश में सुक़रात (Socrates) नाम का एक महान् तत्त्ववेत्ता हुआ है। उसकी स्त्री दुनिया-भर में वड़ी कलह-कारिणी थी। एक दिन सुक़रात वड़ी गंभीर वृत्ति से किसी तत्त्व का चिन्तन कर रहा था। उसी समय उसकी स्त्री अपनी आदत के अनुसार उसके पास आई और अपशब्द वोलने लगी। उसने सुक़रात को लानतान की, और उसका अपमान किया, अनेक नामों से उसे पुकारा। उसकी वृत्ति अपनी ओर खींचने का आग्रह किया। अपनी टहल उससे करवाना चाही और 'यह कर', 'वह कर' की आज्ञा उसे देने लगी। पर सुक़रात अपने तत्त्व-चिन्तन में ही लगा रहा। किसी भी समस्या को वह तव तक नहीं छोड़ता था, जव तक वह हल न हो ले। यही उसकी परिपाटी थी।

स्त्री ने गरज-गरज कर तूफ़ान मचा दिया, परन्तु सुक़रात ने जव भी न सुना, तव गुस्से में भरकर स्त्री ने गन्दे पानी से

भरा बरतन बेचारे के सर पर उलट दिया। पर क्या सुकरात उस समय क्षुब्ध या क्रुद्ध हुआ? किञ्चिन्मात्र भी नहीं। वह मुस्कराया और हँसते हुए बोला, "आज यह समस्या (लोकोक्ति) ठीक सिद्ध हुई कि oft-times when it roars, it rains प्रायः मेघ जब गरजता है, तब बरसता है।"

पहले जब कभी वह गरजी, वर्षा नहीं हुई। किन्तु आज जब उसने गरज-गरज कर तूफ़ान मचाया, तो पानी भी बरस पड़ा। उपर्युक्त व्यंग्य वचन के बाद सुक़रात फिर अपने तत्त्व-चिन्तन में मग्न हो गया।

इससे स्पष्ट है कि अपने स्वभाव को वश में करने की शक्ति से मनुष्य को कभी निराश न होना चाहिए। यदि एक मनुष्य (सुक़रात) ने अपने स्वभाव को इतना वश में कर लिया, तो फिर सब कोई कर सकता है। आज भी क्या दुनिया में ऐसे लोग नहीं हैं जिनकी आदत और स्वभाव उनके अपने अधीन हों? अवश्य ऐसे मनुष्य हैं, और अभ्यास से आप भी ऐसा कर सकते हैं।

यदि आप चाहो तो तत्त्व-साक्षात्कार और परमात्मा से एकता, अथवा सब के साथ अभेदता, समस्त विश्व के साथ अपनी समता एवं इस आत्म-साक्षात्कार का मार्ग अपने गृहस्थी सम्बन्धों के द्वारा ही विशेष सुगम बनाये जा सकते हैं।

जगत् के प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य तथा लक्ष्य, उसके आध्यात्मिक विकास का परिणाम यही है कि प्रत्येक प्राणी अपने अन्तरात्मा का अनुभव करे, और यह परिच्छिन्न आत्मा जब तक ईश्वर के साथ अभेदता या परमात्मा से एकता का साक्षात्कार न कर ले, तब तक निजी अनुभवों का उपार्जन करता रहे; अन्यथा तलवार की धार पर तो सबको उसका अनुभव करना ही होगा। यही उद्देश्य है। यदि साधारण मनुष्य को गृहस्थी

के सम्बन्ध विघ्नरूप जान पड़ते हैं, तो (इसके विपरीत) राम कहता है कि पुत्र और कलत्र आपके सहायक बन सकते हैं।

पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है। पृथ्वी को अवश्य परिक्रमा करना है। चन्द्रमा पृथ्वी से चिमटना चाहता है। अब बताओ, पृथ्वी बेचारी क्या करे? चन्द्रमा और उपग्रहों को साथ लेकर पृथ्वी सूर्य्य की प्रदक्षिणा कर सकती है।

इसी प्रकार से, हे पुरुषो वा स्त्रियो! यदि आपने सूर्य्यों के सूर्य्य की ओर खिंच जाना निश्चय किया है, तो जिस प्रकार पृथ्वी चन्द्रमा को साथ-साथ रखती है, उसी प्रकार आप भी अपने साथी को साथ रक्खो, और तब अपने साथी को लेकर सूर्य्यों के सूर्य्य तथा प्रकाशों के प्रकाश के इर्द-गिर्द पृथ्वीवत् परिक्रमा करते जाओ। ऐसा करने से अकेले अपने इस तुच्छ शरीर को ही उस 'सूर्य्यों के सूर्य्य' की प्रभा, कान्ति एवं शोभा का भागी बनाने की जगह आप अपने साथ अपने साथियों (पत्नी इत्यादि) को भी उसी सूर्य्य की प्रभा, कान्ति और शोभा का उपभोग करा सकते हो। इस प्रकार अकेले एक व्यक्ति की जगह आप अनेक जीवों को अपने साथ खींच ले जा सकते हो। केवल एक शरीर द्वारा काम करने के बदले आप अनेक शरीरों द्वारा कार्य्य कर सकते हो। ये सभी आपके शरीर हैं। जिस प्रकार एक शरीर आपका है, उसी प्रकार ये सब शरीर ईश्वर के हो सकते हैं, और उसका गुणानुवाद कर सकते हैं। जैसे जब कोई मनुष्य किसी स्थान पर जाता है और अपने साथ एक ही देह (शरीर) ले जाता है, तो क्या वह अपने हाथ, पैर, आँख, कान, नाक आदि को पीछे छोड़ जाता है, ये सब उसके साथ ही जाते हैं; उसी प्रकार वेदान्त कहता है कि जब आप स्वर्गीय ज्ञान प्राप्त करने जाते हो, जब आप सत्य का अनुभव करने जाते हो, तब आप अपने आधे शरीर-मात्र (अर्द्धांग) को स्वर्गीय ज्ञान की

ओर ले जाने के स्थान पर सम्पूर्ण शरीर को अपने साथ ले जा सकते हो, आप अपने पुत्र-कलत्र को, मानो अपने दिल-दिमाग और हाथ-पैरों को, साथ ले जा सकते हो।

इस तरह परमात्मा के साथ अभेदता और एकता अनुभव करने के पूर्व आप अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ एकता अनुभव करो। जिस मनुष्य ने अपनी अर्द्धांगिनी और पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव नहीं की, वह सबके साथ अपनी एकता का अनुभव कैसे कर सकता है ?

वेदान्त की दृष्टि में स्वाभाविक मार्ग तो यही है कि जिसके साथ आपका सम्बन्ध हो, उसी के साथ एकता अनुभव करना आरंभ करो। जो आपके प्रियतम हों, उन्हीं में आप अपने को लीन कर दो। अपने हित को उनके हित में लीन कर दो। सब शरीरों को मिलाकर एक कर दो। सबों को मिलकर एक धारा-प्रवाह बन जाने दो, और फिर अनुभव-पर-अनुभव प्राप्त करते जाओ। तदनन्तर दूसरे परिवारों को लो और क्रमशः उन्नति करते हुए सब परिवारों को अपना शरीर बना लो। जब आप सब व्यक्तियों को अपना शरीर समझ लोगे, तब आप परमात्मा के साथ एकता अनुभव कर सकोगे, तब आप प्रत्येक को अपने साथ ले जा सकोगे।

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक (बाइबिल) में शिष्य सेंट जोह्न (Saint John) के सम्बन्ध में हम पढ़ते हैं कि हज़रत ईसा उससे प्रेम करते थे। ईसा समस्त संसार से प्रेम करते थे। "ईसा ने शिष्य से प्रेम किया।" इस कथन को थोड़ा बदल देने से यों हो जाता है कि शिष्य ने ईसा से प्रेम किया। इसके द्वारा ईसाई सिद्धान्त (ईसा द्वारा मुक्ति) का मूलसूत्र मिल जाता है।

"आघात-प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी होते

हैं।" (Action and reaction are equal and opposite)। यदि ईसा अपने शिष्य से प्रेम करता था, तो शिष्य ने भी ईसा से अवश्य प्रेम किया होगा। जोह्न को यदि ईसा के प्रति भक्ति न होती, तो "आघात और प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी" होनेवाले अनिवार्य्य नियम के अनुसार ईसा सदा उससे प्रेम नहीं कर सकता था। ईसा तत्त्वदर्शी था। वह जगत्-पिता और 'सर्व'* से अभिन्न था। वह एक ऐसा मनुष्य था, जिसने अपने मन, बुद्धि और अहंकार एवं व्यक्तित्व को परमात्मा में लीन कर दिया था।

जोह्न, पीटर, पाल अथवा अन्य कोई भी शिष्य ईसा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ कर, ईसा की भक्ति कर के (क्योंकि भक्ति और प्रेम द्वारा ही सम्बन्ध होता है) एवं उसके साथ एकता अनुभव करके स्वभावतः ही ईसा का ईशत्व भोगता है।

कल्पना करो कि हमारे पास एक पदार्थ है, जिसमें बिजली भरी है। यदि इस विद्युन्मय पदार्थ के साथ कोई दूसरा पदार्थ जोड़ दिया जाय, तो इस विद्युन्मय (electrified) पदार्थ से बिजली उस विद्युत-हीन पदार्थ में सहज ही चली जायगी।

इसी प्रकार उस समय के शिष्यों को ईसा की भक्ति के द्वारा ईसा की प्रकृति प्राप्त होना अवश्य है। और इस प्रकार यदि ईसा अपना उद्धार करता है, तो उसकी भक्ति के द्वारा दूसरे का उद्धार अवश्य होता है।

वेदान्त के अनुसार तब तक कोई प्राणी ईश्वरानुभव नहीं कर सकता, जब तक उसका अपना आप पूर्णतया विश्व-प्रेम में परिणत न हो, और जब तक समस्त विश्व को ही वह अपना शरीर न समझ ले।

---

*सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः। [गीता, ११-४०]

आपको याद होगा कि आत्मानुभव वा तत्त्व-साक्षात्कार की यह पहली सीढ़ी है। पहले समस्त जगत् हो जाना है, फिर दूसरी सीढ़ी उस (जगत्रूप) से ऊपर उठना है। एक दिन राम ने अपने व्याख्यान में दो प्रकार के अध्यासों का वर्णन किया था—एक स्वरूपाध्यास और दूसरा संसर्गाध्यास।

स्वरूपाध्यास के कारण नाना व्यक्तित्व एवं उनमें परस्पर भेद-भाव की कल्पना उत्पन्न हो आती है, और इसी से वह अन्धापन व अन्धकार उत्पन्न हो आता है जिसके कारण मनुष्य प्रत्येक में ईश्वर को नहीं देख पाता। यही उस मानसिक व्याधि का हेतु है, जो आपको विश्व के सब पदार्थों में एकत्व का अनुभव करने नहीं देती। संसर्गाध्यास बाह्य विषमता है, नाम-रूप का भ्रम है।

इस प्रकार सांसारिक मनुष्य को इन दोनों प्रकार के अध्यासों को दूर करना होगा। सबसे पहले तो समस्त वस्तुओं (व्यक्तियों) में एकता का अनुभव करना आवश्यक है। जिस मनुष्य को इन दोनों प्रकार के अध्यासों को जीतना और दूर करना होता है, उसे पहले अपने को ही समस्त विश्व के प्रत्येक पदार्थ का आत्मा अनुभव करना होता है। वह अपनी आत्मा को ही जगत् के सारे मनुष्यवर्ग, सारे वनस्पतिवर्ग, समस्त वृक्ष, सरिता, कीट, पतंग आदि की आत्मा समझता और अनुभव करता है। अनुभव की यह एक अवस्था है। ऐसे मनुष्य को आरंभिक अवस्था में अपने पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव करने से सहायता मिलती है। जब वह सारे संसार के साथ अपनी एकता (अभेदता) अनुभव करता है, तो यह अनुभव की पहली अवस्था है। दूसरी अवस्था वह है, जब कि सभी बाह्य नाम-रूप और आकार अन्तर्द्धान हो जाते हैं, जहाँ यह माया समूल नष्ट हो जाती है, और तब सारे संसार का,

जो शरीर रूप था, बाध किया जाता है, और वह आत्मा में विलीन हो जाता है।

आरंभ में हमको समस्त विश्व अपना शरीर अनुभव करना होता है। तब जिस विश्व को अपना शरीर अनुभव किया होता है, उस विश्व का भी बाध किया जाता है, अर्थात् वह भी रद्द किया जाता है, और वह उस सत्य स्वरूप आत्मा में जो मेरा अपना आप है, वह विलीन हो जाता है।

आत्मानुभवी मनुष्य पहले समस्त जगत् बनता है, और तब जगत् का उद्धार करता है; इस प्रकार वह समस्त विश्व का उद्धारक (Saviour) बन जाता है। अतः तुम अपने उद्धारक आप हो, ऐसा वेदान्त का तात्पर्य्य है।

"ईसा द्वारा हम ईश्वरानुभव करते हैं" इस कथन का अर्थ यह है कि सर्वजगदात्मैक दृष्टि की जो अवस्था है, उस अवस्था द्वारा ही, उस 'ईसा' की अवस्था को पार करने पर ही हम वर्णनातीत, अक्षर ब्रह्म में लीन हो सकते हैं, गोता लगा सकते हैं। अतः जो शाश्वत है, जिसके वर्णन में वाचा कुण्ठित होती है, जो वाणी मात्र के परे है, उस तत्त्व के अनुभव के पूर्व उस सत्यस्वरूप को प्राप्त करने से पहले—जहाँ नाम-रूप, भेद-भाव का अस्तित्व नहीं, उस परमात्म-अवस्था में पहुँचने से पहले, आपको वह अवस्था प्राप्त करनी होगी, जहाँ अपना सत्य स्वरूप ही आपको सब नाम रूपों में ओत-प्रोत और व्याप्त दीखता है; यही अवस्था 'ईसा' की अवस्था है। इस प्रकार ईसा की अवस्था को लाँघकर आप ईश्वर तक पहुँच सकते हैं, और यह अवस्था क्रमशः प्रत्येक के साथ ऐक्य बुद्धि करने से प्राप्त होती है। जिन प्रारम्भिक पाठों के द्वारा इसकी व्यावहारिक शिक्षा मिलती है, उनका आरंभ तब होता है, जब आप अपनी माता, पिता, पत्नी, बालकों और स्नेहियों के साथ

अपनी एकता अनुभव करने लगते हो, और फिर धीरे-धीरे समस्त देश के साथ एवं समस्त जगत् तथा विश्व के साथ उत्तरोत्तर एकता अनुभव करते हो। यह बहुत कठिन काम मालूम होता है, पर वास्तव में यह बहुत कठिन है नहीं। आरम्भ करना कठिन है, पर कुछ ही काल बाद प्रगति (progress) तीव्र हो जाती है। जब एक वार कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ अपनी अभेदता अनुभव कर लेता है, किसी दूसरे में मानों विलीन हो जाता है, तब वह प्रत्येक के साथ अपनी एकता अनुभव करने लगता है। अनुभव से यहाँ यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति के अटल नियमानुसार जगत् में जो कुछ प्रीति है, वह बलपूर्वक हमको ऐसी स्थिति में ले जाती है कि जहाँ हमारा प्रेम-पात्र बाह्य जगत् का विषय नहीं रहता, जहाँ हमारा प्रेम बाह्य रंग-रूप-आकृति या लिंगादि चिह्नों पर नहीं टिकता, वरन् जहाँ प्रेम अधिकाधिक अन्तरात्मा, सर्वाधार सत्ता पर ही ठहरता है।

प्रत्येक मनुष्य इस कथन की सच्चाई के विषय में निज अनुभव से कुछ-न-कुछ कह सकता है। जैसे-जैसे हम वयोवृद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे हम देखते हैं कि हमारा प्रेम-पात्र अधिकाधिक विशुद्ध होता जाता है—हमारी प्रीति का केन्द्र विशेष सरल, विशेष इन्द्रियातीत और विशेष सूक्ष्म होता जाता है।

क्या जगत् के सभी मनुष्यों को अपने जीवन में इस रहस्य का थोड़ा-बहुत अनुभव नहीं हुआ है? एक समय आता है जब कि हम अपने प्रेम-पात्र के मुँह के काट (वजा-क़ता) एवं चेहरे के भद्देपन पर अथवा त्वचा की झुर्रियों पर तथा बाह्य चिह्नों व विकारों पर रंचक-मात्र भी ध्यान नहीं देते। तब हम केवल अन्तरात्मा को, भीतरी प्रीति को, अन्तर्हृदय को अर्थात् भीतरी पवित्रता को तथा भीतरी प्रेम-पात्र को प्यार

करते हैं ! क्या इसको सबने देखा और अनुभव नहीं किया है ? क्या सबने यह नहीं देखा है कि तब हम अपने प्रेम-पात्र के बाह्य दोषों, शारीरिक विकारों को देखते तक नहीं ? हम केवल सौन्दर्य्य देखते हैं, कुरूपता की ओर से अन्धे हुए होते हैं। यदि उस प्रेम में, अथवा उस व्यक्ति में, हमारे उस प्रेम-पात्र में, वास्तविक प्रीति होती है, तो हमारा हृदय द्रवित हो जाता है, उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। तदनन्तर ऐसा समय आता है, जब हमारे प्रेम का केन्द्र इन बाह्य एवं स्थूल रंग-रूप, आकार और चिह्न से अधिक सूक्ष्म अर्थात् दूर और विशेष विशुद्ध होता है। बस, यहाँ पहुँचते ही हम एक सीढ़ी ऊपर आ जाते हैं। पहले से ऊँचे उठ आते हैं। यहाँ हम बाह्य चिह्नों और स्थूल शरीरों से उठकर सूक्ष्म मनोवृत्तियों में पहुँच जाते हैं।

अब इससे परे दूसरी और उच्चतर स्थिति है, जहाँ हमारे प्रेम का केन्द्र, भीतरी भाव, मनोवृत्ति या चित्त (अन्तःकरण) की शुद्धि नहीं, और न अपने प्रेम-पात्र का दर्शन होता है, बल्कि जहाँ हम परमात्मा या अन्तर्यामी को ही प्यार करते हैं, तथा अपने शुद्ध स्वरूप अन्तरात्मा का दर्शन करते हैं। बस, एक बार जिस समय यह स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिस समय जगत् के सारे पदार्थ चित्र या चिह्न-मात्र बन जाते हैं; जिस समय हम पदार्थों को पदार्थ-मात्र से नहीं देखते, बल्कि उनके पीछे उनके आधार रूप निर्विकार आत्मा को देखते हैं; जिस समय हमारी दृष्टि इस वा उस पदार्थ पर पात होते ही उसमें हमारा हृदय-नेत्र शुद्ध स्वरूप परमात्मा को देखता है; जिस समय ऐसी स्थिति प्राप्त होती है; तब समस्त विश्व के साथ एकता, अभेदता अनुभव करना मनुष्य के लिए सुगम हो जाता है। यही 'क्राइस्ट की स्थिति' अथवा ईसा-दशा है। इस

क्राइस्ट की अवस्था में कुछ काल रहने के बाद दूसरी इससे भी उच्चतर स्थिति आती है। तब हम परमात्मा में पूर्णतया लीन हो जाते हैं। जब हम इस तरह समाधि, संपूर्ण एकाग्र, निमग्नता और लय की अवस्था में होते हैं, तो वह परमात्म-अवस्था है। इसको हम निर्वाण या समाधि अवस्था कहते हैं, ऐसी अवस्था में अन्तःकरण में न कोई स्फुरण होता है, न क्षोभ और न विरोध।

उस स्थिति में क्रमशः पहुँचने के लिए हम अपने सांसारिक कुटुम्बियों और सम्बन्धियों से किस प्रकार सहायता प्राप्त कर सकते हैं?

भारतवर्ष में ऐसे लोग हैं, जो रोमन कैथोलिकों की तरह ईश्वरोपासना करते हैं, जो प्रतिमाओं के द्वारा ईश्वर-पूजन करते हैं। वे ईश्वर, राम और कृष्ण की प्रतिमा को (अधिकतर) पूजते हैं। राम और कृष्ण भारत के ईसा मसीह हैं।

भारतवर्ष में एक बार एक वृद्धा स्त्री ने एक महात्मा के पास जाकर पूछा—"यदि उचित हो, तो मैं अपनी गृहस्थी और कुटुम्ब को त्याग कर कृष्ण की जन्म-भूमि वृन्दावन में निवास करूँ?" अपने कौटुम्बिक बन्धनों को छोड़कर और प्रत्येक से अपना सम्बन्ध तोड़कर उस परम रमणीय नगर—हिन्दुस्तान के जेरूसलम—वृन्दावन का सेवन करना क्या उसके लिए उचित था?

उस स्त्री के साथ उसका पौत्र शिशु भी था। महात्मा ने उत्तर दिया—"ज़रा ध्यान दो, ज़रा विचारो तो, इस छोटे शिशु के नेत्रों में होकर तुम्हारी ओर कौन देख रहा है? इस बालक के शरीर में कौन सी शक्ति, कौन सी चेतना तथा कौन सी प्रभुता है, जो इसके रोम-रोम से तुम्हारी ओर देख रही है?" स्त्री ने उत्तर दिया—"यह तो अवश्य ईश्वर ही होगा।

इस प्यारे छोटे-से शिशु के चित्त में लोभ या दुष्टता का लेश-मात्र भी नहीं है। यह प्यारा शिशु बिल्कुल निष्पाप और पवित्र है। जब यह रोता है, तो इसके रुदन में परमात्मा का स्वर होता है, और कुछ नहीं।" फिर महात्मा ने कहा—"जब तुम वृन्दावन जाओगी, तब भारत के उस जेरूसलम में तुम्हें कृष्ण की एक प्रतिमा से लगन लगानी होगी, भगवान् की उस प्रतिमा में तुम्हें भगवान् को पूजना होगा। जिस प्रतिमा का तुम्हें भारत के जेरूसलम रूपी वृन्दावन में दर्शन होगा, क्या इस बालक की देह उतनी ही अच्छी कृष्ण की मूर्ति नहीं हो सकती है ?" वृद्धा कुछ चकित हो गई, कुछ विचार तथा मनन करने के बाद वह इस परिणाम पर पहुंची कि बिना किसी हानि के इस बालक को कृष्ण का अवतार मानकर मैं उसके शरीर द्वारा ईश्वर की पूजा कर सकती हूँ, क्योंकि ईश्वर ही वह है, जो उस बालक के नेत्रों में से देखता है, ईश्वर ही वह है, जो उस बालक को शक्ति, बल देता है, ईश्वर ही वह है, जो बालक के कान में से सुनता है, ईश्वर ही वह है, जो बालक के केशों को बढ़ाता है, ईश्वर ही वह है, जो उस बालक के शरीर के प्रत्येक रोम में से व्यापार करता है, यह बालक स्वयं प्रभुरूप है।

महात्मा के उपदेशानुसार वृद्धा को अब यह अनिवार्य हो गया कि वह इस बालक को अपना पौत्र न समझे, किसी रीति से अपना सम्बन्धी न मानें बल्कि ईश्वर समझे। और इस प्रकार उसके साथ सारे पारिवारिक तथा सांसारिक सम्बन्ध तोड़ डाले, केवल उसके साथ ईश्वरीय ईश्वरत्व का सम्बन्ध बनाये। यही त्याग की विधि है।

त्याग का अर्थ वैराग्य या वानप्रस्थपना नहीं है। त्याग का अर्थ प्रत्येक वस्तु को पवित्र बनाना है। बालक-त्याग का अर्थ

बालक या पौत्र के साथ सभी सम्बन्धों का तोड़ना नहीं, बल्कि उसे ईश्वर समझना है। प्रत्येक वस्तु में परमात्मदर्शन करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ १॥
(ईशावास्योपनिषद्)

भावार्थः—जो कुछ दीखे जगत में, सब ईश्वर से ढाँप।
करो चैन इस त्याग से, धन-लालच से काँप॥ १॥

वेदान्त आपको पति, पत्नी तथा अन्य सम्बन्धियों को त्यागने को कहता है। वेदान्त कहता है कि पत्नी से पत्नी का नाता तोड़ दो, उससे पत्नी-भाव त्याग दो, किन्तु उसमें अपना शुद्ध आत्मा, उसे परमात्मा स्वरूप देखो। शत्रुओं को शत्रु रूप से त्याग दो, उनमें ईश्वर देखो; मित्रों को मित्र रूप से त्याग दो, और उनमें ईश्वरत्व या ब्रह्मत्व का अनुभव करो।

स्वार्थ-पूर्ण व्यक्तित्व के सभी बन्धनों का त्याग करो। प्रत्येक प्राणी और पदार्थ में ईश्वरत्व का अनुभव करो, सबमें विभु का दर्शन करो। प्रत्येक हिन्दू दम्पति (स्त्री-पुरुष) को धर्म-शास्त्र यों ही जीवन-यापन की आज्ञा देता है। धर्म-शास्त्र के नियमानुसार, इसको राम अपने गृहस्थ-आश्रम में व्यवहार में लाता था। पत्नी नित्य प्रातःकाल सवेरे जागती थी। और जब राम ध्यान में लीन होता, जब राम परमात्मा का अनुभव और साक्षात्कार करता, जब वह परमात्मा में निमग्न होता, या जब वह शरीर और मन के परे होता, जब वह मधुर अमृतत्व-सुधा का पान करता होता, तब उसकी पत्नी निकट आती, और जिस प्रकार रोमन कैथोलिक अपनी मूर्तियों की पूजा करते हैं, उसी प्रकार देह विस्मरण कर उसकी पत्नी राम पर दृष्टि डालती। यहाँ जैसे राम अपने शरीर

को भूल जाता था, इस भौतिकता के परे जा पहुँचता है, और ईश्वर में लीन हो जाता था, वैसे ही पत्नी राम में ईश्वर और उसकी विभूति का दर्शन करती, उसके सिवा कुछ न देखती। इस प्रकार राम के शरीर से कुछ दूर बैठकर वह राम के ललाट पर अपनी दृष्टि जमाती। अधिक उन्नत न होने के कारण वह राम के शरीर का ध्यान करती, और धीरे धीरे 'ॐ' का उच्चारण करती हुई अपने ध्यान में राम की प्रतिमा को ऐसे जोर से रखती कि अन्य सब विचार निर्मूल हो जाते, और वह अपनी देह की सुध भी नितान्त भूल जाती। वह अपने आपको राम के शरीर में निमग्न, परिणत हुई अनुभव करती। अच्छा, राम के आत्मा के विषय में वह क्या देखती? उसे स्पष्ट ऐसा प्रतीत और अनुभव होता कि उसका आत्मा राम का आत्मा है। वह यही अनुभव करती कि राम समाधिस्थ और ब्रह्माकार वृत्ति में लीन नहीं, वरन् मैं ही ब्रह्माकार वृत्ति में निमग्न हूँ। राम का ध्यान उसका ध्यान होता, और वह समस्त विश्व के साथ तादात्म्य अनुभव करती, उस समय उसे यह अनुभव होता कि मैं ही सारे संसार की सार और आत्मा हूँ। इस रीति से मानो वह राम की सहायक और राम उसका सहायक होता था। अब यदि आप पूछें कि स्त्री किस प्रकार सहायक हो सकती है? देखो, जब स्त्री अपने पति को ईश्वर समझती है, जब ऐसे विचार और ऐसे विचारों के प्रवाह उसके पति को ईश्वर बनाने लगते हैं, तब क्या उसकी मानसिक शक्ति और सामर्थ्य, जो इस ओर प्रवाहित है, उसके पति को साक्षात् ईश्वर नहीं बना देगी? क्या इस रीति से पति को सहायता न मिलेगी कि वह अपने शुद्ध आत्मा को परमात्मा अनुभव कर सके? अवश्य मिलेगी।

सभी ईसाई वैज्ञानिक विद्वान अपने अनुभव से जानते हैं कि हम जैसा चाहें, वैसा ही अनुभव हम किसी भी मनुष्य को करा सकते हैं।

कल्पना करो कि यहाँ एक स्त्री (पत्नी) है, जो सदा ऐसे दिव्य विचार भेजती रहती है, जो सदा ऐसा विचार करती है कि "मेरा पति परमेश्वर है।" उसके ये विचार आत्म-साक्षात्कार करने में पति के सहायक बनते हैं। इसी प्रकार जब पति परमात्मा के साथ अपनी एकता अनुभव कर लेता है, तो पत्नी को सहायता मिलती है। अहा! कैसा आध्यात्मिक विवाह है! अहा! कैसा उत्तम मिलाप है!! दोनों परस्पर सहायता करते और सहायता पाते हैं। ऐसे आध्यात्मिक मिलाप पर आधारित विवाह और प्रीति जगत् में अत्यन्त सुखमय होती है। केवल मुख के वर्ण पर, मुखरेखा पर, आकार पर या शारीरिक लावण्य पर आसक्ति के कारण से होनेवाले वैवाहिक सम्बन्ध अन्त में बड़े हानिकारक और बड़े दुःखदायक होते हैं। ऐसे विवाह हृदय-वेदना, शोक-चिन्ता और अन्ततः दुःख उत्पन्न करते हैं।

जिस विवाह में शारीरिक सुन्दरता एवं मुँह के रूप-रंग की कोई गिनती नहीं, अपितु जो अन्तरात्मा को ही देखता है, और जो केवल आध्यात्मिक मिलापजन्य है, वही विवाह निरापद (आपद्-भय-मुक्त) और चिर-स्थायी होता है। केवल ऐसे ही विवाह सुख एवं आनन्द देनेवाले हो सकते हैं।

एक बार एक स्त्री ने महात्मा के पास जाकर पूछाः—"महाराज! कुछ मास हुए मेरा पति मर गया है। बतलाइये उसके उद्धार के लिए मैं क्या करूँ?" एक दूसरे सज्जन आकर बोले कि "मेरा इकलौता पुत्र मर गया है। उसका वियोग असह्य है; और इसीलिए मैं आत्मघात करने जा रहा हूँ।" तीसरे ने

कहा—"मेरी स्त्री सदा के लिए मुझ से बिछुड़ गई है, अब मैं जीना व्यर्थ समझता हूँ।" महात्मा ने इन सबको क्या उत्तर दिया?

वह स्त्री बहुत ही निराश थी और अपने पति का उद्धार करने के लिए भी अतीव उत्सुक थी। अतः महात्मा ने कहा—"तुम अपने पति का उद्धार कर सकती हो, तुम्हें हताश होने की आवश्यकता नहीं। तुम मेरे उपदेशानुसार चल सकती हो। प्रतिदिन जब तुम्हारे हृदय में निराशा उत्पन्न होने लगे, अथवा जिस समय तुमको अपने पतिदेव का ध्यान उत्पन्न हो आवे, उसी समय तुम झट पट बैठ जाओ, अपनी आँखें बन्द कर लो, और अपने मन में पति के शरीर की कल्पना करो। तुम जानती हो कि मनुष्य की प्रिय वस्तु उसके ध्यान में तुरन्त उपस्थित हो आती है। जब वह चित्र या उसका शरीर तुम्हारे मन के सामने आ जावे, तब तुम जरा भी चिन्तित और दुःखित न होना, जरा भी रोना-धोना नहीं। रो-रो कर आँसू बहाने से तुम्हारा पति पृथ्वी की ममता में पड़ जायगा, इस प्रकार तुम उसे संसार के मोह-बन्धन में बाँध दोगी, और तुम्हारा यह कृत्य नीच और बिल्कुल उल्टा हो जायगा। तुम्हें उसकी अवनति का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। तुम अपने पति के परलोक का चिन्तन कर सकती हो; तुम उन्हें मृतक नहीं समझ सकती हो, (क्योंकि नेत्र बन्द करने से तुम्हारे पति का चित्र तुम्हें स्पष्टतया दीखता है), मानों वह जीवित है। जब वह चित्र उपस्थित हो जाय, तब बारंबार यही भावना करो, यही निश्चय करो, यही अनुभव करो कि 'वह ईश्वर है।' उससे ऐसा कहो, समझाओ, उपदेश दो, बारंबार कहो, उसके प्रति यही विचार प्रवाहित करो कि 'तुम ईश्वर हो, प्रभू हो, जगदीश हो; तुम्हारे चित्र में, तुम्हारे शरीर में, तुम्हारी मूर्ति में परमात्मा ही मुझे भासित हो रहा है।'"

"जिस प्रकार जब हम टेलीफ़ोन-यन्त्र के पास जाते हैं, और उससे कान लगाते हैं, तब हम कुछ सुनते हैं, उस समय हमें जो कुछ आवाज सुनाई देती है, वह हम जानते हैं कि उस लोहे के यन्त्र की नहीं, वरन् उस द्रव्य के पीछे या यन्त्र की दूसरी ओर पर खड़े अपने मित्र की होती है। इसी प्रकार जब तुम अपने सामने अपने स्वर्गीय पति के चित्र को देखो, तो यह निश्चय करो कि उस चित्र के पीछे (अन्तर्गत) परमात्मा खड़ा है। उसे सम्बोधन कर कहो, 'तुम प्रभु हो, परमेश्वर हो।' इसी रीति से तुम अपने स्वर्गीय पति का उद्धार कर सकती हो।"

जब हम अपने परलोकगत सम्बन्धियों का उद्धार कर सकते हैं, उनकी उन्नति और सहायता कर सकते हैं, तो उसी विधि से निस्सन्देह हम अपने जीवित मित्रों का भी उद्धार, उन्नति और सहायता कर सकते हैं।

जब पति-पत्नी अपने जीवन को इस प्रकार व्यतीत करते हैं, तब उनका मिलाप (संयोग) केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन और एक दूसरे के सुख का कारण हो जाता है। कदाचित् तुम कहो कि हर जगह पति मात्र अपनी स्त्री के सुख को बढ़ाना चाहता है; जिससे उसे सुख हो, वह सब कुछ उसके लिए प्रस्तुत करना चाहता है। परन्तु लोग अज्ञान के कारण समझते हैं कि हमने ठीक राह पकड़ी है। वे समझते हैं कि विषय-तृष्णा को पूरी करना और इस प्रकार लोगों को सुखी बनाना ही उपयुक्त मार्ग है; पर ऐसी बात नहीं है। इन तरीक़ों से तुम अपने को और दूसरों को केवल नीचे गिराते हो। प्रकृति का नियम है कि जो मुझे सुखी करता है, वह तुम्हें अवश्य सुखी बनायगा। जो मेरे लिए अच्छा है, वह तुम्हारे लिए भी अच्छा है। यदि मैं आगे बढ़ता हूँ, तो तुम भी आगे बढ़ोगे ही, मेरा उत्कर्ष तुम्हारा उत्कर्ष है। बिना सारे संसार

को बीमार डाले मैं स्वयं बीमार नहीं पड़ सकता। अपने शरीर को स्वस्थ रखने से मैं समस्त विश्व को स्वस्थ रखता हूँ। आघात और प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी होते हैं। Action and Reaction are equal and opposite.

यदि मैं तुमको वास्तव में सुखी रखता हूँ, तो मुझे भी सुखी अवश्य होना चाहिए। किन्तु लोग समझते हैं कि किसी मनुष्य की रुचि के अनुसार कार्य्य करने से उसे सुख मिलता है। पर ऐसा नहीं है। उलटे इससे निराशा और घृणा उत्पन्न होती है। ऐसे कामों से दोनों दुःख उठाते हैं, दोनों ही अपने को हतभाग्य, हताश और दुःखित बनाते हैं। उनके हृदय में चिन्ता और भय भर जाता है।

परस्पर सुखी बनाने के मार्ग की यह अनभिज्ञता और अज्ञान ही है, जो असल में इन चिन्ताओं और दुःखों की जड़ में है। यदि तुम एक दूसरे को सुखी करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने क्षुद्र स्वार्थी भाव को विशाल बनाना होगा। तुम्हें अपने मित्र के सच्चे भावों का अनुभव करना होगा। अपनी पत्नी को प्रचण्ड बल अर्पित करना होगा; प्रचण्ड बल अवश्य उसमें प्रतिबिम्बित होना चाहिए। तुम्हें परस्पर एक दूसरे को ज्ञान देना होगा, इस प्रकार तुम अपने साथियों को सुखी बना सकोगे और अन्त में स्वयं भी सुखी बनोगे। यदि तुम सच्चे हितैषी हो, तो तुम उसे ऐसी वस्तु जरूर दो, जो सच्चे सुख की असल जड़ है। और ये वस्तुयें ज्ञान और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है। इन वस्तुओं को अपने साथी संगियों को दो। प्रत्येक पति का यह धर्म है कि वह अपनी पत्नी को शिक्षा दे। जो पति अपनी स्त्री का शिक्षक नहीं, या जो पत्नी अपने पति के उन्नत और शिक्षित होने में कारण नहीं बनती, जिससे पति आत्म-स्वतंत्रता एवं ज्ञान नहीं प्राप्त करता,

वह पत्नी पत्नी होने के योग्य बिल्कुल नहीं। ऐसी स्त्री पापिनी है। इसी तरह वह पति भी पापी है, घोर पापी है जो अपनी स्त्री के लिए अपने घर को विश्वविद्यालय (शिक्षा का स्थान) नहीं बनाता। एक दूसरे को सुखी बनाने का वास्तविक यही मार्ग है।

ईसा (क्राइस्ट) के अपौरुषेय गर्भाधान का राम यों समाधान करता है:—ईसा की माता 'मेरी' बड़ी शुद्ध, पवित्र और ईश्वर भक्त थी। वह एक ऐसी स्त्री थी, जो कुछ हद तक साक्षात्कार कर चुकी थी, जो दिव्य दृष्टि-सम्पन्न थी, वह परमात्मा से अभिन्न थी। और जकरिया नाम का मनुष्य (तत्पश्चात् जोजेफ उसको कलंक से बचाने के लिए जकरिया की जगह आ खड़ा हुआ), अथवा जकरिया का नाम लेना यदि तुम्हें नापसन्द हो, तो हम जोजेफ ही कहेंगे, जोजेफ भी अत्यन्त शुद्ध और पवित्र पुरुष था, वह भी सबमें आत्म-साक्षात्कार कर चुका था। उसने परमात्मा का अनुभव किया हुआ था। दोनों नवयुवक और पक्की आयु के थे। ऐसा हुआ कि जब 'मेरी' (अर्थात् 'मेरी' का शरीर) और उसका पति दोनों आत्म-निमग्न थे, जब दोनों पूर्ण समाहित चित्त थे, उसी समय 'मेरी' ने गर्भ धारण किया, उसी समय वह गर्भवती हो गई। पश्चात् वह इस घटना को बिल्कुल ही भूल गई।

प्रायः ऐसा होता है कि लड़के रात्रि को जगाये जाते हैं, और उनको दूध या मिठाई आदि खाने को दी जाती है। पर दूसरे दिन उनसे यदि पूछा जाय कि गत रात को जो दूध या मिठाई तुम्हें दी गई थी, वह तुमने खाई या नहीं? तो लड़का प्रायः यही कहेगा—"ओ! मैंने नहीं पाई, तुमने मुझे कोई ऐसी चीज नहीं दी, तुमने सब कुछ बहन को

दिया होगा।" यह सत्य है कि लड़के ने रात्रि में दूध या मिठाई खाई, बच्चा दूध-पान करते समय या मिठाई खाते समय ज्ञानातीत अवस्था (एक प्रकार की तुरीयावस्था) में था, उसका दिमाग किसी दूसरी जगह था। जैसे नींद में चलनेवाले मनुष्य रात्रि में चलते फिरते हैं और अजीब अजीब काम भी कर लेते हैं, पर जब इसके विषय में प्रातःकाल उनसे पूछा जाता है, तो उन्हें रात की बातों का ध्यान ही नहीं रहता। वैसे ही ईसा के अपौरुपेय जन्म के विषय में राम का यह कथन है कि जब 'जोज़फ़' और 'मेरी' दोनों तुरीयावस्था में, आत्म-साक्षात्कार की दशा में, निमग्न थे—नींद में चलने वालों की अवस्था में नहीं—तब 'मेरी' 'जक़रिया' या 'जोज़फ़' से गर्भवती हुई। वह ऐसी अवस्था थी कि जिसमें इस क्षुद्र देह का भान नहीं रहता, जब तुम दिव्य शरीर में रहते हो। उसी स्थिति में वे दोनों हम-बिस्तर हुए (संभोग किया), और 'मेरी' को गर्भ धारण हुआ; पर जब बाद में उससे गर्भ का कारण पूछा गया, तब वह कुछ भी न कह सकी, और ईसाई लोग कहने लग गये कि उसे पवित्र आत्मा (Holy Ghost) द्वारा गर्भाधान हुआ, जिसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर-ज्ञान-संपन्न होकर, 'पवित्र आत्मा से व्याप्त होकर, एवं ब्रह्माकार वृत्ति में लीन हो जाने पर' उसने गर्भ धारण किया। और इस प्रकार क्राइस्ट 'पवित्र-आत्मा' (Holy Ghost) का पुत्र अभिहित हुआ। प्रकृति के नियम जैसे आज हैं, वैसे उस समय भी थे, पर तो भी हम लोग कह सकते हैं कि ईसा 'पवित्र आत्मा' (Holy Ghost) का पुत्र है।

इसी से राम कहता है कि इसी आचरण के अनुकूल सारे संसार को चलना चाहिए, ताकि ईसा मसीह के समान

अन्य अनेक लोग उत्पन्न हो सकें। यदि तुम मिल्टन, शेक्सपियर, क्राइस्ट ऐसे महापुरुषों को उत्पन्न करने की इच्छा रखते हो, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी सन्तान सारे संसार अथवा अपने परिवार का हित करनेवाली हो, तो अपने अन्तःकरण को शुद्ध करो, उसकी अधोगति न होने दो। राम तुम्हें अपने पुत्र-कलत्र के साथ इस प्रकार का जीवन विताने के लिए कहता है कि जो तुमको क्षुद्र, स्वार्थी भावनाओं से परे रक्खे, जो जीवन तुम्हें बराबर ईश्वर में, भगवान् में, पवित्र आत्मा में लीन करे, सबके साथ तुम्हें एक करे। यदि पति-पत्नी दोनों ऐसे उच्च विचार, ऐसी पुण्यमयी शक्ति और उच्च भावों से सम्पन्न होंगे, तो उनकी सन्तान, ऐसे पिता-माता की सन्तति भी क्राइस्ट होगी। यदि तुम चाहो, तो इस जमाने में भी ईसा मसीह पैदा हो सकते हैं।

घर को प्रीति की हद नहीं, वल्कि प्रीति का केन्द्र बनाना चाहिए। लोग अपने घर को प्रीति की सीमा बना लेते हैं, ताकि उनका प्रेम और प्रणय उस मर्यादा के बाहर न जा सके। गृह और पुत्र-कलत्र को प्रीति का केन्द्र बनाना चाहिए, जिससे प्रेम की किरणें सब दिशाओं में छिटक सकें। तुम्हारा प्रेम वहां सीमाबद्ध न होना चाहिए। तुम्हें अपनी पत्नी को अपने प्रेम और प्रीति की सीमा नहीं बना देना चाहिए। तुम अपने स्वार्थी विचारों द्वारा अपने को और निज पत्नी को—दोनों को—नीचे गिराते हो, और इस प्रकार अपना व उसका अर्थात् दोनों का विनाश करते हो। पत्नी तुमको प्रीति करना सिखलाती है, और उस प्रीति को शुद्ध करने से, उस प्रीति को सारे विश्व की प्रीति बना देने से, उस बाह्य रूप, रंग, चित्र और आकार की प्रीति को परम तत्त्व वा परमात्मा की प्रीति बना देने से, यदि तुम ऐसी प्रीति के साथ प्रत्येक पदार्थ

के निकट जाते हो, और उसी से तृण, पुष्प, नदी, पहाड़ और खाइयों पर दृष्टि डालते हो, तब समझ लो कि तुम सारे संसार के साथ अभेद हो चुके।

पत्नी तुम्हें अपनी स्थिति समस्त जगत् के साथ एक समान एकता स्थापना करना सिखाने के लिए है; जगत् से तुम्हारा समान सम्बन्ध तोड़ने के लिए वह नहीं है। अब राम आपको कुछ आध्यात्मिक नियम बतलाता है। यही आध्यात्मिक नियम इस संसार में सर्व प्रकार की प्रीतियों का शासन करते हैं। यदि राम उन्हें न भी बतलाये, तो भी आप उनका अनुभव कर रहे हो और सदा करते रहोगे, किन्तु कह देने से आप सावधान हो जाओगे। जैसे गाड़ीवान को यह विदित न होने से कि आगे रास्ते में क्या है जब गाड़ी किसी रुकावट (गति कुंठन Stumbling block) को टपती है, तो सारी गाड़ी हिल जाती है, और बड़ा धक्का लगता है; पर यदि उसे सावधान कर दो, यदि उसे आने-वाली रोक की सूचना दे दो, तो वह सावधानी से उस गाड़ी को रोक से बचा ले जाता है। वैसे ही आपके सांसारिक व्यवहारों में भी अनेक विघ्न-बाधायें, अनेक आपदायें, अनेक असफलतायें और मानसी व्यथायें आती हैं। पर इन मर्म वेदनाओं, इन विपत्तियों, असफलताओं एवं निराशाओं की सम्भावना कब समझनी चाहिए? यह राम आपको बताता है। और जब आप यह जान लोगे, तो फिर आपको दुःख न होगा। उपाय बहुत सरल है, और जहाँ तक हो सकेगा, आप उन विपत्तियों से बचोगे। गणित-शास्त्र के नियम के समान यह नियम भी सत्य है। किसी भी भौतिक तथ्य के समान भी यह क़ानून सत्य है। "जब कभी कोई स्त्री या पुरुष किसी व्यक्ति, मूर्ति वा किसी भौतिक पदार्थ से प्रीति

करने लगता है, तब कुछ समय तक तो उसे उस जड़ पदार्थ का उपभोग करने को मिलता है, पर जैसे ही वह वस्तु उसके अन्तःकरण में घर कर जाती है, जैसे ही उसका जीवन तक उससे व्याप्त (रंजित) हो जाता है; वैसे ही—ठीक उसी समय—वह वस्तु वहाँ से हटा दी जाती है।" यही नियम (विधान) है। कोई इससे बच नहीं सकता। ऐसी कोई शक्ति, कोई सत्ता नहीं, जो ऐसी घटना को रोक सके, या उसका निवारण कर सके। प्राचीनतम काल से लेकर आज तक इस नियम का कभी भी व्यतिक्रम नहीं हुआ है।

जहाँ किसी वस्तु के साथ आपने चित्त जोड़ा, किसी नाम या व्यक्ति से ममता की, किसी महान् पुरुष का आश्रय लिया, उस पर विश्वास किया, उन पर भरोसा कर अपना भार डाला, तो झट वह आधारस्तम्भ खींच लिया गया और आप धम से नीचे जा गिरे। आप किसी एक मेज के सहारे खड़े हो जाओ, यदि उस मेज को खींच लिया जाय, तो आप गिर पड़ते हो, आपको चोट लगती है। यह क्या शिक्षा देता है? यह हमें शिक्षा देता है कि इन स्थूल भौतिक पदार्थों के आश्रय हमें अपनी प्रीति नहीं बनाये रखना चाहिए। इन जड़ पदार्थों को यद्यपि अपनी प्रीति का पात्र तो नहीं बनाना चाहिए, किन्तु तो भी जड़ पदार्थों के बिना हमारे हृदय में प्रेम का संचार भी नहीं हो सकता। इन जड़ पदार्थों के ही द्वारा हम प्रीति करना सीखते हैं। पर जब एक बार प्रीति का पाठ पढ़ चुकते हैं, तब प्रकृति हमको यही उपदेश देती है कि यह प्रीति जड़ वस्तुओं में बाँध कर नहीं रक्खी जा सकती। उस प्रीति का प्रसार होना चाहिए, उसे अन्तरात्मा तक पहुँचना चाहिए। पत्नी के चरणों में बैठकर जिस प्रीति की शिक्षा पाई है, उसे जो अन्तरात्मा को अर्पण नहीं करता, उस मनुष्य को धिक्कार

है। यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आप नरकगामी होंगे, और आपको दुःख मिलेगा। पति-पत्नी दोनों को एक साथ ही उन्नति करनी चाहिए। और जब कि पत्नी हमें प्रीति करना सिखलाती है, तो जो प्रीति हम सीखते हैं, उस प्रीति को उस शरीर में ही स्थापित न कर रखना चाहिए, किन्तु समस्त विश्व को, प्रत्येक प्राणी को, अर्पित करना चाहिए।

सांसारिक सुख रूपी क्षेत्र में बोये हुए बीज में आध्यात्मिक उन्नति अंकुरित नहीं होती। इसलिए जब आपको प्रीति का बीज पति या पत्नी के पार्थिव क्षेत्र (शरीर) में आरोपित होता है, तब वह भौतिक शरीर में आरोपित प्रीति का बीज, मानों जमीन में डालकर, मिट्टी से ढक दिया जाता है; पर जब वह प्रीति रूपी बीज नष्ट होकर बाहर प्रस्फुटित होता है और खुली वायु में सुफल फलता है, तभी वह प्रीति श्रेयस्कर होती है; अतः पति और पत्नी में या अन्य किसी भौतिक पदार्थ में आरोपित प्रीति रूपी बीज को अवश्य नष्ट होना चाहिए, और फिर खुली वायु में उगकर फलना चाहिए। अतएव सांसारिक पदार्थ निमित्त जितनी कुछ प्रीति है, उसके सम्बन्ध में सदा प्रत्यक्ष असफलता ही दीख पड़ेगी। जब वह (भौतिक पदार्थ में) बोया हुआ (प्रीति) बीज नष्ट होता है, प्रकृति का नियम है कि वही (प्रेम रूपी) बीज तुम्हें एक-न-एक दिन अवश्य आत्मानुभव करा देता है। यह सच है कि " A man who never loved can never realize God". जिसने कभी प्रीति ही नहीं की, वह ईश्वर को पा नहीं सकता।

साधारणतः कहा जाता है कि धर्म को सांसारिक प्रीति से कुछ सरोकार नहीं है। पर राम कहता है कि सरोकार है। सांसारिक प्रीति का सदुपयोग आपको ईश्वरानुभव कराता

है। "बाहरी सुख तो (आत्मानुभव के मार्ग में जो दुःख दर्द वा पीड़ा मिलती है) उस पीड़ा के भी बराबर नहीं।" वस्तुतः वही शुद्ध प्रीति आपको ईश्वरानुराग सिखाती है, वह शुद्ध प्रेम ही ईश्वर का पर्यायवाचक शब्द (Synonym) है।

वैवाहिक सम्बन्ध को उच्च बनाना ही पति का उद्देश्य होना चाहिए, न कि द्रव्योपार्जन, धनसञ्चय और पारिवारिक सम्बन्ध का दुरुपयोग। जो पदार्थ वास्तव में सुख के साधन थे, वे ही दुःख देने के परिणाम बनाये जाते हैं। जो साधन-मात्र है, उसे साध्य मत बनाओ। धन-दौलत तो केवल शीत-उष्ण से बचाने, क्षुधा-तृषा को निवारण करने और निर्विघ्न एकान्त स्थल में हिफ़ाज़त से रहने का साधन-मात्र होना चाहिए। अब विचारो कि क्षुधा-पिपासा न सता सके एवं सर्दी न लगे, इसके वास्ते भोजन और कपड़े लाने के लिए कितने थोड़े द्रव्य की आवश्यकता है।

लोग कहते हैं, "हमें सर्दी पकड़ती है।" पर सर्दी असल में आपको नहीं पकड़ती। आप ही सर्दी को पकड़ते हैं। रोग आपके पास नहीं आता, आप ही रोग के पीछे पड़कर उसे जा पकड़ते हैं। यह कहना बिल्कुल ठीक है। सर्दी से बचने के लिए वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए, पर यह स्मरण रहे कि वस्त्र केवल शरीर-रक्षा के लिए और अपने आपको सर्दी से बचाने के लिए हों। इसलिए इस काम के वास्ते गाढ़ा और सस्ता वस्त्र भी हो सकता है, उसके बहुमूल्य होने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक चमकीले और आलीशान मकानों के बदले हम छोटे-छोटे घरों में रह सकते हैं। अन्य लोगों अथवा जंगली जानवरों के हमलों से बचने के लिए हमें साफ़-सुथरे छोटे-छोटे मकान ही काफ़ी हैं। अति सुन्दर मकानों की कोई आवश्यकता नहीं है।

लोगों ने अपने घरों की शोभा और सौन्दर्य्य को स्वयमेव अपने जीवन का एक उच्च उद्देश्य बना लिया है। दूसरों को कपड़ा पहनाने की सुन्दरता, खाने-पीने की चीज़ों की जटिलता, यह स्वयं एक उद्देश्य और इष्ट मान लिया है, नहीं-नहीं, उद्देश्य और इष्ट ही नहीं, बल्कि यही साधन-साध्य सब कुछ समझ लिया है।

संसार के इतिहास में हम देखते हैं कि कई लोग झोपड़ों में, छोटे-छोटे मकानों में रहते थे। उनके कपड़े बहुत ही मामूली थे, और भोजन भी उन्हें मामूली मिलता था। पर तो भी वे लोग जगत्-विख्यात शूरवीर थे।

आप प्लेटो के विषय में जानते हो, प्लेटो के फ़ारसी नाम का अर्थ "पीपा या पेटी में रहनेवाला" है। प्लेटो का घर 'पीपा' या 'पेटी' था। संसार से उपराम (अलग) होकर वह इसी मकान में जाकर रहता था।

ज़रा सोचो तो, जो लोग ऐसी दरिद्रता में रहते थे, ऐसे सादे ढंग से रहते थे, उन्होंने संसार के लिए कितना उपकार किया है।

एवन (Avon) नदी के तट पर स्ट्रैफोर्ड (Strafford) ग्राम में शेक्सपियर का घर कोई भव्य भवन नहीं था। पहले वह बहुत निर्धन था, पर पीछे उसने धन इकट्ठा किया। जीवन की प्रथम अवस्था में वह नाटक के दर्शकों की देख-रेख तथा उनके घोड़ों की खबरदारी किया करता था।

'न्यूटन' भी निर्धन मनुष्य था। पुस्तकें खरीदने के लिए या किसी दरिद्र को कुछ देने के लिए जब उसके पास पैसे न होते, तो वह बहुत शोक प्रकट करता था। इसके सिवा किसी और अवसर पर वह अपनी गरीबी से कभी शोकातुर नहीं होता था। ज़रा देखिये, जिन्हें सदा मोटा खाना और मोटा

पहनना पड़ता था, उन्होंने ही संसार के लिए इतना उपकार किया है। भारतवर्ष के हिन्दू लोग पहले जंगली कन्द-मूल पर ही गुजारा करते थे, पर इन्हीं लोगों ने जगत् को सर्व श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान, वेदान्त (मोक्ष और भक्ति का दर्शन-शास्त्र) प्रदान किया है।

अपने को श्रेष्ठ और सत्पुरुष बनाने का प्रयत्न करो। भव्य भवन और सुन्दर सदन बनाने में अपनी शक्ति मत खर्चो। अपने विचार नष्ट मत करो। बहुतेरे गृह बड़े ऊँचे और आलीशान हैं, पर उनमें रहनेवाले मनुष्य बिल्कुल ही ठिगने और क्षुद्र हैं, भारत में अनेक विशाल क़बरें हैं, पर जानते हो, उनके भीतर क्या है ? केवल सड़ी गली लाशें, रेंगनेवाले कीड़े और साँप।

बड़े-बड़े मकान बनाने और उनमें चमकदार चीजों के सजाने में अपनी शक्ति का नाश कर अपने को, अपनी पत्नी और अपने मित्रों को बड़ा बनाने का यत्न मत करो। यदि आप इस विचार को ग्रहण कर लोगे, इसे हृदयंगम कर लोगे, इसे जान और समझ लोगे कि जीवन का एकमात्र आदर्श और उद्देश्य शक्ति का दुरुपयोग और धन का संचय करना नहीं है, वरन् भीतरी शक्तियों का विकास करना, ईश्वरत्व और मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्म-शिक्षण करना है। यदि आप इसका अनुभव करके इसी ओर अपनी सारी शक्तियों को लगाओगे, तो पारिवारिक बन्धन कभी आपके लिए विघ्न रूप न होंगे।

कुछ लोग कहते हैं, हम तो सादी रीति से रह सकते हैं, पर हमारे मेहमान भी तो हैं। यदि हम लोग कमण्डल आदि धारण करें तो वे क्या कहेंगे !

ऐ मेरे प्यारे ! तुम अपने लिए जीते हो, या दूसरों के

लिए ? अपने लिए जिओ। तुम्हारे जीवन में दूसरों को दखल देने की आवश्यकता नहीं है। अपना भोजन करते समय तुम भोजन करते हो या वे ? तुम अपना खाना आप पचाते हो या वे तुम्हारे लिए पचाते हैं ? देखते समय तुम्हारी अपनी आँखों के स्नायु तुम्हें सहायता देते हैं, या उनकी आँखों के ? अपने गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र (centre of gravity) तुम आप बनो। स्वाश्रयी हो। जरा अपने भीतर के आधार और अधिष्ठान को पा लो, और मेहमानों के मतों और विचारों की परवाह मत करो। भोजनों और बिछावनों को अतिथि-सत्कार का मूल-मंत्र न बनाओ। लोग समझते हैं कि मेहमानों को स्वादिष्ट भोजन और सुन्दर पलंग नहीं देंगे, तो हम पूरे अतिथि-सेवी न होंगे। इस प्रकार तो घर का स्वामी इन चीजों का एक पुछल्ला (appendage) मात्र रह जाता है। कृपा करके अपने को द्रव्य का उपकरण (appendage) मत बनाओ, द्रव्य को ही अपना उपकरण बनाओ, अपनी शक्तियों का अनुभव करो।

ऐसा करो कि जब तुम्हारा मेहमान (अतिथि) तुम्हारे यहाँ से अपने घर को जाने लगे, तो वह स्वच्छ चित्त, उदित और समुन्नत होकर जाय। यह योजना करो कि जैसा वह अपने घर से आया है, उससे अधिक बुद्धिमान् बनकर जाये। अपने स्वजनों के प्रति यही अपना कर्तव्य समझो। अपने परिवार को सुखी करने का यही मार्ग है। इसी तरीक़े से गृहस्थ अपने कुटुम्ब को विघ्न-बाधा के स्थान पर उन्नति का सोपान बना सकता है। यदि तुम्हारा अतिथि पहले की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् होकर लौटता है, तो उसके खाने-पीने की अधिक परवाह मत करो। उसे इनसे कुछ श्रेष्ठतर चीज़ दो; उसे ज्ञान और बुद्धि दो। उसे आपकी प्रीति का

आनन्द लूटने दो। याद रक्खो कि यदि मैं तुम्हें एक कौड़ी भी न दूँ, कुछ भी शारीरिक सेवा न करूँ, केवल प्यार से, सच्चे और साफ़ दिल से तुम्हारे प्रति प्रसन्नता-भरी मुस्कान से हँस दूँ, तो तुम्हारा प्रफुल्लित होना, समुन्नत होना और उछलना अनिवार्य्य है। इतने से ही तुम्हारी बड़ी सेवा हो जाती है। किसी मनुष्य को धन देना कुछ भी नहीं है, यह वैसा है कि पहले पत्नी को धन देकर पीछे से त्याग देना। पत्नी को धन नहीं चाहिए, उसे प्रीति चाहिए। किसी मनुष्य को धन देकर तुम पातकी का-सा आचरण करते हो। तुम उसे धोखा देकर भुलाया चाहते हो। उसे प्रेम और ज्ञान दो, उसे स्वच्छ चित्त और समुन्नत बनाओ। यह भारी अतिथि-सत्कार है, और यही तुम्हें करना चाहिए। ऐसी ही प्रीति तुम्हें अपनी स्त्री और बच्चों के साथ रखनी चाहिए।

मांस खाने की वेदान्तिक कल्पना

प्रश्न—मांस खाने के विषय में वेदान्त का क्या मत है?

उत्तर—मांस के सम्बन्ध में लोग समझते हैं कि भारत के लोग पशुओं के प्रति दया-भाव के कारण मांस नहीं खाते थे। शायद यह ठीक हो, क्योंकि कुछ मतावलम्बी ऐसे हैं जो इसी कारण वश मांस खाने से परहेज़ करते हैं। किन्तु कम-से-कम वेदान्ती लोग इसलिए ऐसा नहीं करते।

वेदान्त इस हेतु से आपसे मांस-भक्षण से परहेज करने को नहीं कहता। कदापि नहीं, वेदान्ती लोग और साधारणतः स्वामी लोग मांस नहीं खाते, किन्तु उनकी दृष्टि में मांस न खाने का कारण पशुओं पर निर्दयता न करना नहीं है। यह युक्ति या तर्क ठीक नहीं है।

वेदान्त के अनुसार दयामात्र दुर्बलता है। आप चाहे इससे चौंक पड़े, पर बात है ऐसी ही। दया की इस पद्धति को, जो दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा है, या यों कहिये दूसरों की इच्छाओं और तरंगों की सेवा है, तत्त्वज्ञानी ऐसा ही समझते हैं। अपने सहचरों की ऐसी अनुकूलता करना नर-नारियों के मिथ्याभिमान के सिवाय और कुछ नहीं है। यह एक प्रकार का प्रतिमा-पूजन और दुर्बलता है। यह दया या मिथ्याभिमान, दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा, क्या समाज के लिए प्रशंसनीय है? नहीं, ये सब अज्ञान के गुण हैं, और कुछ भी नहीं।

कितने पाप और भूलें करुणा के नाम पर की जाती हैं? अपने साथी को सुख देने (Congeniality) की इच्छा से कितनी भूलें हुआ करती हैं?

एक मनुष्य की कुछ ऐसे नवयुवकों से संगति हो गई जो खाना-पीना और मौज उड़ाना पसन्द करते थे। अस्तु, नौजवानों की टोली में से एक कहता है—मद्य पी जाय। दूसरे साथी राज़ी हो जाते हैं, और यह नया (अजनवी) आदमी अच्छा साथी (संगी) बनने की इच्छा का शिकार होता है, और केवल उन्हें (अपने साथियों को) खुश करने के लिए शराब पीना शुरू करता है। उसकी अपनी इच्छा मद्य-पान की नहीं है, किन्तु अपने सहचरों (संगियों) को खुश करने के लिए वह उनका अनुकरण करता है। उसमें दूसरों को प्रसन्न करने की अभिलाषा है, और यह इच्छा ही उसे शराब पिलाती है। दूसरी बार यही सज्जन फिर वैसी ही संगति में पड़ जाता है, और फिर केवल दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा से शराब पीने को विवश होता है। और बार-बार ऐसा ही करते-करते एक समय आ जाता है जब वह मद्य-पान के व्यसन का तुच्छ दास बन जाता है।

इसी तरह, केवल दूसरों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से नारियाँ भी वह काम करती हैं, जो धीरे-धीरे उन्हें किसी दुर्व्यसनों की दासी बना देता है। इसीलिए वेदान्त कहता है कि दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा वास्तव में अज्ञान, दुर्बलता और मिथ्याभिमान के योग के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरों को प्रसन्न करने की नीयत (उद्देश्य) से कभी कुछ मत करो। जो 'नहीं' कह सकता है, वही वीर है। 'नहीं' कहने की अपनी सामर्थ्य से आपका चरित्र-बल और बहादुरी प्रकट होती है।

इतना दया के सम्बन्ध में कहा गया। केवल यह समझते हुए कि उन्हें दूसरों के भावों का आदर करना चाहिए, कितने लोग अपने को नरक में रखते हैं? राम जो कह रहा है, उसे आप चाहे दारुण अथवा घोर पापिष्ठ क़ानून कह लें, किन्तु यह वह क़ानून है, जिसका गुण आप एक दिन अनुभव करेंगे।

ज़रा ख़याल तो कीजिये कि इस संसार में कितने लोग केवल इसीलिए नरक भोग रहे हैं कि वे दयावान् हैं। सम्बन्धियों या सुहृदजनों के विरुद्ध होजाने के कारण अथवा किसी मनुष्य का हृदय टूट जाने के भय से वे सत्य का अनुसरण करना या सत्य के आज्ञानुसार बर्ताव करना निर्दयता समझते हैं।

वेदान्त कहता है, यदि आप सत्य पर इसलिए आपत्ति करते हो कि उससे किसी का दिल टूट जायगा, तो सत्य की हत्या होने की अपेक्षा किसी व्यक्ति की मृत्यु बेहतर है। वेदान्त कहता है, "इस या उस व्यक्ति के भावों की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो", क्योंकि सत्य का आदर करना वास्तव में मित्र की क़दर करना है। उसके मिथ्याभिमान या इच्छाओं का जितना ही अधिक आदर और ध्यान करोगे, आप उतनी ही अधिक चेष्टा उसके सच्चे आत्मा के वध के लिए करते हैं, जो 'सत्य' स्वरूप है। "उसके बाह्य शरीर की अपेक्षा 'सत्य' का अधिक आदर करो।"

पुनः ऐसे कितने लोग हैं, जो आत्म-सम्मान की इस कल्पना के कारण अपने लिए नरक की सृष्टि कर रहे हैं? कैसा घोर अनर्थ वे करते हैं। 'आत्म-सम्मान' से लोग इस तुच्छ शरीर का, इस क्षुद्र व्यक्तित्व का 'आत्म-सम्मान' समझते हैं।

माताओं, बहनों, पिताओं, भाइयों और बच्चों के रूप में ऐ परमात्मस्वरूप! ऐ परमेश्वर! तू देख कि आत्म-सम्मान का

अर्थ इन तुच्छ शरीरों या व्यक्तित्व का सम्मान नहीं है, समझ ले कि आत्म-सम्मान का अर्थ है 'सत्य' का सम्मान, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का सम्मान । जिस प्रकार के 'आत्म-सम्मान' को तुम उत्तेजना दे रहे हो, उससे 'आत्म-सम्मान' की ओट में तुम अपने सच्चे 'आत्मा' का अपमान करते हो ।

जब आप ईश्वर-भावना से परिपूर्ण हो जाते हो, तभी आप अपने आत्मा (स्वरूप) का सम्मान करते हो; जब आप अन्तर्गत ईश्वर के ध्यान से परिपूर्ण होते हो, तभी आप आत्म-सम्मान से परिपूर्ण हो। देह की पूजा के द्वारा आप आत्महत्या कर रहे हो, आप अपने लिए गढ़ा खोद रहे हो।

मांस के विषय में वेदान्त कहता है, "अपने शरीरों से लगन न लगाओ, अपने शरीर के मरने या जीने की चिन्ता न करो, आपके शरीर को लोग पूजा करते हैं या उस पर ढेले मारते हैं, इसकी परवाह मत करो । इससे ऊपर उठो।"

एक मनुष्य इस शरीर को वस्त्र पहनाता है और दूसरा उन्हें फाड़ डालता है, इसकी कोई परवाह न होनी चाहिए।

"जब कि स्तुतिकर्त्ता और स्तुत्य, निंदक और निंद्य (वास्तव में) एक ही हैं, तो न निन्दा है, न स्तुति।"

इस दशा में, यदि आप अपने सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करें, यदि इस क्षुद्र शरीर का ज्ञान आपके लिए मिथ्या हो जाय, तो जहां तक आपका सम्बन्ध है, दूसरों के बाहरी मांस और खून का आदर गायब हो जायगा।

देखो आज राम आपके कुछ अति प्रिय अन्ध-विश्वासों को चकनाचूर कर देगा।

वेदान्त कहता है, "दूसरी मूर्तियों को आप उसी अंश तक सच्ची समझ सकते हो, जिस अंश तक आप अपनी देह-रूपी प्रतिमा को असली समझते हो।" यह नियम है । दूसरों के

शरीर या व्यक्तित्व को आप ठीक उसी मात्रा में असली समझ या ग्रहण कर सकते हो, जिस मात्रा में आप अपने व्यक्तित्व या शरीर को असली समझते हो। यह क़ानून है।

जब आप व्यक्तित्व और देह से ऊपर उठोगे, तब दूसरों के शरीर या व्यक्तित्व का भाव भी आपके लिए मिट जायगा। वे आत्मामय (spiritualized) और अति सूक्ष्म (etherialized) बन जावेंगे, वे पहले के से स्थूल न रह जायँगे। ऐसी दशा में, जिस मनुष्य ने 'सत्य' का अनुभव कर लिया है, उसके लिए दूसरी बात यह है कि चाहे कोटियों सूर्य और नक्षत्र शून्यता में फेंक दिये जायँ, पर उसकी बला से! उसके लिए बकरों, भेड़ों या बैलों के मरने से क्या! कुछ नहीं; कुछ नहीं, उसके लिए इससे कोई भेद नहीं पड़ता, वह इनसे ऊपर है।

दुनिया के अत्यन्त विकराल युद्ध में कृष्णजी अर्जुन के सारथी थे। वहाँ अर्जुन विषाद तथा भारी भय को प्राप्त हुआ। दया और करुणा की वृत्ति ने उसे विह्वल कर दिया। तब तो यह वीर (अर्जुन) काँपने और थर्राने लगा; दया के विचार ने उसे दबा लिया। भगवान् के अवतार कृष्ण ने, दुनिया-भर के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कृष्ण ने, केवल भारत के नहीं, किन्तु अखिल विश्व के ईसू मसीह कृष्ण ने, तब तो अर्जुन से कहा, "तुम यह शरीर नहीं हो, यह व्यक्ति तुम नहीं हो, सच्चा कर्त्ता परमेश्वर है।" कृष्ण ने उससे कहा "तुम्हारे शरीर के द्वारा परमात्मा काम कर रहा है।" कृष्ण ने उसे उपदेश देकर उसमें परमेश्वर-भावना जाग्रत् कर दी, उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि 'असलियत में वह क्या है', उसे भय से निकाल लिया, उसे चिन्ता और दुर्बलता से छुटा दिया। उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप (आत्मा) अविनाशी है; कल, आज और सदा एकसा

है, उसमें विकार हो ही नहीं सकता, वह निर्विकार और निर्विकल्प है। और उन्होंने उससे कहा "अर्जुन, तू मर नहीं सकता। इन देहों में से चाहे किसी को मिटा दे, पर उसका असली स्वरूप (आत्मा) कभी नहीं मरता। तुम कभी नहीं मरते। और यदि तुम्हें पूर्ण सत्य का बोध भी नहीं, तथा तुम आवागमन की चार दीवारी में ही क़ैद हो, तब भी जान लो कि अपना या उनका व्यक्तित्व सत्य नहीं है, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करो, जो परमेश्वर है, और जो अमर है। तुम काँपते और थर्राते क्यों हो? अपने उपस्थित कर्तव्य को देखो। यदि इस समय तुम्हारा सांसारिक कर्तव्य इन सब मनुष्यों का वध करना है, तो इन्हें मार डालो।" भगवान् कृष्ण उससे कहते हैं, "मैं देवों का 'परमदेव' हूँ, प्रकाशों का 'प्रकाश' हूँ, और क्या प्रतिक्षण मैं कोटियों पशु-पक्षियों का नाश नहीं कर रहा हूँ? उन्हें शून्यता में नहीं फेंका रहा हूँ? मैं—'प्रकृति', परमेश्वर, जगन्नियता—सदा यह काम कर रहा हूँ, फिर भी मैं सदा निर्लिप्त और निर्मल हूँ। ईश्वर नाश करता है, तो क्या ईश्वर दोषी है? नहीं, ईश्वर फिर भी शुद्ध है।" फिर भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "यदि तुम सत्य का अनुभव करो, यदि तुम परमेश्वर से अभेद हो जाओ, यदि तुम अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करो, तो तुम्हारी देह परमात्मा का यंत्रमात्र बन जाय। यदि न्याय, धर्म, सत्य और अधिकार के लिए तुम्हारा शरीर लाखों और करोड़ों का संहार भी कर दे, तो भी तुम शुद्ध अविकल और निष्कलंक रहते हो।"

यह सत्य लोगों को अनुभव करना होगा। किन्तु आप इसका अनुभव करो या न करो, राम को सत्य कहने से रुकना उचित नहीं।

वह वेदान्त था, जिसने नर-संहार करने में, वल्कि अर्जुन के अपने बहुत नगीची और प्रियतम सम्बन्धियों का तथा अपने गुरु, चाचा, भाई, वन्धुओं का नाश करने में कोई आगा-पीछा नहीं किया था। वेदान्त कहता है, इनके वध करने से अर्जुन दूषित नहीं हुआ। तो फिर वकरों या भेड़ों, वैलों या ऐसे ही पशुओं को मारने में वेदान्त कैसे संकोच कर सकता है? पर फिर भी वेदान्त मांस से परहेज़ करने को आपसे कहता है, पर विल्कुल अन्य कारणों से।

मांसाहार आपको उस दशा या अवस्था में पहुँचा देता है, जिसमें आप चित्त को आसानी से एकाग्र नहीं कर सकते। यदि मांस-भक्षण आप छोड़ नहीं सकते, यदि इस आदत को आप जीत नहीं सकते, तो वेदान्त कहता है, "खाओ, मत छोड़ो।" विभिन्न खाद्य पदार्थ भिन्न-भिन्न असर पैदा करते हैं। मद्य पीने से मनुष्य को नशा होता है। अफ़ीम के खाये जाने पर एक ख़ास तरह का असर पैदा होता है। एक मनुष्य संखिया खाता है और उसका एक विशेष प्रभाव होता है। इसी तरह भोजन विशेष भी अपना ख़ास असर पैदा करता है। और मांस भी ऐसा करता है। मांस शरीर पर जो असर डालता है, उस (असर) की धर्म के विद्यार्थियों को आवश्यकता नहीं है।

यदि आप सैनिक हो, अथवा उद्यम-पूर्ण कृत्यों में रत पुरुष हो, तो वेदान्त कहता है, आपको मांस खाना चाहिए, क्योंकि आपको उसकी ज़रूरत है, और आपको केवल शाक आदि भोजन पर निर्भर न रहना चाहिए। दूसरी वृत्तियों के लोगों के वारे में राम कहता है, अपनी-अपनी प्रकृति पर उसे आज़मा कर देखो। कुछ लोगों के लिए वह हितकर है, और कुछ के लिए हानिकर। प्रकृति की योजना (plan) है कि

योग्यतम व्यक्ति अवश्य जियेगा। यहाँ हम व्हेल (whales, तिमिंगिल) मछलियों को बढ़ते देखते हैं, वे जीती बचती हैं; और उन्हें बचाने के लिए प्रकृति चाहती है कि वे छोटी मछलियों पर निर्वाह करें। हजारों छोटी मछलियाँ अवश्य नष्ट हो जायँ, पर बड़ी मछली जीती रहे। यह प्रकृति की व्यवस्था है। इसी तरह हम खनिज संसार में देखते हैं कि मिट्टी, भूमि नष्ट हो जाती है और उद्भिज संसार अर्थात् वनस्पतिवर्ग की रक्षा होती है। उद्भिजों की खाद्य वस्तु मिट्टी है। फिर पशुओं की रक्षा के लिए उद्भिज पदार्थों को नष्ट होना पड़ता है, काम आना पड़ता है। पशु उद्भिज पदार्थों को खाकर जियें, यह प्रकृति की योजना है। यह प्रकृति की व्यवस्था है कि मनुष्य (सर्वोच्च वर्ग) पशुओं पर गुजारा करे और वे उसका काम दें, यही प्रकृति की योजना है। इससे राम का अभिप्राय पशुओं को खाना नहीं, केवल उन्हें काम में लाना है। पशुओं को मनुष्य की सेवा करनी होगी। फिर दुनिया के साधारण मनुष्यों में भी हम देखते हैं कि उच्चतर लोग स्वभावतः बढ़ते चले जाते हैं। जब विश्वव्यापी संग्राम और महामारियाँ आती हैं, तब निम्नतर और दुर्बलतर प्रकृतिवाले उच्चतरों के लिए मरते हैं। यह प्रकृति की योजना है। यही क़ानून विश्व का शासन करता है।

इसलिए राम कहता है, यदि मांस खाकर आप विश्व को अधिक लाभ पहुंचा सकते हो, तो मांस खाओ; यदि मांस से विरत रहकर आप उच्च-तर सत्य की वृद्धि कर सकते हो, तो मांस से परहेज़ रक्खो।

हर एक व्यक्ति को अपने परिच्छिन्न आत्मा को परमेश्वर का स्वरूप समझना चाहिए। वेदान्त के अनुसार, सबको सब काम निस्स्वार्थ और अकर्तृत्व भाव से करना चाहिए।

तुम्हें सब काम इस तरह पर करना चाहिए कि मानों तुम नहीं कर रहे हो, अर्थात् इस तुच्छ अहंकार के साथ अथवा अभिलाषाओं और अहंकार की दृष्टि से कुछ नहीं कर रहे हो। अभिलाषा और अहंभाव की यह दृष्टि तुम्हें त्याग देनी चाहिए। जब आपका शरीर संसार में प्रकृति की तरह काम करता है, 'सर्व' के लिए काम वितरण करता, काम का निरूपण करता, और काम को समाप्त करता है, बिना किसी स्वार्थमय अहंभावपूर्ण इच्छा के, बल्कि केवल 'अखिल' के लिए, समग्र के लिए, काम करता है। और यदि अखिल विश्व की उद्देश्य-वृद्धि निमित्त इस शरीर-यंत्र के लिए मांस खाना उतना ही आवश्यक हो, जितना एक पुतली-घर में कुछ पहियों के लिए तेल से चिकनाया जाना; यदि तुम्हारे शरीर के लिए मांसाहार से ओंगा जाना उतना ही जरूरी है, जितना उन कुछ पहियों विशेष का तेल से ओंगा जाना; तब तुम मांस खाने से मत झिझको। किन्तु जब केवल ज़बान के मजे के लिए तुम मांस खाते हो, तब वह पाप हो जाता है। यदि अपनी इच्छाओं की तृप्ति के विचार से तुम मांस-भक्षण करते हो, तो वह अन्य सब पाप कर्मों के समान पाप हो जायगा। तब वह पाप हो जाता है।

भारत में ऐसे लोग हैं, जो रास्ते से गुज़रते हुए दुकानों में पशु के मृतक शरीर को लटकता देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं। खाना तो दूर रहा, वे उसे देख भी नहीं सकते।

अपने स्वार्थपूर्ण ज़ायकों की तृप्ति के लिए जब तुम मांस खाते हो, तब मांस खाना पाप हो जाता है, किन्तु यदि तुम उसे दवा की तरह व्यवहार करते हो, यदि तुम केवल उपयोगी कार्य करने और अपने शरीर को मानव-जाति का हित करने की योग्यतम अवस्था में रखने के लिए उसे ग्रहण करते हो, तो मांस-भक्षण कुछ भी पाप नहीं है।

लोगों का मुख्य अभिप्राय स्वाद होता है। यदि कोई चीज़ स्वादिष्ट है, और सत्य के पक्ष को भी प्रबल करने में सहायक होती है, तो उसे ग्रहण कर लो। किन्तु केवल मधुरता के लिए किसी चीज़ को ग्रहण करने से काम नहीं चलेगा। सामान्यतः सुस्वादु चीज़ें उपयोगी भी होती हैं, किन्तु सदा ऐसा नहीं होता।

अब एक दूसरा प्रश्न उठता है। प्रायः धर्म-ग्रन्थों का कितना विपरीत अर्थ ग्रहण किया जाता है, प्रायः पुस्तकों की कितनी अनर्गल व्याख्या की जाती है? समाज के लिए यह बड़ी भारी व्याधि है—अर्थात् धर्म-ग्रन्थों का यह अनर्थ ग्रहण किया जाना और नाममात्र पवित्र धर्म-ग्रन्थों और पुस्तकों का दुरुपयोग होना बड़ी भारी व्याधि है।

कहा जाता है कि मिल्टन (कृत पुस्तक) को पढ़ने के लिए दूसरे मिल्टन की ही ज़रूरत है। बहुत ठीक है। इसी तरह एक सिद्ध को भी समझने के लिए दूसरे सिद्ध की ज़रूरत है। और ईसामसीह को समझने के लिए तुम्हें ईसा-मसीह हो जाना चाहिए। वेदों को समझने के लिए तुम्हें वेद बनना चाहिए। वेदान्ती लेखकों ने, जिनके लेखों का तो उपयोग किया जाता है, पर जिनके नाम नहीं लिये जाते, इस कल्पना को बड़ी उत्तमता से लिखा है। इन लोगों ने इस दर्जे तक अनुभव किया है कि पाठक का शरीर मानों उन्हीं का शरीर है। वेदों में हमें ऐसे वाक्य मिलते हैं, "ऐ लोगो! वेदों से ऊपर उठो, शिक्षाओं का उपयोग करो, और उनसे लाभ उठाओ। देवताओं और देवदूतों (फ़रिश्तों) से ऊपर उठो, देखो, तुम क्या हो? तुम सब कुछ हो।" यही हज़रत ईसा कहते हैं। इंजील से हम ऐसे वाक्य चुन सकते हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार का है। "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर

है।" Kingdom of Heaven is within you। लोग इसका बिलकुल ग़लत इस्तेमाल करते हैं। वे अर्थ का अनर्थ करते हैं। यह बात राम को एक कहानी की याद दिलाती है।

एक बार एक गुरु बहुत थककर एक पलंग पर पड़ गया और अपने चेले से कहने लगा कि "अपने पैरों से लताड़ दो, अर्थात् मेरी देह को दाब दो।" भारत में इस तरह से देह दबवाने की चाल बहुत अधिक है। इसलिए गुरु ने शिष्य से अपनी देह दाब देने को कहा, किन्तु शिष्य बोला—"नहीं, नहीं, गुरुदेव! मैं ऐसा कभी न करूँगा। आपका शरीर अति पवित्र है, आपका व्यक्तित्व अत्यन्त पूत है। मैं आपकी देह पर अपने पैर नहीं रख सकता, यह तो अधर्म होगा। मैं ऐसा घोर पाप न करूँगा। मैं आपके लिए सब कुछ कर सकता हूँ, मैं आपके लिए अपनी जान तक दे सकता हूँ, किन्तु आपकी देह को पैरों से न रौंदूँगा।" गुरु ने कहा—"ऐ बेटे! आ, मैं बहुत थका हूँ, आ, आ, और मेरी देह दाब दे।" शिष्य रोने लगा, परन्तु यह अधर्म करने को राज़ी न किया जा सका। गुरु ने कहा—"ऐ मूर्ख लड़के! तुम मेरे निचले अंगों को पैरों से नहीं रौंदना चाहते, तुम मेरे शरीर का अनादर नहीं करना चाहते, किन्तु तुम मेरे पवित्र ओठों को कुचलते हो, तुम मेरे पवित्र चेहरे को रौंदते हो। इनमें कौन सा अधिक अधर्म है? गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना अधिक पापमय है, या उसकी देह दाबना?"

ईसा या मुहम्मद के पवित्र ग्रन्थों अथवा वेदों को तो बात की बात में लोग कुचल डालते हैं, किन्तु इस रक्त और मांस को लोग पूज्य और पवित्र समझते हैं, उसी रक्त और मांस को जिसे खाने को ईसा ने लोगों से कहा था। क्या ईसा ने अन्तिम भोज में अपना मांस खाने और पीने को

लोगों से नहीं कहा था ? जब रोटी तोड़ी गई तो उसने कहा—"यह मेरा मांस है, यह मेरा रुधिर है।" सभी सिद्ध पुरुष यही समझते हैं। सब व्यक्तियों में, सब देहों में, वे परमेश्वर को देखते हैं, और उन पर प्रभुता पाने की इच्छा करते हैं। वे चाहते हैं कि उनके शरीरों से ऊपर उठो, उनके शरीरों को कुचल डालो किन्तु आप उनके शरीर तो नहीं दावोगे, चाहे उनके पवित्र वचन भले ही कुचल डालो।

व्यक्तित्व से ऊपर उठो, भीतर के परमेश्वर को ढूँढो। यदि ईसा कभी इस संसार में रहा था, तो वह आज भी तुम्हारे शरीरों में रहता है। ईसा को अपने धर्म का स्थिति-विन्दु या लक्ष्य (Stand point) बनाओ, उसे अपनी अग्रसर उन्नति का लक्ष्य (Stand point) बनाओ, उसे अपनी सीमान्त रेखा बनाओ, हाँ, उसे अपने इर्द-गिर्द कण्टक मत होने दो। उसे अपने धर्म का, अपनी उन्नति का, उद्गम स्थान बनाओ। खुद ईसा बनो, और ईसा का अर्थ समझो।

अस्तु, आजकल क्या हो रहा है ? जो लोग इस तुच्छ मिथ्या, शैतानी अहंकार (अहंभाव) से छुटकारा नहीं पाना चाहते, वे ईसा को पंचभौतिक बनाना चाहते हैं, और वे परमेश्वर को घूँघट की ओट में ही रखना चाहते हैं। वे ईश्वर को साकार और वाह्य वस्तु ही बनाये रखना चाहते हैं। अपने को ऊपर उठाकर ईश्वर बनने के बदले वे ईश्वर को नीचे उतारकर अपने बराबर करना चाहते हैं। इंजील में दो हास्यजनक (funny) शब्दों से इसका दृष्टान्त दिया गया है। वे हैं 'परमेश्वर की आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही।' The spirit of God brooded over the waters।

हिन्दुस्तान में एक लड़का था, किसी कलवार (मद्य-विक्रेता)

का पुत्र था। वह स्कूल में भरती किया गया, और अंग्रेज़ी पढ़ने लगा।

भारतवर्ष में, ख़ासकर ईसाई प्रचारकों के स्कूलों (Mission Schools) में पहले इंजील पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी पाठ का सम्बन्ध इंजील से था। जब लड़का इस वाक्य पर पहुँचा, 'परमेश्वर की आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही,' तब वह बहुत घबराया। लड़का 'स्पिरिट' (Spirit, सार, भूत, शराब आदि) शब्द जानता था, और वह 'ब्रूडिड' (brooded, बहुत काल तक चिन्ताकुल रही, जन्म दिया) शब्द तथा 'वाटर' (water) शब्द भी जानता था किन्तु वह 'गाड' (God) शब्द नहीं जानता था। अतः उसने सोचा 'गाड' (God) की आत्मा ने जन्म दिया (brood ब्रूड का अर्थ जन्म देना या अंडे सेना भी है)। क्या 'गाड' का अर्थ जौ है, या ग़ल्ला अथवा अंगूर ? मैं जानता हूँ कि जौ और ग़ल्ले से अथवा अंगूर इत्यादि से शराब निकलता है। और उसने सोचा कि यह विलक्षण प्रकार की मदिरा थी, जो समुद्र में तैरती रही। उसका पिता तेज़ शराबों में पानी मिलाया करता था और वह वैसी ही शराबों से परिचित था, किन्तु यह तो अजीब तरह का मिश्रण (mixture) था।

अरे, इसी तरह लोग धर्म-ग्रन्थों का अनर्थ करते हैं, क्योंकि वे कलवारियों (wine shops) में बहुत अधिक रहते हैं, क्योंकि वे स्थूल भौतिक पदार्थों को बहुत अधिक चाहते हैं, और इसीलिए वे उन उत्कृष्ट तथा पवित्र धर्म-पुस्तकों का स्थूलार्थ ग्रहण कर लेते हैं, और उन्हें भौतिक बना डालते हैं।

एक मनुष्य सेना में नियुक्त था। वह किसी रमणी को चाहता था, उसका बड़ा अफ़सर भी उसी युवती को प्यार करता

था। इस रमणी ने इसी मातहत कर्मचारी को अपना दिल दे दिया था। मातहत पदाधिकारी छुट्टी लेकर घर गया। रमणी इस मौक़े से लाभ उठाकर उसके घर पहुँची। विवाह की ठहर गई, और इसलिए उसने अपनी छुट्टी बढ़वाना जरूरी समझा। छुट्टी बढ़ाने को उसने अपने उसी ऊपर के अफ़सर को तार दिया। अफ़सर को सब हाल मालूम हो गया और वह जान गया कि रमणी से ब्याह करने के लिए छुट्टी मांगी गई है। वह अफसर ईर्ष्यालु था ही, अतः छुट्टी नहीं देना चाहता था। जवाब में उसने जल्दी से टुटप्पी (संक्षिप्त) भाषा में यह संदेश भेजा, "तुरन्त मिल जाओ (Join at once)।" उसका मतलब था कि मातहत पदाधिकारी तुरन्त आकर सेना में सम्मिलित हो। यह मनुष्य वही संदेश पढ़ रहा था, जिसमें कहा गया था "तुरन्त सम्मिलित हो"। वह दिल से बहुत चाहता था कि घर पर ठहरूँ, किन्तु संदेश कहता था "तुरन्त सम्मिलित हो।" उसे इस बात से बड़ी निराशा और व्यग्रता हुई। जब उसके चित्त की यह हालत थी, तभी रमणी आई और उसे इतना निराश देखकर कारण पूछने लगी। उसने उसे तार दिखाया। रमणी की चपल बुद्धि ने उसे अपने अनुकूल संदेश का अर्थ लगाने में बड़ी सहायता दी, और उसने उस संदेश का बड़ा ही सुखकर अर्थ लगाया, और वह खुशी से नाचने लगी। उसने उस (प्रेमी) से कहा कि इतने उदास क्यों हो, तुम्हें तो मेरी समझ में प्रफुल्लित होना चाहिए। वह कमरे से निकलने को थी, तभी प्रेमी ने पूछा, जाने की इतनी जल्दी क्यों है? रमणी ने उत्तर दिया—जल्दी से विवाह में सम्मिलित होने की तैयारी के लिए।' इसी तरह लोग धर्मग्रन्थों से अपना मतलब निकाल लिया करते हैं। ऐसा अर्थ विवाह करने को उत्सुक

महिला के लिए भले ही ठीक हो सकता हो, परन्तु धर्म-ग्रन्थों का ऐसा अर्थ करने से काम न चलेगा।

धर्म-ग्रंथ हमें वतलाते हैं—"शरीर परमेश्वर का मंदिर है।" इस वचन का वड़ा ही दुरुपयोग किया जाता है। निस्सन्देह देह परमेश्वर का मन्दिर है, किन्तु क्या इस वचन का यह अभिप्राय था कि मन्दिर ही सब कुछ है और भीतर के परमेश्वर को भूल जाओ? मंदिर का अभिप्राय यह न था, जो आजकल रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के मन्दिरों में होता है। लोग भीतर के परमेश्वर को भूल जाते हैं और मन्दिर ही को सब कुछ बना देते हैं।

उस वाक्य का मतलब यह था कि भीतर के परमेश्वर की, परमात्मा की पूजा की जाय, न कि मन्दिर की।

लोग मन्दिर में प्रवेश करते हैं, और अन्तस्थ ईश्वर को भूल जाते हैं। इसलिए जब वे पढ़ते हैं कि शरीर "ईश्वर का मन्दिर है", तब वे अर्थ का अनर्थ करते हैं, इस वाक्य का दुरुपयोग करते हैं, और शरीर को ही परिपुष्ट करते हैं। कभी-कभी देखा जाता है कि लोग शरीर का अत्यधिक खयाल रखना चाहते हैं, अपने मिथ्याभिमानों तथा चित्त की तरंगों का बहुत दुलार करते हैं, और अपने इन कार्यों के समर्थन में इसी वाक्य (शरीर ईश्वर का मन्दिर है) का हवाला देते हैं। अपने मिथ्याभिमान, दौर्बल्य और अज्ञान की रक्षा के लिए यह एक गढ़ सा बना लिया जाता है।

मूल वचन (मंत्रों) का बड़ा दुरुपयोग होता है। यही कुशल है कि वे टेम्पल (temple) शब्द का और भी अधिक स्थूल प्रयोग नहीं करते। जब किसी एक विद्यार्थी ने यह वचन पढ़ा कि "शरीर ईश्वर का टेम्पल (temple) * है," तो उसने

* temple (टेम्पल) शब्द का एक अर्थ "कनपटी" भी है।

प्रश्न किया "ईश्वर के कान कहाँ हैं ?" इतनी खैरियत है कि वे इस वचन की इस प्रकार की और भी अधिक स्थूल व्याख्या नहीं करते, जो व्याख्या की जा चुकी है, वही काफ़ी स्थूल है।

यदि देह ईश्वर का आलय (मन्दिर) है, तो आपको उसे भूल जाना चाहिए, देह भूल जाने के लिए ही है। मन्दिर का अच्छा उपयोग उसे भुला देना है, न कि उसे सब प्रकार के सुखों से परितृप्त करना और सजाना। अन्दर के ईश्वर को अनुभव करो, मन्दिर अपनी चिन्ता आप कर लेगा।

क्या ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है ? क्या सर्वत्र ईश्वर का मन्दिर नहीं है ? सूर्य परमेश्वर का मन्दिर है। क्या सारे नक्षत्र परमेश्वर के मन्दिर नहीं ? हर एक वस्तु परमेश्वर का मन्दिर है। राम कहता है, प्रत्येक पदार्थ ईश्वर का मन्दिर है। देह ईश्वर का मन्दिर इसलिए कहा है कि वह आपसे अत्यन्त निकट है।

प्रत्येक पदार्थ आपको परमेश्वर की शिक्षा दे रहा है। प्रत्येक पदार्थ का मूल परमेश्वर है। इस सम्बन्ध में राम आपसे एक बात कहना चाहता है; मानसिक पीड़ा, आन्तरिक शूल, चिन्ता और क्लेशों से व्यथित सब लोगों के लिए वह वैकुण्ठ का एक संदेश देना चाहता है।

सम्पूर्ण विश्व के इतिहास के पन्नों में ईश्वर ने यही संदेश भेजा है। ईश्वर यही सन्देश तुम्हारी नाड़ियों में, तुम्हारी स्नायुओं में, तुम्हारे मस्तिष्क में भेजता रहता है। प्रत्येक कुटुम्ब में, हर एक परिवार में, भगवान् इस सन्देश का प्रचार कर रहा है। इस सन्देश को सुनो, इस पर ध्यान दो, और अपना उद्धार कर लो। यदि इस सन्देश पर ध्यान न दिया, इसका अनादर किया, तो अपने को फाँसी पर चढ़ा लोगे, मरोगे, और नष्ट होगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मनुष्य दिन में कितनी वार मरता है? जब आप भयभीत होते या बहुत परेशान होते हो, जब कभी आप ऐसी भयंकर अवस्था में होते हो, तभी मृत्यु होती है; क्योंकि आप अन्तस्थ परमेश्वर को भूल जाते हो। उसकी ओर ध्यान दो, और अपने आप को बचाओ। उसका निरादर करोगे, तो तुरन्त विनष्ट हो जाओगे।

यही क़ानून (दैवी विधान) है—निष्ठुर (unrelenting), अलंघ्य (inviolable), बहुत ही सख्त, बड़ा कठोर नियम है। यह दैवी विधान है। यह सन्देश क्या है? उसे सुनो "जो पूज्य होना चाहते हैं, वे सूली पर लटकने की यातना भोगें।" ईसा ने पहले सूली चढ़ने की तकलीफ उठाई, और वाद में पूजा गया। भगवान बुद्ध ने सूली (अति पीड़ा) का कष्ट पहले उठाया, और फिर पूजे गये। सुक़रात (विष की) सूली चढ़ा, उसने विष पीने की पीड़ा सही, और आज उसका शरीर पूजा जाता है। ब्रूनो पहले मरा और पीछे उसका सम्मान हुआ। भारत में हज़ारों सिद्ध (महापुरुष) वलिदान पहले हुए और पीछे पूजे गये। इन लोगों ने पहले मूल्य चुका, और पीछे पुरस्कार पाया।

यही तथ्य है कि इन सभी सिद्धों ने पहले क़ीमत दी, और पीछे अपना इनाम पाया। किन्तु संसार के अन्य लोगों का क्या हाल है? संसार के साधारण नर-नारियों की क्या चाल है? वे ख़रीदना तो चाहते हैं, किन्तु मूल्य देने से पीछे हटते हैं। परन्तु मूल्य तो देना ही होगा।

हर एक चाहता है कि वह पूजा जाय। पूजा के अर्थ हैं प्रेम, आदर और सत्कार। हर एक प्रेम, आदर और सत्कार पाना चाहता है, सभी लोग चारों ओर से भक्ति पाना चाहते हैं। वे अपने इर्द-गिर्द खुशामदियों को चाहते हैं। सांसारिकता

के इस रोग से, मिथ्याभिमान के इस रोग से, देह निमित्त प्रेम के इस रोग से, दूसरों को देह के प्रति प्रेम से, इस बद्धमूल रोग से, इस अज्ञान से जो तुम्हें शरीर में ही आत्मा का विश्वास कराता है और जिसके कारण तुम देह को ही अपने अन्दर का सार तत्व समझने की भूल करते हो, इस अज्ञान से जो अपने को पूजे जाने की लालसा में बदल लेता है, हर एक व्यक्ति संसार में कष्ट भोग रहा है। बिना उचित मूल्य दिये इस रोग का, पूज्य होने की इस कल्पना का, आनन्द नहीं लूटा जा सकता। परमेश्वर का यह दैवी विधान किसी को माफ़ नहीं करता, न तो ईसा को छोड़ता है और न कृष्ण को। ईसा को क़ीमत देना पड़ी थी, पहले सूली मिली और पीछे वह पूजा गया। क़ानून के अनुसार सुकरात ने पहले मूल्य चुकाया, और पीछे पूजा गया।

सभी सिद्धों ने मूल्य पहले दिया और बाद में पीछे पूजे गये। तुम्हारे नेपोलियन, वाशिंगटन और अन्य महापुरुषों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजे गये। न्यूटन और अन्य महापुरुष क़ब्र में भी जी रहे हैं, अब वे क़ब्रों में उस जीवन को विता रहे हैं, जो पहले बलिदान (crucifixion) का जीवन था। वे शरीर से (अर्थात् देह-दृष्टि से) ऊपर हैं, भूख और प्यास की पीड़ाओं से परे हैं।

न्यूटन का जीवन-चरित्र पढ़ो, और तुम देखोगे कि अनेक बार वह भोजन करना भूल जाता था। इन लोगों ने पहले मूल्य चुकाया और पीछे पूजा पाई।

क़ानून (दैवी विधान) किसी को नहीं छोड़ता, वह व्यक्तियों का आदर नहीं करता, वह तुम्हारे पापियों अथवा पुण्यवानों (साधुओं) का, तुम्हारे सिद्धों या तत्त्वज्ञानियों का लिहाज़ (पक्ष) नहीं करता। यह निष्ठुर और निर्दयी क़ानून (विधान)

है। तुम्हें अपने विषय में किसी विशेष व्यवस्था की आशा करने का क्या हक है ? अपने शरीर के लिए विशेष आदर की आशा करनेवाले तुम कौन हो? यदि दूसरों के प्रिय, पूज्य या सम्मान्य होने को तुम आशा करते हो, यदि दूसरों से तुम आदर पाने और बहुत कुछ समझे जाने की इच्छा रखते हो, तो पहले तुम्हें क़ीमत देनी होगी।

'दी ज्यूएश' (The Jewess, यहूदिन) नामी नाटक में 'ज्यूएश' ने 'जोज़ेफ' की पूजा का पात्र बनना चाहा। अस्तु, पहले ही तुम्हारी पूजा सही; उसकी पहले पूजा हुई, किन्तु उसे क़ीमत देनी ही पड़ी। यदि प्रकृति, विधान या परमेश्वर तुम्हारा कुछ आदर करता है, यदि तुम्हारे घर में कोई वस्तु भेजी जाती है, तो यह मतलब नहीं है कि 'वह' मूल्य न माँगेगा। यदि हमने पहले से मूल्य दे दिया होता, तो बहुत अच्छा होता, किन्तु अब 'उसने' किताब भेज दी है, और मूल्य का तक़ाज़ा बड़ा कड़ा होगा।

'ज्यूएश' को 'जोज़ेफ़' ने पूजा और उसे मूल्य देना पड़ा। पाँच वर्ष तक वह प्रेमोन्मत्त रही, और बावलेपन में आँय-बाँय-शाँय बकती रही। अज्ञान को दण्ड, मूल्य देना ही होगा।

हर एक उपन्यास या नाटक में जो प्रत्येक नायक (hero) की दशा होती है, वही संसार के संपूर्ण इतिहास में संघटित होती है। इस परिच्छिन्न आत्मा से छुटकारा पाना ही 'क़ानून' अर्थात् विधान है। केवल तभी तुम्हें समुचित प्यार किया जायगा, अन्यथा कदापि नहीं।

इच्छाओं की तृप्ति का उपाय एक है कि इच्छायें त्याग दी जायँ। फ़ारसी में एक सुन्दर शब्द है, जिसे 'मतलब' कहते हैं। इस शब्द का एक अर्थ तो 'कामना' है, और दूसरा अर्थ है 'कभी न माँगो।' यह एक विचित्र शब्द है। वास्तविक

कामनायें, जो आप में हों, उनकी तृप्ति के लिए उन्हें दूर कर देना चाहिए। कामनाओं से ऊपर उठो, व्यक्तित्व से, इस तुच्छ देह से ऊपर उठो।

यह एक दीपक है। पतंगों को दीपक भाता है, वे उसे प्यार करते हैं, और वे आ आकर अपनी देह को उसके सामने भस्म कर देते हैं। एशिया में इस जल जाने को प्रेम का एक चिन्ह समझा जाता है, और लोग कहते हैं, "ये पतंगे दीपक से इतना प्रेम करते हैं कि अपने आप को जला देते हैं।"

वेदान्त कहता है, "नहीं, नहीं, पहले दीपक अपने को जलाता है, और तत्पश्चात् पतंगों से प्यार किया जाता है।"

इसी तरह शरीर से ऊपर उठो, अपने आप इस व्यक्तित्व को जला दो, इसका दाह करो, इसे नष्ट करो, इसे भस्म कर दो, केवल तभी तुम अपनी इच्छाओं को पूरा होते हुए देखोगे, तभी तुम पूजे जाओगे; तभी तुम्हारी कामना के पदार्थ तुम्हारी उपासना करेंगे। दूसरे शब्दों में, 'अपना अहंकार त्यागो।' यह कहना सहज है, किन्तु इसे अमल में लाना चाहिए।

गिर्जाघरों में तुम्हारा काम ईश्वर पूजा से समाप्त नहीं हो जाता; मन्दिरों में अनेक रीतियों को पूरा करने से ही तुम ईश्वर से छुट्टी और स्वाधीनता नहीं पा सकते। ईश्वर की दरबारदारी कर आने से काम न चलेगा। तुम्हें अपने जीवन के हर एक दिन अपना अहंकार भुला देना होगा। अपने मित्रजनों के साथ साधारण व्यवहारों में, बाजार में चीजें खरीदने में, नातेदारों के प्रति अपने सम्बन्धों में, तुम्हें इसका अनुभव करना होगा।

गुणन का पहाड़ा पढ़ने वाले लड़के को गुणन के क़ायदे सिखाये जाते हैं। गुणन के नियम लड़के के चित्त में जम जाते हैं और उसे याद हो जाते हैं। किन्तु इतना ही काफ़ी नहीं होता। उसकी बुद्धि ने गुणन त्रैराशिक जान लिया है, किन्तु तब तक

उसका अभ्यास करना होगा, जब तक उसका उसके साथ मानों तादात्म्य न हो जाय, जब तक वह उसमें पूरा दत्त न हो जाय। जब तक तुम्हें कोई नियम केवल कण्ठाग्र है, तब तक वह केवल तुम्हारे दिमाग़ में है, और तुम प्रायः ग़लतियाँ (भूलें) करोगे। भूलों से तब तक बचाव नहीं हो सकता, जब तक आप सैकड़ों-हज़ारों प्रश्न हल न कर डालें और उन्हें हस्तामलक न कर लें। केवल तभी तुम बिना भूलें किये प्रश्न हल करने के योग्य होगे।

ठीक यही बात, 'परिच्छिन्नात्मा का परित्याग करो', तुम इसे इंजील में पढ़ते हो, और तुम इसे उसी तरह पढ़ते हो, जिस तरह एक लड़का त्रैराशिक सीखता है। किन्तु इतना काफ़ी न होगा, तुम्हें अपने नित्य के सम्पूर्ण व्यवहारों में इसे प्रयोग में लाना होगा, तुम्हें इस पर अपना चित्त एकाग्र करना होगा, इसका बार-बार प्रयोग अभ्यास और करना होगा, स्वार्थ-त्याग द्वारा प्रश्न लगाना होगा।

बच्चों से अपनी बातचीत में इस नियम को लागू करो। सड़क पर चलते समय अहंकार की विस्मृति करो। हँसी-दिल्लगी करते समय इस नियम को काम में लाओ। तुम्हें इस प्रश्न को अवश्य लगाना चाहिए, बार बार इसे जाँचना चाहिए। वेदान्त सीखना सहल काम नहीं है। वेदान्त की पुस्तक का पाठ सुगमता से तुम्हें सुनाया जा सकता है, किन्तु वेदान्त अपने आप ही तुम्हें सीखना होगा। निरन्तर अभ्यास और विवेक से वेदान्त में दक्षता प्राप्त करने से काम हलका हो जाता है।

जब राम गणित-विद्या का अध्यापक (professor) था, तब वह गणित के प्रश्न उतनी ही जल्दी हल कर लेता था, जितनी शीघ्रता से वह उन्हें लिखता था। वे बड़ी सरलता से सुलझाये जाते अथवा विचारे जाते थे। क्यों ? कारण

यह था कि विभिन्न नियमों को राम ने यहाँ तक याद किया था मानो वे उसकी उँगलियों के पोरों पर मौजूद रहते थे। राम का अभ्यास इतना बढ़ा-चढ़ा था कि उदाहरणार्थ १८ अंकों के गुण्यांक (digits) और १७ अंकों के गुणक का गुणन-फल राम तुरन्त एक क्षण में बता देता था। क्योंकर? अभ्यास का बदौलत। इसी तरह तुम्हारा भगवत्-मन्दिर केवल तुम्हारे हृदय में न होना चाहिए। वेदान्त का मन्दिर तो दुकान में है, सड़क पर है, तुम्हारे बिस्तर पर है। इस 'सत्य' के मनन और अभ्यास करने में है, तुम्हारे अध्ययन में है, तुम्हारे भोजनागार में है, तुम्हारे बैठकखाने में है, और तुम्हारे बातचीत करने के कमरे में है। इन मन्दिरों में तुम्हें रहना और सत्य का अनुभव करना होगा। ये वे स्थान हैं, जहाँ तुम्हें अपने महत् प्रश्न को हल करना होगा।

जब राम लड़का था, एक दिन वह सड़क के किनारे एक पुस्तक पढ़ता हुआ जा रहा था। एक भद्र पुरुष आया और राम से दिल्लगी करने लगा। उसने कहा—"तुम यहाँ क्या कर रहे हो? युवक महोदय! यह पाठशाला नहीं है, यहां पुस्तक अलग रखो।" राम ने उत्तर दिया—"सम्पूर्ण विश्व मेरी पाठशाला है।" अब राम समझता है कि तुम्हारी पाठशाला ऐसी होनी ही चाहिए।

यदि प्रतिदिन जीवन में वेदान्त पर अमल नहीं किया जाता, तो वह किस काम का? पुस्तकों में छपा हुआ और कीड़ों से खाये जाने के लिए अलमारी में रक्खा हुआ वेदान्त काम न आवेगा। तुम्हारा जीवन वेदान्त के अनुसार बीतना चाहिए।

वेदान्त 'अग्नि' कहा जाता है। यदि वेदान्त हमारे संकट

और पीड़ा को नहीं दूर करता, तो फिर दैवी अग्नि उस श्रेणी की भी नहीं है, जिसकी कि यह भौतिक अग्नि, जो तुम्हारा भोजन पकाती है, जिससे तुम्हारी भूख बुझती है, और जिससे तुम्हारी सर्दी दूर होती है। यदि वेदान्त तुम्हारी सर्दी नहीं दूर करता, यदि वह तुमको सुखी नहीं बनाता, यदि वह तुम्हारे बोझों को दूर नहीं हटाता, तो उसे ठुकराकर फेंक दो। तुम तभी वेदान्त सीखते हो, तुम तभी उसे प्राप्त करते हो, जब तुम उसे व्यवहार (अमल) में लाते हो।

किसी समय युधिष्ठिर नाम का एक व्यक्ति था। वह भारत के सिंहासन का युवराज था। उसके बचपन की एक कहानी प्रचलित है। अपने छोटे भाइयों के साथ वह पाठशाला में पढ़ता था। उसके बहुतेरे भाई थे। एक दिन बड़े गुरु, परीक्षकजी, उन लड़कों की परीक्षा लेने आये। आचार्यजी ने आकर पूछा कि तुम लोगों ने कहाँ तक पढ़ा है। युवकों ने जो कुछ पढ़ा था, वह गुरु के सामने बता दिया। जब युधिष्ठिर की बारी आई, तब फिर गुरुजी ने वही सामान्य प्रश्न किया, और युधिष्ठिर ने पहली पुस्तक खोलकर हर्ष एवं प्रसन्नता भरे स्वर से बिना जरा भी लज्जित हुए कहा—"मैंने तो वर्णमाला पढ़ी है, और पहला वाक्य पढ़ा है।" गुरु ने पहला वाक्य दिखाकर कहा—'बस, इतना ही?" गुरु ने पूछा—"और भी कुछ तुमने पढ़ा है?" युवराज ने झिझकते हुए कहा—"दूसरा वाक्य।" राजकुमार ने, उस प्यारे छोटे बालक ने तो यह प्रसन्नता-पूर्वक और सहर्ष कहा। किन्तु गुरुजी रुष्ट हो गये, क्योंकि वे उससे अधिक विद्या और अधिक बुद्धि का अधिकारी होने की आशा करते थे, न कि यह घोंघे की सी सुस्ती। गुरुजी ने उसे अपने सामने खड़े होने के लिए कहा। गुरु बड़ा निर्दयी था।

उसने सोचा "छड़ों से काम न लेना लड़के को विगाड़ना है।" (तुम जानते हो कि अध्यापक समझते हैं कि लड़कों पर छड़ियाँ तोड़ डालने से उनका सुधार हो जाता है, और जितनी ही अधिक छड़ियाँ वे लड़कों को पीटने में तोड़ेंगे, उतने ही लड़के सुधरेंगे।) मन की इस अवस्था ने गुरु को अत्यन्त निर्दयी बना दिया था। उसने युवराज को ठोकना और मारना शुरू किया, किन्तु युवराज सावधान रहा। वह पहले की तरह प्रसन्न रहा, वह सदा की भाँति खुश था। गुरु ने कई मिनटों तक उसे पीटा, किन्तु राजकुमार के सुन्दर मुख पर क्रोध या चिन्ता, भय या रंज का कोई चिह्न न दिखाई दिया। तब तो युवराज का चेहरा देखकर गुरुजी को तरस आ गया, मानों पत्थर भी पिघल गया है। गुरु ने विचार किया और अपने मन में कहा, यह बात क्या है? यह बात क्या है कि यह राजकुमार, जो अपने एक शब्द से मुझे बरखास्त करवा सकता है, और जो एक दिन मुझ पर, नहीं, समग्र भारत पर शासन करेगा, इतना शान्त है? मैंने उस पर इतनी कठोरता की, और वह जरा सा भी क्रुद्ध नहीं हुआ। मैंने एक समय अन्य भाइयों पर सख्ती की थी और वे बिगड़ गये थे और उनमें से एक ने तो छड़ी पकड़कर मुझे पीटा था, किन्तु इस युवराज ने तो अपना चित्त प्रसन्न रक्खा। वह प्रसन्न है, शान्ति और अविचलता उसके मुख पर विराज रही है। यकायक गुरु की दृष्टि पहले वाक्य पर पड़ी, जो युवराज ने उस समय पढ़ा था।

आप जानते हैं, भारत में प्रारम्भिक पुस्तकें कुत्तों और बिल्लियों की कहानियों से नहीं शुरू होतीं। भारत में प्रारम्भिक पुस्तकें ईश्वर से, और सदुपदेश से शुरू होती हैं। संस्कृत पुस्तक में वर्णमाला के बाद पहला वाक्य था—"क्रमो

क्षुब्ध मत हो, कभी विकल मत हो, क्रोध मत करो।" दूसरा वाक्य था, "सत्य बोलो, सदा सत्य बोलो।" युवराज ने कहा था कि उसने पहला वाक्य पढ़ लिया है, किन्तु दूसरा वाक्य पढ़ लेने की बात उसने झिझकते हुए कही थी। अब गुरुजी की दृष्टि पहले वाक्य "कभी क्षुब्ध मत हो, क्रोध न करो" पर पड़ी, और फिर उन्होंने युवराज के मुख की ओर देखा। गुरुजी की एक आँख युवराज के चेहरे पर थी और दूसरी आँख पुस्तक के वाक्य पर। अब तो वाक्य का अर्थ उसके चित्त में कौंध गया।

तब तो युवराज के चेहरे ने वाक्य के अर्थ समझा दिये। युवराज का चेहरा पुस्तक में लिखे हुए वाक्य "कभी क्रोध न करो" का अवतार था। युवराज के शान्त, स्थिर, उज्ज्वल, प्रसन्न, सहर्ष और सुन्दर मुख ने "कभी क्रोध मत करो" वाक्य का अर्थ गुरुजी के हृदय में जमा दिया।

अब तक तो गुरुजी वाक्य को केवल रट गये थे, उन्होंने वाक्य का सारांश पहले केवल ओठों से रट रक्खा था। अब उन्होंने जाना कि यह वाक्य केवल तोते की तरह रटने के लिए नहीं है, व्यवहार में भी लाया जा सकता है, कार्य में परिणत किया जा सकता है, और तब गुरुजी ने अनुभव किया कि मेरी विद्या कितनी तुच्छ है! वह अपने मन में लज्जित हुए कि मैंने पहला वाक्य भी (वास्तव में) नहीं पढ़ा है, और जब कि इस युवराज ने उसे वास्तव में पढ़ लिया है। आप समझ सकते हैं कि युवराज के लिए किसी बात का पढ़ना उसे केवल जिह्वाग्र कर लेना नहीं था, किन्तु पढ़ने का अर्थ अमल करना, कार्य में परिणत करना, अनुभव करना, बोध गम्य कर, स्वयं उसका रूप बन जाना था। युवराज के लिए पढ़ने का अर्थ यही था।

ज्यों ही गुरुजी ने पढ़ने का अर्थ समझा, त्यों ही उनके हाथ

से छड़ी गिर पड़ी, उनका हृदय कोमल हो गया। उन्होंने युवराज को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया और उसका मस्तक चूमा। साथ ही उन्हें अपनी मूर्खता का और अपने में व्यावहारिक विद्या के अभाव का यहाँ तक बोध हुआ कि वे लज्जित हो गये और युवराज की पीठ ठोककर उन्होंने कहा, "पुत्र! प्रिय राजपुत्र! कम से कम एक वाक्य ठीक ठीक पढ़ लेने के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कि कम से कम एक वाक्य तो धर्म-ग्रन्थों का तुमने यथार्थ में पढ़ लिया है। अरे! मैं तो एक वाक्य भी नहीं जानता, मैंने तो एक वाक्य भी नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे क्रोध आ जाता है और मैं क्षुब्ध हो जाता हूँ, सड़ी सी भी बात मुझे रुष्ट कर सकती है। ऐ मेरे पुत्र! मुझ पर दया कर, तू अधिक जानता है, तू मुझसे अधिक विद्वान है।" जब गुरुजी ने यह कहा, जब उन्होंने युवराज को उत्साहित किया, तब युवराज ने कहा, "पिता जी! पिताजी! मैंने अभी यह वाक्य अच्छी तरह से नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे अपने हृदय में क्रोध और रोष के कुछ लक्षण जान पड़े थे। जब पाँच मिनट तक मुझे ताड़ना मिली, तब मुझे अपने हृदय में क्रोध के कुछ चिह्न मालूम हुए थे।" इस तरह पर उसने दूसरे वाक्य के अर्थ भी बतला दिये, इस तरह जब वह सत्य बोला, जब कि अपनी आन्तरिक दुर्बलता छिपाने का उसके पास प्रत्येक प्रलोभन था, ऐसे समय पर जब कि उसकी प्रशंसा हो रही थी। अपने अन्तःकरण की गुप्त दुर्बलता को अपनी ही बातों से प्रकट करके युवराज ने सिद्ध कर दिया कि उसने दूसरा वाक्य 'सत्य बोलो' भी पढ़ लिया है। अपने कार्यों से, अपने जीवन द्वारा, उसने दूसरे वाक्य पर भी व्यवहार किया।

पढ़ने की यही विधि है, वेदान्त सीखने की यही शैली है, वेदान्त पर अमल करो, वेदान्त का अभ्यास करो।

अब राम कहता है कि दूसरा कोई तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता, तुम्हें स्वयं अपना उद्धार करना होगा; अपने त्राता हम आप ही हैं। प्रातःकाल जब आप ॐ का उच्चारण करते हो, तब वेदान्त पर अमल करने का, वेदान्त के अभ्यास करने का दृढ़ और प्रबल निश्चय करो। जो कोई भी काम आप अपने ऊपर लो, उसे प्रारम्भ करने से पहले सावधान हो जाओ। नदी में नहाने जाते समय जिस तरह आप तैरने के लिए अपने को तैयार करते हो, उसी तरह जब कोई काम आप शुरू करो, जब आप किसी मनुष्य से भेंट करने जाओ, जब आप किसी व्यक्ति से मिलनेवाले हो, तब पहले अपने को मार्ग के लिए तैयार कर लो। जब आप नदी में नहाने जाते हो, तब जिस तरह अपने कपड़े खोल डालते हो, उसी तरह अपने को इस मिथ्या अहंकार से, इस व्यक्तित्व से, ईश्वर के इस मन्दिर से, नग्न कर लेना चाहिए। अपने को मिथ्याभिमान के नाम से शून्य कर लो, अपने को ईश्वर जानो, और अपने सच्चे आत्मा का अनुभव करो, और हर एक शरीर में ईश्वर को देखने का दृढ़ निश्चय करो। जब किसी मित्र के पास जाओ, या जब कहीं भी आप जाओ, तब तयार होकर जाओ। और जब आप ऐसा करने को प्रस्तुत होगे, तब आप असफल न होगे, आपकी समता ठीक रहेगी, आप सावधान रहोगे, आप कुछ खोओगे नहीं। जब एक काम हो जाय और आप मित्र के घर से लौटो, या जिस किसी से भी मिल कर लौटो, तब फिर अपने को तैयार करो।

जब आपके हाथ मैले हो जाते हैं, तब आप धो डालते हैं। यदि कोई सज्जन या भद्र महिला कपड़ों पर धब्बा देखती है,

तो तुरन्त उन्हें साफ़ करने का यत्न करती है। इसी तरह, ऐसी संगति में समय विताने के बाद जहाँ आपमें व्यक्तित्व और अहंभाव उत्पन्न हुए हों, ऐसे संगियों से अलग होने के बाद तुरन्त ही पहला कर्त्तव्य यह है कि आप अपने हाथ धो डालो, अर्थात् उनसे निर्लिप्त हो जाओ और फिर ईश्वर होकर बैठो।

पुनः जब आप रुष्ट और पीड़ित हों, जब आपकी समता ठीक न रहे, अर्थात् जब आप अस्थिर-चित हों, तब आपको क्या करना चाहिए ? भार समान करने अर्थात् स्थिर चित्त करने की उसी शैली का अनुसरण करो।

कारीगर का तराजू हवा के कारण जब हिल जाता है, तब पलड़े ऊपर-नीचे लहराने लगते हैं। इसका वे लोग क्या इलाज करते हैं ? वे उसे किसी निर्वायु स्थान में रख देते हैं और फिर एक समय आ जाता है, जब धड़ा अपने आप ठीक हो जाता है, पलड़े अचल हो जाते हैं। इसी तरह, जब आपका चित्त व्यग्र या रुष्ट हो जाय, तब अपने को एक कमरे में बन्द कर लो, मित्रों का साथ छोड़कर एकान्त में चले जाओ। समय और एकान्त आपको बलवान बना देंगे। ॐ का उच्चारण करो और वेदान्त का मनन करो, अपने ईश्वर को, अपनी दिव्यता को सोचो और अनुभव करो, और आपको शीघ्र ही अपनी पूर्वस्थिति पुनः प्राप्त होगी, आपका धड़ा बँध जायगा और आप शान्त हो जाओगे।

यदि तुम समझो कि तुम्हारा अन्तःकरण उद्विग्न या कुपित है, यदि तुम्हारी समझ में आये कि तुम्हारा चित्त खिन्न है, यदि क्रोध, वैर, चिन्ता या भय के भाव तुम्हारे चित्त में वर्तमान हों, तो तुम्हें क्या करना चाहिए ? अरे ! तब तुम्हें किसी को अपना मुँह दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। चेचक के दानोंवाला मुख किसी को न दिखाया जाना चाहिए।

तुम्हें अपने को गमनागमन-निषिद्ध स्थान (quarantine) में बन्द कर लेना चाहिए। तुम हैजे से आक्रान्त हो, तुम प्लेग-पीड़ित हो, तुमको कोई संक्रामक बीमारी (Contagious disease) हो गई है, तब समाज में उपस्थित होने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। पहले अपने को चंगा करो, तब बाहर आओ।

अस्तु, यदि किसी महिला या भद्र पुरुष का चेहरा या पोशाक खराब हो जाय, तो वह कभी समाज में सम्मिलित न होगा। इसी तरह, यदि तुम्हारा अन्तःकरण मलिन हो गया है, यदि तुम्हें कोई संक्रामक बीमारी हो गई है, या यों कहिये, यदि तुम्हारी वास्तविक प्रकृति हैजे से पीड़ित है, तो समाज में कदापि मिलो-जुलो नहीं, अकेले बैठो, ॐ उच्चारण करो, ईश्वर का अनुभव करो, और जब तुम ईश्वर को विचारने लगो, जब तुम ईश्वर का अनुभव करने लगो, तभी बाहर आओ।

राम तुमसे कहता है कि जब तुम इस शक्ति का अनुभव करने लगोगे, तब तुम्हें अपने जीवन में एक विशेष अन्तर प्रतीत होगा।

लोग फल खाना चाहते हैं, किन्तु फलनेवाले वृक्ष को ही वे काट डालना चाहते हैं। वे प्रसन्न होना और सुख भोगना चाहते हैं, किन्तु वे जीवन को सत्यव्रती नहीं बनाना चाहते। सुख-भोग और आनन्द केवल तभी किसी व्यक्ति को मिलता है, जब वह अपनी ईश्वर-भावना में रहता है, अपने परमेश्वरत्व में निवास करता है।

लोग चाहते हैं कि उनके शरीरों की पूजा हो, वे अपने क्षुद्र शरीरों के लिए आराम चाहते हैं, किन्तु वे मूल्य देने से भागते हैं। परन्तु इससे काम न चलेगा। आप शहरों में

रह सकते हो, पर भागीरथ श्रम आप अपने भीतर करते रहें। यह सम्भव है, यह आपके अपने तेज पर निर्भर है।

राम आपसे कहता है कि राम भय से, चिन्ता से, रोप से परे है। किन्तु निरन्तर साधन से इसकी प्राप्ति हुई है। निर्बलता और अन्धविश्वास के अत्यन्त गहरे गढ़े से अभ्यास ने राम को ऊपर निकाला है। एक समय राम अत्यन्त अन्ध-विश्वासी था, हवा का हर एक झकोरा राम के चित्त की समता को बिगाड़ देता था। पर अब सर्व अवस्थाओं में चित्त अचल और सम रहता है। यदि एक आदमी ऐसा कर सकता है, तो आप भी कर सकते हैं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

मैं प्रकाश-स्वरूप हूँ

[१३ जनवरी १६०४ को डेनवर, कौलोरेडो में दिया हुआ व्याख्यान]

शुद्धात्मा (सत्यस्वरूप) क्या है ? देह सत्यस्वरूप नहीं है, न चित्त ही असली अपना आप है, न यह प्राण ही वास्तविक आत्मा है। आप कैसे जानते हैं कि दुनिया है ? अपनी चेतना (Consciousness) के द्वारा। आपकी चेतना को भी तीन प्रकार के परिवर्तनों अर्थात् वृत्तियों के अधीन होना पड़ता है। एक जाग्रता-चेतना है, एक स्वप्न-शील चेतना है, और एक गाढ़ निद्रित चेतना भी है। आप-की चेतना ताप-मापक (thermometer) या वात-मापक (barometer) यंत्र के समान है। वह ताप (temperature) यानी संसार की गुरुता (pressure) को मापती है।

जाग्रत् दशा में चेतना सूचित करती है कि संसार ठोस है, कठोर है, अपने कानूनों और नियमों में जकड़ा हुआ है। स्वप्नावस्था में चेतना का निर्णय बिलकुल भिन्न है। किन्तु स्वप्न और निद्रा की अवस्थायें ठीक उतनी ही प्रबल हैं, जितनी कि जाग्रत्-अवस्था की। फिर हम देखते हैं कि आपका निद्रागत अनुभव ठीक उतना ही समय लेता है, जितना कि जाग्रत काल का अनुभव। अपने जीवन में आप उतना ही सोते हैं, जितना जागते हैं। एक बच्चा, मानों, हर समय निद्रित ही रहता है। ऐसा यह अनुभव सारे संसार को होता है। गाढ़ निद्रा या स्वप्नावस्था की चेतना के निर्णय जाग्रत्-अवस्था की चेतना के निर्णय और ज्ञान का पूर्ण रूप से खंडन करते हैं।

अब वास्तविक वस्तु वह है, जो कल, आज और सदा

एकसा हो। सभी को सत्य की यह कसौटी मान्य है। जो स्थिर रहता है, वही वास्तविक है। अधिष्ठान अर्थात् द्रष्टा के स्थिति-बिन्दु से यह चेतना तीन विभिन्न रूप ग्रहण करती है। जाग्रत दशा में यह चेतना देह से अपनी अभेदता स्थापित करती है और जब आप 'मैं' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब आपको इस शरीर, इस देह-चेतना का बोध होता है। स्वप्नशील अवस्था में वह बिलकुल दूसरी ही दशा धारण करती है। आप बदल जाते हैं। स्वप्नशील द्रष्टा वैसा नहीं होता, जैसा कि जाग्रत्-द्रष्टा है। आप अपने स्वप्नों में अपने को निर्धन देखते हैं, यद्यपि आप धनी हैं। आप अपने को शत्रुओं से घिरा हुआ पाते हैं, आपका घर अग्नि से नष्ट हो रहा है, और आप विवस्त्र जाते बचते हैं। अपने स्वप्न में आपने चाहे जितना पानी पिया हो, किन्तु जागने पर आप अपने को प्यासा पाते हैं। स्वप्नशील द्रष्टा जाग्रत-द्रष्टा से भिन्न है। तात्पर्य यह कि चेतना स्वप्न की अवस्था में एक रूप धारण करती है, और जाग्रत्-अवस्था में दूसरा, और गाढ़ निद्रावस्था में तीसरा रूप धारण करती है। आपकी चेतना तब (गाढ़ निद्रा में) शून्यता से अपनी अभेदता स्थापित करती है। आप कहते हैं "मुझको इतनी गहरी नींद आई कि मैंने कोई स्वप्न ही नहीं देखा।" गाढ़ निद्रा की दशा में भी आपमें कोई चीज है, जो बराबर जागती रहती है, जो सोती नहीं, वही आपका वास्तविक आत्मा (स्वरूप) है। वह विषयाश्रित चेतना से पृथक् है, वह शुद्ध चेतना है। वह आपका स्वरूप (अपना आप) है।

एक मनुष्य आता और कहता है, "कल रात को बारह बजे मैं ब्राडवे स्ट्रीट पर था, वहां मैंने किसी को नहीं देखा। उस

समय वहाँ एक भी व्यक्ति नहीं था।" हम उससे कहते हैं कि वह अपना बयान लिख दे कि उक्त सड़क पर अमुक समय पर एक भी व्यक्ति मौजूद नहीं था। वह मनुष्य कहता है कि यह बयान सत्य है, क्योंकि मैं प्रत्यक्षदर्शी गवाह हूँ। तब प्रश्न किया जाता है, "तुम कोई प्राणी हो या नहीं ? यदि यह बयान तुम्हारे प्रमाण पर हम मानें, तो यह आत्मविरोधी है। यह बयान सत्य कैसे हो सकता है, जब आप वहाँ मौजूद थे।"

जब कोई गाढ़तम निद्रा में सोता है, तब जागने पर कहा करता है कि मैंने कोई स्वप्न नहीं देखा। हम कहते हैं—भाई ! तुम यह बयान तो करते हो कि वहाँ कुछ नहीं था, किंतु इस बयान के सही होने के लिए तुम्हें आकर गवाही देना पड़ेगी। यदि आप वस्तुतः ग़ैरहाजिर थे, तो आप यह गवाही कैसे देते हो ? आपमें कोई चीज़ ऐसी है, जो उस गाढ़ निद्रा में भी जागती रहती है। वह आपका वास्तविक स्वरूप (आत्मा) है, वही चेतन स्वरूप और ज्ञानस्वरूप (Absolute will or Absolute consciousness) है।

देखिये, इससे सारे संसार का प्रसार कैसे होता है। नदियों को देखिये। उनकी तीन दशायें होती हैं, एक हिमानी (glacier), दूसरी छोटे चश्मों और नालों वाली। बरफ़ पिघलने पर नदी बहुत ही सूक्ष्म, चंचल और शिशु अवस्था में होती है। तीसरी दशा वह है, जब नदी पहाड़ों को छोड़कर मैदान में उतर आती है, और बड़ी उत्पातिनी हो जाती है, कीचड़ से भर जाती है। यही उसकी तीन दशायें हैं।

पहली दशा में पहाड़ों में, बरफ़ पर, सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई पड़ता। दूसरी और तीसरी में उसमें (सूर्य का प्रतिबिम्ब) दिखाई देता है। दूसरी दशा में नदी जहाज़ या नौका के चलाने के योग्य नहीं होती। वह किसी व्यावहारिक

काम की नहीं होती, तथापि वह बड़ी सुन्दर लगती है। तीसरी दशा में वह नाव या जहाज़ चलाने के योग्य होती है, और खेतों तथा घाटियों को भी उपजाऊ बनाती है। बस, हम देखते हैं कि दो चीज़ें मौजूद हैं, एक सूर्य और दूसरी नदी।

आप में एक सूर्यों का सूर्य है, जो गाढ़ निद्रावस्था में परमेश्वर है। वह सूर्यों का सूर्य जमी हुई बरफ़ पर चमकता है। वह सूर्यों का सूर्य, अचल, अव्यक्त, एवं साक्षी है। जब वह सूर्य सुषुप्तिकाल की शून्य अवस्था पर कुछ समय तक चमकता रहता है, तब मानों आपमें वह सूर्यों का सूर्य अपने को चमकीली, गरमानेवाली हालत में रखता है, और आप के कारण-शरीर को पिघलाता है, तभी उस शून्यता से स्वप्नशील दशा प्रवाहित होती है। यही इंजील कहती है, "परमेश्वर ने शून्य से संसार की सृष्टि की।" परमेश्वर था और वह वही है, जो पहली दशा में शून्य कहा जाता है। जिस तरह सूर्य बरफ़ से नदियाँ पैदा करता है, ठीक उसी तरह जब सूर्यों का सूर्य, जो आपके भीतर परमेश्वर है, देखने-मात्र शून्यता पर (जिसे हिंदू माया कहते हैं) चमकता है, तब उसी समय द्रष्टा और दृश्य पदार्थ बाहर वह निकलते हैं। द्रष्टा के अर्थ ज्ञाता हैं और दृश्य पदार्थ वह है, जो देखा या जाना जाता है।

स्वप्नावस्था का अनुभव जाग्रत्-अवस्था के अनुभव के लिए वैसा ही है, जैसा नन्हा, छोटा सा नाला महान् नदी के लिए है। लोग कहते हैं कि मनुष्य परमात्मा के रूप में बना है। गाढ़ निद्रा में आपमें कोई अहंभाव नहीं होता। किंतु स्वप्न और जाग्रत्-अवस्था में आपमें अहंभाव आजाता है। स्वप्न और जाग्रत्-दशा में आपमें परमेश्वर का प्रतिबिम्ब पड़ता है। असली आत्मा परमेश्वर है, सूर्य है, न कि यह प्रतिबिम्बित सूरत (मूर्ति)। स्वप्न में आप सब प्रकार की

चीजें देखते हैं। (स्वप्न में) किसी वस्तु को देखने के लिए, आपको किस प्रकाश में उसे देखना पड़ता है? क्या वह चन्द्रमा का प्रकाश है या नक्षत्रों का या भौतिक सूर्य का, जो हमें स्वप्न में वस्तुओं को देखने की शक्ति देता है? किसी का भी नहीं। फिर वह कौन-सा प्रकाश है, जो हमें स्वप्न में सब प्रकार की वस्तुयें देखने के योग्य बनाता है? वह आपके अन्दर का प्रकाश है। वह यही प्रकाश है, जो प्रत्येक पदार्थ को दृष्टि-गोचर बनाता है। यह प्रकाश जो स्वप्न में सब प्रकार की वस्तुओं को देखने की शक्ति आपको देता है, केवल गाढ़ निद्रावस्था में स्वच्छन्द रूप से चमकता है। स्वप्न में वही पदार्थों को अवलोकनीय बनाता है। तात्पर्य यह कि बनपुसुप्ति में और स्वप्नावस्था में वह प्रकाश निरन्तर रहता है। स्वप्न में यदि आप चंद्रमा देखते हैं, तो चन्द्रमा और उसकेप्रकाश की स्थिति का कारण भी आपके अन्दर का प्रकाश होत है।

आज यह सिद्ध किया गया है कि तुम प्रकाश-स्वरूप हो, तुम प्रकाशों के प्रकाश हो। जैसा कि नदी के संबंध में जानते हो कि उसके मूल में भी वही सूर्य है, जो उसके मुहाने पर है; उसी तरह असली आत्मा भी तुममें सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत-दशा में एक है। तुम वही हो। अपने को उस अंतर्यामी आत्मा से अभेद कर दो, तब तुम बलिष्ट और शक्ति से पूर्ण हो जाओगे। यदि आप चंचल, परिवर्तनशील वस्तुओं से अपनी अभेदता स्थिर करते हो, तो आप उस लुढ़कते हुए पत्थर के समान रहते हो जिसमें काई या सेवार नहीं जमती। सूर्य केवल एक ही नदी के उत्पत्ति-स्थल, बीच और मुहाने पर नहीं है, किन्तु नियां की भी नदियों की सारी अवस्थाओं में वही एक है।

आपमें जो प्रकाशों का प्रकाश है, वह दुनिया के सभी लोगों की सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थाओं का वास्तविक आत्मा

है। यह प्रकाश उन पदार्थों से भिन्न नहीं है, जिन पर वह चमकता है। आप वही प्रकाशों के प्रकाश हो। इस विचार (ख्याल) पर टिको कि मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। वही मैं हूँ। प्रकाशों के प्रकाश से अपनी अभिन्नता क़ायम करो। वही आपका असली स्वरूप है। कोई डर नहीं, कोई झिड़कियाँ नहीं, कोई शोक नहीं, सर्वत्र वही है। प्रकाशों का प्रकाश, अविच्छिन्न, निर्विकार, कल और आज तथा सदा एकरस। मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। सारी दुनिया केवल लहरें, केवल तरंगें और भँवर मात्र जान पड़ती हैं।

'क्षुद्रात्मा या परिच्छिन्नात्मा' को जो पर्दा तुम्हें घेरे हुए है, उसे हटाने में निम्न-लिखित उपाय बहुत ही उपकारी सिद्ध होता है।

लोग कहते हैं, "सैर करते समय बातचीत के लिए एक मित्र होना चाहिए।" नीचे लिखे कारणों से यह कथन भ्रमजनक और असत्य है:—

प्रथम—जब हम अकेले चलते हैं, तब हमारी साँस स्वाभाविक, तालबद्ध, सुखद और स्वास्थ्यकर होती है। इसी कारण से कांट (Kant) अपने जीवन के अन्तिम भाग में सदा अकेला सैर करता था, ताकि साँस का ताल बराबर बना रहे, और उसने अच्छी दीर्घ आयु पाई भी। जब हम अकेले चलते हैं, तब हम नथनों से साँस ले सकते हैं; किन्तु जब हम बातें करते होते हैं, तब हमें अपने मुख से साँस लेनी पड़ती है। नथनों से साँस लेना सदा शक्तिवर्द्धक होता है, और फेफड़ों को बलवान् बनाता है। परमेश्वर ने मनुष्य के नथनों में साँस फूँकी, मुख में नहीं। हम मुख से साँस बाहर भले निकालें, किन्तु भीतर साँस सदा नथनों से ही हमें खींचना चाहिए। जो हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है, वह नथनों के बालों से छन कर जाती है।

द्वितीय—जब हम अकेले विचरते हैं, तब हमारी विचार करने की वृत्ति अति सुन्दर होजाती है और उत्कृष्ट विचार उस समय मानों हमें खोजने लगते हैं। लॉर्ड क्लाइव को किसी तरह इस रहस्य का पता लग गया था, और भारतीय राजनीति के जब किसी अत्यन्त पेचीदा मसले पर उसे विचार करना होता था, तब वह टहलने लगता था। इस तरह टहलना बुद्धि की वृद्धि में बहुत ही उपकारी होता है। जब हम किसी के साथ चलते हैं, अथवा ऐसे लोगों के साथ चलते हैं, जो सदा अपने विचार बलात् हम पर लादते रहते हैं, तब हम मौलिक और उत्कृष्ट विचारों को अपने पास आने से रोक देते हैं, जो अन्यथा हम पर अवश्य कृपा करते।

तृतीय—आध्यात्मिक स्थिति-विन्दु से। अकेले चलते समय विभाजक शक्तियों और प्रतिकूल (विपरीत) तत्त्वों को चित्त झिटक देता है, और उसे अपने केन्द्र तथा आत्मा की विश्रान्ति रूप भावना का लाभ होता है, स्वयं उसे भोगने का वह सुन्दर अवसर प्राप्त करता है। सम्पूर्ण कार्यव्यूह (शरीर-यंत्र) में तेज एवं बल का संचार हो जाता है।

बस, यह आत्म-सूचना अपने आपको देते रहो कि "मैं आनन्द-स्वरूप हूँ, मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ।" अपनी उच्चतर शक्तियों का उत्कर्ष करने में इस विचार पर ज़ोर देना चाहिए। चाँदनी में या प्रातःकाल चलने में अकथ लाभ हैं, अस्त या उदय होते हुए सूर्य की ओर मुख करके चलो, नदियों के तटों पर सैर करो। जहाँ शीतल पवन के झकोरे आते हों, वहाँ टहलो, तब आप अपने को प्रकृति से एकताल अनुभव करोगे, विश्व से एकताल हो जाओगे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आत्मानुभव की सहायता नं० १

या

प्राणायाम

[ता० ८ मार्च १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान]

आज राम का प्रवचन कुछ उन बातों पर होगा, जिनसे उन लोगों को बड़ी सहायता मिलेगी, जिन्होंने राम के पिछले व्याख्यान सुने हैं। पहले हम प्राणायाम को लेंगे। प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ है 'श्वास (प्राण) का नियंत्रण'। योग पर हिंदुओं की पुस्तकों में प्राण के नियमन की आठ मुख्य विधियाँ दी हुई हैं। किन्तु राम आपके सामने केवल एक विधि भेंट करेगा। जिसे प्राणायाम कहते हैं, और जो प्राण के नियमन की बड़ी महत्त्व-पूर्ण विधि है। आप प्रश्न करेंगे कि प्राण का संयम करने से क्या लाभ हैं? इसके उत्तर में राम केवल यह कहता है, "प्राण (श्वास) के नियन्त्रण की यह विधि सीखो और इसे अमल में लाओ। आपका अपना अभ्यास ही बता देगा कि यह अत्यन्त उपयोगी है।" जब कभी तुम चकराओ, जब कभी तुम्हें विषाद जान पड़े, जब कभी तुम खिन्न हो, जब कभी तुम्हें उदासी जान पड़े, जब कभी तुम्हारा मन मलीन हो, निरुत्साही हो, तब प्राणायाम करो, जिसे राम तुम्हारे सामने अब उपस्थित करने लगा है, और तुम देखोगे कि तुम्हें तुरन्त शान्ति मिल जाती है। प्राण के नियमन की इस विधि का लाभ आपको तुरन्त ही जान पड़ेगा। पुनः जब कभी किसी विषय पर आप लिखना शुरू करो, जब कभी आप

किसी विषय पर विचार करना शुरू करो, और आपको जान पड़े कि आप अपने विचारों को क़ाबू में नहीं ला सकते, तब आप यह प्राणायाम करो, और इससे आपको तुरन्त जो शक्तियाँ प्राप्त होंगी, उन पर आपको विस्मय होगा। हर एक वस्तु क्रमानुसार (ठीक स्थान पर) है। हर एक वस्तु अत्यन्त वांछनीय अवस्था में रक्खी हुई है। प्राणायाम के लाभ ये हैं:— इससे आपके बहुत से शारीरिक रोग दूर हो जायँगे। प्राणायाम से आप पेट के दर्द से, सिर के दर्द से, दिल के दर्द से अच्छे हो सकते हैं। अब हम देखेंगे कि प्राणायाम क्या है? इस देश में लोग इस या उस विधि से प्राण का नियमन करने का यत्न कर रहे हैं, किन्तु राम आपके सामने वह उपाय रखता है, जो समय की परीक्षा में पूरा उतर चुका है, जो भारत में अति प्राचीन काल में प्रचलित था, और जिसका आज भी वहाँ प्रचलन है, तथा अति प्राचीन काल से लगा-कर आज तक जिस किसी ने उसका अभ्यास किया है, उसी ने उसे अत्यन्त उपयोगी पाया है।

अस्तु, प्राणायाम करने के लिए आपको अत्यन्त सुखकर, सरल स्थिति में बैठना चाहिए। एक पाँव दूसरे पर चढ़ाकर बैठना बड़ा ही सुखकर आसन है, किन्तु यह आसन, ऐ पश्चिमी भारत-वासो ! आपको मार डालेगा। इसलिए आप आराम-कुरसी पर बैठ सकते हैं। अपनी देह सीधी रक्खो, रीढ़ की हड्डी कड़ी रक्खो, सिर ऊपर, सीना बहिर्गत, नेत्र सामने रक्खो। दाहने हाथ का अँगूठा दाहने नथने पर रक्खो और बायें नथने से धीरे-धीरे भीतर साँस खींचो। तब तक धीरे-धीरे भीतर साँस खींचते रहो, जब तब तुम्हें आराम मिले। जब तक आराम से खींच सको, तब तक साँस भीतर खींचते रहो। साँस भीतर खींचते समय चित्त को शून्य न होने

दो। साँस भीतर खींचते समय चित्त को एकाग्रता से इस विचार पर जमाओ कि सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ परमेश्वर भीतर खींचा जा रहा है, मानों आप परमात्मा, नारायण, सम्पूर्ण संसार, सम्पूर्ण विश्व को पी रहे हैं। अस्तु, जब आपको समझ पड़े कि आपने अपनी पूर्ण शक्ति भर हवा भीतर भर ली है, तब अँगुली से उसी बायें नथने को बन्द कीजिये, जिससे आप भीतर साँस भर रहे थे; और जब आप दोनों नथने बन्द कर लें, तब मुख से साँस बाहर न निकलने पावे। भीतर खींची हुई साँस अपने अन्दर फेफड़ों में, पेट में, पेडू में रहने दो। सब छिद्र (सूराख, खाली स्थान) हवा से भरे हों, उस हवा से भरे हों, जो आपने भीतर खींची है। और जब साँस से खींची हुई हवा आपके भीतर रहे, तब मन को शून्य न रहने दीजिये, मन इस विचार में, इस सत्य में केन्द्रित (ध्यानावस्थित) रहे कि "मैं परमात्मा हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हूँ, जो विश्व की हर एक वस्तु में व हर एक अणु में, प्रत्येक परमाणु में, भिदा हुआ है, व्याप्त है, परिपूर्ण है।" बस, यही समझो। इस विचार के अनुभव की उपलब्धि में अपनी सारी शक्तियों का प्रयोग करो, अपनी परमेश्वरता को अनुभव करने में अपनी सारी शक्ति लगा दो। ज्यों-ज्यों साँस तुम्हारी देह में भरती जाय, त्यों-त्यों अनुभव करो और समझो कि "मैं सत्य हूँ, मैं वह दैवी शक्ति हूँ, जो सम्पूर्ण विश्व में परिपूर्ण है।" यही समझो। आवश्यकता है कि आप अपने मन को इस पर एकाग्र करें। जब आपको समझ पड़े कि अब आप साँस एक क्षण भी अधिक नहीं रोक सकते, तब बायाँ नथना बन्द रखकर दाहना नथना खोल दीजिये, और दाहने नथने से धीरे-धीरे

क्रमशः साँस बाहर निकालिये। तब भी मन को सुस्त न होने दीजिये, वह काम में लगा रहे। उसे अनुभव करने दो कि ज्यों-ज्यों साँस जा रही है, त्यों-त्यों पेट की सारी मलिनता दूर हो रही है, त्यों-त्यों सारी मलिनता, अशुद्धता, सारी गंदगी, सारी दुष्टता, दुर्गन्धता, सम्पूर्ण अविद्या बाहर निकल रही है, दूर की जा रही है, और त्यागी जा रही है। सारी दुर्बलता कूच कर गई, न कोई दुर्बलता है, न अविद्या है, न भय है, न चिन्ता, न व्यथा, न परेशानी और न क्लेश। सबका अन्त हो गया, सब चले गये, आपको छोड़ गये। जब आप साँस बाहर निकाल चुको, आराम से जितनी साँस बाहर निकाल सकते हो, उतनी जब आप निकाल चुको; तब तक साँस बाहर निकालते रहो, जब तक आप आराम से निकाल सकते हो और जब आपको समझ पड़े कि अब और साँस बाहर नहीं निकाली जा सकती, तब दोनों नथनों को खुले रखते हुए ही यत्न करो कि तनिक भी हवा भीतर न जाने पावे। हाथ नाक से हटा लो, कुछ देर तक हवा को भीतर न जाने दो, जितनी देर तक आपसे ऐसा हो सके उतनी देर तक। और जब तुम्हारे प्रयत्न से हवा नथनों के द्वारा फेफड़ों में न जाने पाती हो, तब भी मन को फिर काम में लगाओ और उसे यह भान करने दो, अपने पूरे बल और शक्ति से उसे यह अनुभव करने की चेष्टा करने दो कि यह परमेश्वरत्व अनन्त है। सम्पूर्ण समय (काल) और स्थान (देश) मेरा अपना विचार है; मेरा सत्य आत्मा, निज स्वरूप, समय, स्थान और कारणत्व (काल, वस्तु और देश) से परे है। अनुभव करो कि यह परमेश्वरत्व देश-काल-वस्तु से परे है, इस दुनिया की किसी भी वस्तु से परिमित नहीं है। वह कल्पनातीत है, विचारातीत

है, वह इन सबसे परे है, प्रत्येक वस्तु से परे है, अपरिमित है, हर एक वस्तु इसमें समाई है, हर एक वस्तु इससे परिमित है, आत्मा या निज स्वरूप सीमाबद्ध नहीं हो सकता। यही अनुभव करो।

इस प्रकार आप ध्यान दें कि इस प्राणायाम में, जितना कुछ अब तक आपके सामने रक्खा गया है, चार प्रक्रियायें हैं—दोनों मानसिक और शारीरिक। पहली प्रक्रिया भीतर साँस खींचने की थी। भीतर साँस खींचने का अंश शारीरिक क्रिया थी। और यह विचार या विचार-विधि अथवा अनुभव करना और समझना कि मैं परमेश्वररूप हूँ, मैं परमेश्वर हूँ, तथा उस परमेश्वरत्व का अनुभव करने में मन को लगाना, उसमें शक्ति को प्रयत्नशील करना, यह विचार तत्सम्बन्धी मानसिक प्रक्रिया थी। फिर जब तक सांस तुमने अपने फेफड़ों में रोक रक्खी, तब तक दो क्रियायें होती रहीं, एक तो साँस को फेफड़ों में रखने की शारीरिक क्रिया और अपने आपको सम्पूर्ण विश्व समझने की मानसिक प्रक्रिया। और तीसरी प्रक्रिया में आपने दाहने नथने से साँस बाहर निकाली, और सारी दुर्बलता दूर कर दी; अपने को परमेश्वरत्व में स्थापित रखने, आसीन रखने, जमे रहने की, कभी कोई दुर्बलता पास न फटकने देने की या कोई आसुरी-प्रलोभन अपने निकट न आने देने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और तदन्तर चौथी प्रक्रिया साँस को बाहर रखने की थी। इस प्रकार प्राणायाम का प्रथमार्द्ध अब तक की इस चौथी प्रक्रिया से हो गया। आधा (प्राणायाम) समाप्त हो गया। यह चौथी क्रिया कर चुकने के बाद आप कुछ विश्राम ले सकते हैं। तब साँस को यथेच्छ अपने नथनों में भरने दीजिये। उसी तरह जल्दी-जल्दी साँस भीतर ले जाइये और बाहर निकालिये

जैसा कि दूर तक चलने के वाद होता है। साँस का यह स्वाभाविक भीतर जाना और वाहर निकलना, जो बहुत शीघ्रता से होता रहता है, स्वतः प्राणायाम है। यह प्राकृतिक प्राणायाम है। इस प्रकार विश्राम लेने के वाद, कुछ देर तक अपने फेफड़ों को भीतर साँस लेने और वाहर निकाल देने के वाद पुनः प्राणायाम करो। अब शुरू करो, वायें से नहीं वल्कि दहिने नथने से। मानसिक क्रिया पूर्ववत्। केवल नथनों में अदल-वदल हो गया। दाहने नथने से साँस भीतर खींचो और ऐसा करते समय समझो कि मैं परमेश्वर को साँस के साथ भीतर खींच रहा हूँ। यथाशक्ति साँस भीतर खींच चुकने के वाद जब तक आराम से हो सके तब तक साँस अपने भीतर रखिये। और फिर जब साँस आपके भीतर रहे, अनुभव कीजिये कि आप सम्पूर्ण विश्व का जीवन और प्राण हैं, आप विशाल विश्व को परिपूर्ण और संजीवित करते हैं। इसके वाद वायें नथने से साँस वाहर निकालिये। उस नथने से साँस वाहर निकालिये, जिससे आपने प्राणायाम के पूर्वार्द्ध में साँस भीतर खींची थी, और समझिये कि आप सारी दुर्वलता, सम्पूर्ण अन्धकार अपने चित्त से निकाल वाहर कर रहे हैं, जैसे सूर्य कुहरा, धुन्ध, शीत, और अन्धकार को मार भगाता है, फिर न कुहरा, न धुन्ध, न अन्धकार और न सर्दी रहती है। तव साँस को अपनी नाक से वाहर रखिये, तथा हर एक क्रिया को वढ़ाने और दीर्घ करने का यत्न कीजिये। सव मिला कर इसमें आठ क्रियायें हैं। पहली चार क्रियाओं से आधा प्राणायाम होता है, और दूसरी चार से प्राणायाम का उत्तरार्द्ध वनता है। इन सव क्रियाओं को यथासाध्य वढ़ाइये और दीर्घ-काल-व्यापी वनाइये। इसमें एक-ताल गति है। जिस तरह लटकन्न (पेंडुलम, pendulum) दोनों ओर

झूलता है, उसी तरह इस प्राणायाम के अभ्यास में आपको अपनी साँस को लटकन जैसा बनाना होता है। तालबद्ध चाल चलाना होता है। तब आप अपने ही अनुभव से देखेंगे कि आपको कितने बल की प्राप्ति होती है। आपके अधिकांश रोग आपको छोड़ देते हैं। यक्ष्मा, पेट के विकार, खून की बीमारियाँ और प्रायः हर एक रोग आपको छोड़ देगा, यदि आप प्राणायाम का ठीक ठीक अभ्यास करेंगे। अस्तु

राम यह भी देखता है कि जब लोग प्राणायाम का अभ्यास शुरू करते हैं, तब उनमें से अधिकांश बीमार पड़ जाते हैं। कारण यह है कि वे स्वाभाविक विधि को ग्रहण नहीं करते। वे इतने सैकिंडों तक साँस भीतर खींचते और बाहर निकालते हैं कि जिससे आप अवश्य बीमार पड़ जायँगे। श्वास-क्रिया के हर एक भाग में आप स्वाभाविक बनिये। हर एक क्रिया को बढ़ाने का प्रयत्न कीजिये, भरसक यत्न कीजिये, किन्तु अपने को थका न डालिये। अधिक काम न कीजिये। यदि केवल पहली दो क्रियायें (अर्थात् भीतर साँस खींचना और उसे फेंफड़ में रखना) करने के बाद आपको थकान जान पड़े, तो रुक जाइये। रुक जाइये, क्योंकि आप किसी से बँधे नहीं हैं। दूसरे दिन अधिक विचार पूर्वक काम कीजिये और पहली या दूसरी क्रिया करते समय अपनी शक्तियों को बचा रखिये, ताकि शेष क्रियाओं को भी आप कर सकें, कुछ विवेक से काम लीजिये।

अस्तु, श्वास के नियंत्रण की उपर्युक्त यही एक अनुकूल विधि है। यह मानो हर प्रकार का शारीरिक व्यायाम है। जो लोग समझते हैं कि इस प्राणायाम में कोई गूढ़ रहस्य है, इसमें कोई दैवी अभिप्राय है, वे गलती पर हैं। जो समझते हैं कि अत्यन्त ऊँचे दर्जे का आत्मानुभव इससे

प्रतिफलित होता है और इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, वे ग़लती पर हैं। प्राणायाम या श्वास के इस नियन्त्रण में कोई अलौकिकता नहीं है। यह एक साधारण व्यायाम है। जिस तरह आप वाहर जाकर शारीरिक व्यायाम करते हैं, उसी तरह यह एक प्रकार की फेफड़ों की कसरत है। इसमें कोई अलौकिक महिमा नहीं है, इसमें कोई गुप्त भेद नहीं है।

प्राणायाम के सम्बन्ध में एक बात और कही जानी चाहिए। जब आप साँस भीतर खींचना या वाहर निकालना शुरू करें, तब अपने पेड़ू (इस शब्द के व्यवहार के लिए राम को क्षमा कीजिये) को, शरीर के अधो भाग को, भीतर की ओर खिचा रखिये। इससे आपका बड़ा हित होगा। पुनः जब आप साँस भीतर खींचें या वाहर निकालें, तब साँस को अपने सम्पूर्ण उदर में दौड़ने और भरने दीजिये। ऐसा न हो कि साँस केवल हृदय तक जाय और हृदय से नीचे न जाने पाये। साँस को नीचे और गहरा उतरने दीजिये। अपने शरीर का प्रत्येक भीतरी रिक्त स्थल, अपने शरीर का समस्त ऊपरी आधा भाग वायु से परिपूर्ण हो जाने दीजिये। अस्तु, प्राणायाम के सम्बन्ध में इतना यथेष्ट है, और वेदान्त की रीति से जो लोग अपने मन को एकाग्र करना चाहते हैं, उन्हें ॐ का उच्चारण (जाप) शुरू करने के पूर्व, वेदान्तिक के साहित्य में पढ़ी हुई किसी विधि पर मन की एकाग्रता आरम्भ करने के पूर्व, प्राणायाम करना अत्यन्त उपयोगी होगा।

अब राम चित्त को एकाग्र करने की एक विधि आपके सामने रक्खेगा। इस काग़ज़ (प्रबन्ध) को अभी पढ़ना शुरू करने की आपको कोई ज़रूरत नहीं है। राम आपको बतायेगा कि इसे कैसे पढ़िये। क्या आप जानते हैं कि यह उनके लिए है, जो राम के व्याख्यानों में आते रहे हैं। जिन्होंने

व्याख्यान नहीं सुने हैं, उनके लिए यह रोचक न होगा, उन्हें इसमें कोई अच्छाई नहीं मिलेगी, तथापि शायद इसके पढ़ने की विधि से उनका भी कुछ हित होगा। वे इस विधि को अपनी निजी प्रार्थनाओं में प्रयुक्त कर सकते हैं। इस कागज़ को अपने साथ ले जाने की भी उन्हें ज़रूरत नहीं है। वे इस विधि को सीख लें और अपनी निजी प्रार्थनाओं में उसका प्रयोग करें। यदि आप समझते हैं कि ये टाइप किये हुए कागज़ किसी काम के हैं, तो आप में से कोई भी इनको अपने व्यवहार के लिए छपवा सकता है। प्रार्थना का यह एक रूप है। यह इस अर्थ में प्रार्थना नहीं है जिसमें परमेश्वर से कोई वस्तु माँगी, चाही या याचना की जाती है। यह इस अर्थ में प्रार्थना है कि यह आपको अपने परमेश्वरत्व का अनुभव करने के योग्य बनाती है। आपमें से अधिकांश के पास 'आत्मानुभव' पर राम-कृत वह लाल पुस्तक होगी। अस्तु, यह प्रबन्ध भी उसी पुस्तक के ढंग का है। यह कागज़, अर्थात् 'सोऽहम्' शीर्षक लेख, जो इस व्याख्यान के अन्त में दिया हुआ है, आप हर समय अपनी जेबों में रख सकते हैं, और जब कभी आपको समझ पड़े कि आपके चित्त की दशा आपके लिए बहुत अधिक विपरीत है, जब कभी आपको जान पड़े कि चिन्ताओं का, परेशानियों का, नित्य के जीवन के फ़िक्रों का बोझ आपको दबाये डालता है, तब इस कागज़ को लेकर एकान्त में बैठ जाइये, और इसे उस प्रकार से पढ़ना शुरू कीजिये, जिस प्रकार राम आज पढ़ कर बतायेगा।

आराम से बैठ जाइये। उसी तरह पर बैठिये, जिस तरह पर आपसे प्राणायाम करने के लिए बैठने को बताया था। आप चाहें तो अपने नेत्र बन्द कर लें, और प्रार्थनात्मक

वृत्ति से प्रारम्भ करें, अथवा अपनी आँखें आधी बन्द रक्खें, जैसा भी आपको भावे।

'बस, केवल एक तत्त्व है ॐ! ॐ!! ॐ!!!' इसे पढ़ो और काग़ज़ को अलग रख दो, उसे वहीं रक्खा रहने दो। 'बस, केवल एक ही तत्त्व है।' आप यह जानते हैं, यही सत्य है। कम-से-कम वे लोग, जिन्होंने राम के व्याख्यानों में जी लगाया है, जानते हैं कि यह सत्य है, और जब आपको विश्वास हो जाय कि यह सत्य है, तब इसे अनुभव कीजिये। 'बस, केवल एक ही सत्य है', भाव-पूर्ण भाषा में यह कहिये, अपने समग्र हृदय से इसे कहिये, इस कल्पना में घुल जाइये। 'बस, केवल एक सत्य है, ॐ! ॐ!! ॐ!!!' अब देखिये यह पद 'बस, केवल एक सत्य है' लिखने के बाद इसके सामने लिखा हुआ है ॐ! ॐ!! ॐ!!! इससे क्या सूचित होता है? इससे सूचित होता है कि आपका दिल भर जाने के बाद, 'केवल एक सत्य है' के विचार में आपका मन डूब जाने के बाद, ये सब शब्द, एक, दो, तीन, चार, पाँच पढ़ने के बदले आप 'केवल एक शब्द ॐ कहें, क्योंकि यही एक शब्द आपके लिए सम्पूर्ण कल्पना को प्रतिपादन करने वाला है। जैसे कि बीजगणित में हम बड़े भागों (अंशों) को य अथवा र, क अथवा ख, या किसी और अक्षर से दिखाते हैं, उसी तरह जब आप यह विचार 'बस, केवल एक सत्य है,' पढ़ चुकें, तब यह नाम ॐ, जो पवित्रों का पवित्र है, यह नाम ॐ जिसमें परमेश्वरत्व या परमात्मा की परम शक्तियाँ हैं, उच्चारण कीजिये, और उसे उच्चार करते समय एक केवल सत्य की कल्पना को हृदय से अनुभव कीजिये। जब आपके ओंठ ॐ उच्चारते हों, तब आपके सम्पूर्ण अन्तःकरण को 'केवल एक सत्य है' की कल्पना का अनुभव करना चाहिए।

किन्तु प्रारम्भ में आपको ये शब्द 'बस, केवल एक सत्य है' सम्भवतः प्रलाप-मात्र हों। वे आपके लिए निरर्थक हों। यदि आपने राम के व्याख्यान नहीं सुने हैं, तो आपको जानना जरूरी है कि 'केवल एक सत्य है', इसका एक मोटा अर्थ आपके लिये होना चाहिए। इसका अर्थ है कि यह सम्पूर्ण दृश्य (विश्व जो हमारे उत्साह को ठंडा कर देता है जो हमारी प्रसन्नता को नष्ट कर देता है), यह सम्पूर्ण भेद-मय दृश्य जगत् सत्य नहीं है, सत्य केवल एक है, और सारी परिस्थितियाँ सत्य नहीं हैं। यह अर्थ है। सत्य केवल एक है, और ये हैरान करनेवाली परिस्थितियाँ सत्य नहीं हैं। जिन्होंने इस प्रयोग की परीक्षा नहीं की है, और अपनी शक्तियों को भय-भीत कर दिया है, केवल वे ही इस एक सत्य के अस्तित्व को अस्वीकार कर सकते हैं। यह सिद्धान्त भी उतना ही प्रयोग करने का है, जितना कि किसी प्रयोगशाला में किया हुआ कोई भी विज्ञान। यह दृढ़ कठोर तथ्य है। जब आप अपने चित्त को गला देते हो, जब आप अपने क्षुद्र मिथ्या अहंकार को परमेश्वरत्व में विलीन कर देते हो, तब क्या परिणाम होता है? परिणाम यह होता है (नज़रथ के ईसा के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये) कि यदि सरसों के बीज बराबर भर भी विश्वास आपमें हो और आप पहाड़ को आने का आदेश दें, तो पहाड़ आ जावेगा। इसी सत्य में आप जियें (जीवन में बरतें), इसी सत्य को अनुभव करें, तब आप देखेंगे कि आपकी सारी परिस्थितियाँ, आपके समस्त समुपस्थित संकट, सारे क्लेश और चिन्तायें, जो आपके सिर पर सवार हैं, ग़ायब हो जाने को लाचार हो जाती हैं। ब्रह्मत्व की अपेक्षा बाहरी व्यापार में आप अधिक विश्वास रखते हैं, आप दुनिया को परमेश्वर से अधिक वास्तविक (सत्य) बना देते

हैं। बाहरी व्यापार के संबंध में आपने मोह-वश अपने को एक जड़ता में परिणत कर लिया है, और यही कारण है कि आप अपने को तरह तरह की बीमारियों और क्लेशों में फँसाते हैं। जब आपका चित्त बहुत गिरा हुआ हो, तब इस कागज़ को उठा लीजिये और अनुभव कीजिये कि 'बस, केवल एक सत्य है,'। देखिये कि यह एक कथन उन सब नाम-मात्र के सत्यों से उच्चतर कथन है, जो संबंधियों के द्वारा आप में धीरे-धीरे भर दिये गये हैं। सब नाम-मात्र तथ्य, जिनको आप तथ्य मानते रहे हैं, माया-मात्र या भ्रम-मात्र हैं। इन्द्रियों के इन्द्रजाल ने आपके लिए इनको बना रक्खा है। इन्द्रियों के चकमे में न आओ। यहां एक व्यक्ति आता है और आपमें दोष निकालकर आपकी आलोचना करता है, दूसरा आता और आपको गालियाँ देता है, तीसरा आता है और आपकी खुशामद करके तथा आपकी प्रशंसा के पुल बांध कर फुला देता है। ये कुछ भी तथ्य नहीं हैं, ये सब सत्य नहीं हैं। असली तत्त्व, कठोर तथ्य तो आपको अनुभव करना ही चाहिए। इसे जपते समय उन सारे विश्वासों को आप उड़ा दीजिये, निकाल डालिये जो कि आपने इन दृश्य रूप परिस्थितियों में बना रक्खे हैं। अपनी सब शक्तियाँ और बल इस तथ्य में लगाओ, बस केवल एक सत्य है—ॐ! ॐ!! ॐ!!! अस्तु, प्रायः आप देखेंगे कि 'केवल एक सत्य है' के विचार का प्रथम पाठ आपको प्रसन्न और प्रफुल्लित कर देगा, आपको सारी कठिनाईयों और व्यथा से मुक्त कर देगा। किन्तु यदि आपकी और आगे पढ़ने की प्रवृति हो, तो आप पढ़ सकते हैं, अन्यथा यदि आप अपनी जेब के उस कागज़ का एक ही वाक्य अमल में ला सकें, तो यथेष्ट है। यदि आप समझें कि आपको कुछ और बल की आवश्यकता

है, तो आप दूसरा वाक्य पढ़िये, 'वह सत्य मैं स्वयं हूँ।' अब वह घर के निकट आ रहा है। 'अरे, मेरा पड़ोसी मुझसे भिन्न नहीं है, मैं वहाँ भी मौजूद हूँ। वह तत्त्व मैं खुद हूँ। ॐ! ॐ!! ॐ!!!' ध्यान करो। कुछ लोग कहते हैं कि जब आप ॐ उच्चार रहे हों, या गा रहे हों, तब आप अपने हाथ बन्द रक्खें। पर किसी तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इस विचार को अनुभव करो। मन को एकाग्र करते समय यह जरूरत नहीं है कि आप अपने को किसी विशेष आसन में रक्खें। कोई बंधन नहीं है। अनुभव करते, महसूस करते और विचार को भीतर धसाने तथा साँस के साथ अन्दर खींचने की चेष्टा करते समय शरीर की परवाह मत कीजिये। 'लोग क्या कहेंगे', इसकी चिन्ता न कीजिये। यदि आपकी गाने की प्रवृत्ति हो, तो गाते रहिये। यदि आपकी लेट रहने की प्रवृत्ति हो, तो फ़र्श पर पड़े रहिये। इस भाव का अनुभव कीजिये। यदि आपके हाथ उस ओर चलते हैं, तो उन्हें चलने दीजिये। शरीर के संबन्ध में कोई प्रतिबंध नहीं है, केवल भाव का अनुभव कीजिये। सर्वशक्तिमान का भाव आता है, उस पर मनन कीजिये। यह कागज़ उनके लिए है, जिन्होंने व्याख्यान सुने हैं। जिन्होंने नहीं सुने हैं, वे अवश्य ही इसे रोचक न पायेंगे। जिन्होंने व्याख्यान सुने हैं, वे जानेंगे कि वास्तविक आत्मा सर्वशक्ति रूप है, परम स्वरूप, सर्व-शक्तिमान् है। इस संबंध में, इस संसार में हर एक बात आत्मा द्वारा हो रही है, जैसे कि इस पृथ्वी पर हर एक बात सूर्य के द्वारा हो रही है। हवा सूर्य के कारण चलती है, घास सूर्य के कारण उगती है, नदी सूर्य द्वारा बहती है, लोग सूर्य के कारण जाग पड़ते हैं, गुलाब सूर्य के कारण खिलते हैं। इसी

तरह आत्मा ही के कारण, सर्वशक्तिमान् परम स्वरूप के ही कारण विश्व में प्रत्येक व्यापार हो रहा है। 'सर्वशक्तिमान्, सर्वशक्तिमान् ॐ! ॐ!! ॐ !!!' इस तरह उन सब सन्देहों को, जो आपको दुर्बल बनाते और पराजित करते हैं, उन सब भ्रान्तियों को, जो आपको कायर बनाती हैं, आपके सामने प्रवेश पाने का कोई अधिकार नहीं है। अनुभव कीजिये कि आप सर्वशक्तिमान् हैं। जैसा आप ख्याल करते हैं, वैसे ही आप हो जाते हैं। अपने आपको पापी कहिये और आप पापी बन जाते हैं, अपने आपको मूर्ख कहिये और आप मूर्ख हो जाते हैं, अपने आपको दुर्बल कहिये, फिर इस दुनिया की कोई शक्ति आपको प्रबल नहीं बना सकती। अनुभव कीजिये कि सर्व-शक्ति और सर्वशक्तिमान् आप हैं।

फिर 'सर्वज्ञ' का भाव आता है। इस सर्वज्ञता के भाव को आप ग्रहण करें, मन को इस भाव पर मनन करने दीजिये, ॐ का गान करने दीजिये। ॐ शब्द सर्वज्ञ का पर्याय है, यही ॐ उच्चारिये। शब्द या सूत्र जिसका उच्चारण होना चाहिए ॐ है। सर्वज्ञ, ॐ, ॐ! इस तरह चलो और उन ग़लत विचारों को, जो आपको मोहित करके जाहिल या मूर्ख बनाये हुए हैं, दूर कर दो। परमेश्वरत्व का सबसे सीधा रास्ता यही है।

ऐसा ही 'सर्वव्यापी' का भाव है। अनुभव करो कि "मैं परिच्छिन्न नहीं हूँ, मैं यह क्षुद्र शरीर नहीं हूँ, मैं यह परिच्छिन्नात्मा नहीं हूँ; यह जीव, यह 'अहं' मैं नहीं हूँ। हर एक अणु और परमाणु में जो व्याप्त और भिदा हुआ है, वह मैं स्वयं हूँ।" इस संबन्ध में तनिक भी सन्देह चित्त में न लाओ। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, वह मैं हूँ, वही हर एक चीज़ में व्याप्त है, सारे शरीर मेरे हैं। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

अस्तु, शेष वाक्यों पर अधिक टिकने वा ठहरने की

राम को जरूरत नहीं है। वे केवल पढ़कर आपको सुना दिये जायँगे। इस विधि का अभ्यास करो और यदि एक ही सप्ताह में आपको ब्रह्मत्व का अनुभव न हो, तो राम को ग़लत समझियेगा।

"मैं पूर्ण स्वास्थ्य-स्वरूप हूँ।"

यदि वह शरीर, जिसे आप मेरा कहते हैं, वीमार है, तो उसे अलग कर दीजिये, उसका ख़्याल न कीजिये. समझिये कि आप पूर्ण स्वास्थ्य-स्वरूप हैं, पूर्ण स्वास्थ्य आपका है। यह अनुभव करते ही शरीर तुरंत अपने आप स्वस्थ हो जायगा। यह रहस्य है। यत्न एवं अभ्यास करने से आप देखेंगे कि यह तथ्य है या नहीं। आपकी परवाह के विना ही शरीर ठीक हो जायगा। आपको इस शरीर के लिए फ़िक्र नहीं करना चाहिए कि 'ऐ परमेश्वर, मुझे अच्छा कर दे।' संस्कृत धर्म-ग्रन्थों में एक सुन्दर वाक्य (मंत्र) है—"नायमात्मा बल-हीनेन लभ्यः।" दुर्बल इस सत्य को नहीं पा सकते। क्या आप नहीं देखते कि जब आप अमेरिका के राष्ट्रपति या किसी सम्राट् के पास जाते हैं, और आप यदि फ़क़ीर बन कर जाते हैं, तो आप दुरदुरा दिये जाते हैं, आप उसके सामने उपस्थित नहीं होने पाते। सो जब आप फ़क़ीरी हालत में परमेश्वर के पास पहुँचोगे, तब आप ढकेलकर बाहर कर दिये जाओगे। समझिये कि 'मैं स्वस्थ हूँ,' और कोई चीज़ मत माँगिये। 'मैं तन्दुरुस्त हूँ', और तन्दुरुस्त आप हैं।

तदुपरान्त दूसरा विचार आता है। 'सम्पूर्ण शक्ति मैं हूँ' इसे मन में रक्खो और ॐ! ॐ!! ॐ!!! उच्चारो—इस तरह कहो 'सर्वशक्ति मैं हूँ'।

तब दूसरा विचार, 'सम्पूर्ण विश्व मेरा संकल्प-मात्र

है।' इसे मानो और इसे पढ़ते समय उन प्रमाणों को ध्यान में लाओ, जिन्हें वेदान्त इस तथ्य को सिद्ध करने में पेश करता है। इस तथ्य को सिद्ध करने में आप जो कुछ भी जानते हो, उसे ध्यान में लाओ, और यदि आपने ऐसी कोई भी बात पढ़ी या सुनी नहीं है, जो यह सिद्ध करती है, कि दुनिया मेरा संकल्प है, तो इस विचार पर विश्वास करो, और आप देखेंगे कि दुनिया आपकी कल्पना-रूप है। 'दुनिया मेरी कल्पना है,' ॐ का उच्चारण करो और ऐसा समझो। इसी प्रकार बाक़ी सब—

सर्व आनन्द मैं हूँ।	ॐ ! ॐ ! ॐ !!!
सर्व ज्ञान मैं हूँ।	" " "
सर्व सत्य मैं हूँ।	" " "
सर्व प्रकाश मैं हूँ।	" " "
निडर, निर्भय मैं हूँ।	" " "
न कोई अनुराग और न कोई विराग।	" " "
मैं सब इच्छाओं की पूर्णता हूँ।	" " "
मैं परमात्मा हूँ।	" " "
मैं सब कानों से सुनता हूँ।	" " "
मैं सब आँखों से देखता हूँ।	" " "
मैं सब मनों से सोचता हूँ।	" " "
जो सत्य मेरा स्वरूप है, साधु उसी को जानने की आकांक्षा करते हैं।	" " "
प्राण और प्रकाश जो नक्षत्रों और सूर्य के द्वारा झलकता है, वही मैं हूँ।	" " "

लो अब काग़ज़ (प्रबन्ध) समाप्त हो गया।

अब इसे स्पष्ट करने के लिए कुछ शब्द कहे जा सकते

हैं। हिन्दू कहानियों में एक बड़ी सुन्दर कहानी है। किसी समय में एक बड़े पंडित, बड़े महात्मा थे। कुछ लोगों को वे पवित्र कथायें सुना रहे थे। ऐसा हुआ कि गाँव की ग्वालिनें पंडित जी के पास से होकर निकलीं, जब कि वे पवित्र कथायें बाँच कर लोगों को सुना रहे थे। इन ग्वालिनों ने पंडितजी के मुख से ये वचन सुने "परम पवित्र परमेश्वर का पवित्र नाम एक बड़ा जहाज है, जो हमें भव-सागर के पार लगा देता है। मानों कि सागर एक छोटा सा सरोवर-मात्र है। बिलकुल कुछ भी नहीं है।" इस प्रकार का कथन उन्होंने सुना। इन ग्वालिनों ने उस कथन को शब्दशः ग्रहण किया। उन्होंने उस कथन में अचल विश्वास स्थापित किया। उस पार अपना दूध बेचने के लिए उन्हें नित्य नदी पार करनी पड़ती थी। वे ग्वालिनें थीं। उन्होंने अपने मन में सोचा। वह पवित्र वचन है, वह ग़लत नहीं हो सकता, अवश्य ही वह यथार्थ होगा। उन्होंने कहा "अब नित्य हम एक एकन्नी मल्लाह को क्यों दें? परमेश्वर का पवित्र नाम लेकर और ॐ का जाप करती हुई हम नदी को क्यों न पार करें? हम नित्य एकन्नी क्यों दें?" उनका विश्वास वज्र के सामन कठोर था। दूसरे दिन वे आईं और केवल ॐ का जाप किया, मल्लाह को कुछ नहीं दिया, नदी पार करना शुरू किया, नदी उतर गईं और वे डूबी नहीं। प्रतिदिन वे नदी पार करने लगीं, मल्लाह को वे कुछ भी नहीं देती थीं। लगभग एक महीने के बाद उस उपदेशक के प्रति जिसने वे अमूल्य वचन सुनाये थे और उनका पैसा बचाया था, अत्यन्त कृतज्ञता का भाव उनमें उदय हुआ। उन्होंने महात्मा को अपने घर पर भोजन करने का निमन्त्रण दिया। अस्तु, निमन्त्रण स्वीकृत हुआ, नियत तिथि पर महात्मा को उनके घर पधारना पड़ा। एक ग्वालिन महात्मा को लिवाने आई। यह

ग्वालिन जब महात्मा को अपने गाँव लिये जाती थी, तब वे नदी पर पहुँचे। ग्वालिन तो एक पल में दूसरे तट पर पहुँच गई और महात्माजी उसी पार खड़े रह गये, वे उसके साथ न जा सके। कुछ देर में ग्वालिन फिर लौट आई और महात्मा से विलम्ब का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि मैं मल्लाह की राह देख रहा हूँ। मल्लाह को मुझे दूसरे तट पर ले जाना चाहिए। ग्वालिन ने उत्तर दिया, "महाराज! हम आपकी बड़ी कृतज्ञ हैं। आपकी कृपा से हमारे पैंतीस आने बच गये, और केवल पैंतीस ही आने नहीं, किन्तु अब तो हमें आजीवन मल्लाह को पैसा न देना पड़ेगा। आप स्वयं भी रुपया क्यों नहीं बचाते और हमारे साथ उस पार नहीं चले चलते? आपके उपदेश और शिक्षा से ही हम, बिना कोई हानि या क्षति उठाये, उस पार चली जाती हैं। आप स्वयं भी उस किनारे पर जा सकते हैं।" महात्मा ने पूछा—वह कौनसी शिक्षा थी, जिससे तुम लोगों का पैसा बच गया। ग्वालिन ने महात्मा को उस वचन की याद दिलाई, जो उन्होंने एक बार कहे थे कि भगवान् का नाम एक जहाज है, जो हमें भव-सागर के पार उतारता है। महात्मा ने कहा, बिलकुल ठीक है, बहुत ठीक है, मैं भी उस पर अमल करूँगा। उसके अन्य साथी भी थे। (चले न जाओ, अब कथा का रोचक भाग आता है) एक बड़ा लम्बा रस्सा पड़ा था। उसने वह रस्सा अपनी कमर में बाँध लिया, और रस्से का बाक़ी हिस्सा साथियों से अपने पास रखने को कहा, और बोला कि परमेश्वर का नाम लेकर मैं नदी में फाँदता हूँ, केवल विश्वास पर नदी के पार जाने का साहस करूँगा, किन्तु देखना कहीं मैं यदि नदी में डूबने लगूँ, तो मुझे घसीट लेना। महात्मा नदी में कूद पड़ा, कुछ पग आगे बढ़ने पर वह

डूबने लगा। तब साथियों ने उसे बाहर निकाल लिया। अब तनिक ध्यान दीजिये। इस प्रकार की श्रद्धा जैसी महात्मा में थी, यह ऊपरी श्रद्धा जैसा विश्वास उत्पन्न करती है, वह रक्षा का बीज नहीं हो सकती। आपके दिलों में तो कुटिलता है। जब आप ॐ उच्चारना शुरू करते हैं या परमेश्वर का नाम लेते हैं और कहते हैं, मैं स्वास्थ्य हूँ, स्वास्थ्य हूँ', पर अपने हृदयों के हृदय में काँपते हैं, आपके हृदयों के हृदय में वह तुच्छ काँपता, हुआ 'अगर' 'मगर' मौजूद रहता है कि 'अगर मैं डूबने लगूँ, तो मुझे बाहर निकाल लेना'— आपमें वह क्षुद्र हिचकिचाता 'अगर' है। आपके चित्त में कोई पक्का विश्वास, निश्चय, श्रद्धा एवं प्रतिज्ञा नहीं है। यह एक तथ्य है कि संसार के सारे भेद भाव, परिस्थितियाँ मेरी सृष्टि हैं, तथा मेरी ही करतूत हैं, इसके सिवा कोई चीज़ नहीं हैं। आप परमेश्वर हो, प्रभुओं के प्रभु हो। ऐसा आप समझो। इसी क्षण इसे अनुभव करो। दृढ़, अचल विश्वास रक्खो। ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त करो। आप देखेंगे कि आज बताये हुए ढंग से नित्य इस पत्र को पढ़ने से आप को बाँधनेवाले सारे 'अगर-मगर' दूर हो जायँगे। अपने परमेश्वर भाव से निरन्तर अपने आपका सम्पर्क रखने से तुच्छ 'यदि' से छुटकारा हो जायगा। यदि पाँच बार नहीं, तो कम से कम नित्य दो दफ़े इस काग़ज़ को पढ़ो, और आपके सब क्षुद्र 'अगर' 'मगर' निकल भागेंगे।

राम अब व्याख्यान बन्द करता है। और आपमें से जो लोग कुछ सामाजिक बातचीत राम से करना चाहते हैं, वे यह आसन छोड़ चुकने के बाद, ऐसा कर सकते हैं। यह आसन राम ॐ, ॐ, ॐ, उच्चारने के बाद छोड़ेगा।

एक शब्द और। आपमें से जिन लोगों ने ये व्याख्यान

नहीं सुने हैं, और इसलिए राम के इस व्याख्यान को नहीं समझ सके हैं, वे इस सम्पूर्ण वेदान्तिक तत्त्वज्ञान को पुस्तक के रूप में अत्यन्त दार्शनिक ढंग से प्रकाशित पायेंगे। सम्पूर्ण वेदान्त-दर्शन आपके सामने पेश किया जायगा। तथा एक शब्द और भी। जितने संदेह वेदान्त-दर्शन के सम्बन्ध में आपके मन में हैं, अभी आपमें जितनी आशंकायें हैं, वे ही सब संदेह और संशय एक समय स्वयं राम के मन में थे। आपके अनुभव और आपके सन्देह स्वयं राम के संदेह हैं। राम इन रास्तों में से होकर निकल चुका है, और आपको विश्वास दिलाता है कि हमारे सब सन्देह उल्टे अज्ञान जन्य हैं। ये सब सन्देह क्षणस्थायी हैं, वे एक पल में उड़ सकते हैं। यदि आपमें से कोई अपने सन्देहों के संबंध में राम से विशेष वार्तालाप करना चाहता है, तो वह कर ऐसा सकता है।

पुनः यह कहा जा सकता है कि यदि आप आपत्तियों से छूटना चाहते हैं, पूर्ण आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, अपनी मुक्ति को फिर पाना चाहते हैं, आत्मानुभव को प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको वेदान्त का अनुभव होना चाहिए। अन्य कोई मार्ग नहीं है। आपके सारे मत, आपके सारे सिद्धान्त, आपके सब अनुभव, केवल वेदान्त को पहुँचाते है। वही केवल परम सत्य का पथ-प्रदर्शक है। ये आशा-जनक लक्षण हैं, बहुत अच्छे चिह्न हैं कि हाल में अमेरिका में जिन सम्प्रदायों का श्रीगणेश हुआ है, उनमें से अत्यधिक वेदान्त को सम्मिलित और ग्रहण कर रहे हैं। वे उसे (वेदान्त को) अपने व्यवहार में ला रहे हैं। उन्हें इसका ऋण स्वीकार करने की जरूरत नहीं है। ईसाई-विज्ञान, नवीन विचार, आध्यात्मिकता या दैवी विज्ञान इत्यादि—ये लोग, जो वेदान्त ग्रहण कर रहे हैं, परमेश्वर रूप हैं। अमेरिका के लिए

ये अति आशा-पूर्ण लक्षण हैं। किन्तु राम आपसे कहता है कि यदि आप सत्य को उसके पूर्ण प्रताप और सौन्दर्य के साथ प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदान्त उपस्थित है। आप इसका चाहे जो नाम रख लें, किन्तु इन हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में वे (ऋषि) इसे अति सुस्पष्ट और स्वच्छ भाषा में उपस्थित कर गये हैं। यह सर्वश्रेष्ठ सत्य है कि 'आप परमेश्वर हो, प्रभुओं के प्रभु हो।' यही समझो, यही अनुभव करो, और फिर आपको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता, आपको कोई भी चोट नहीं पहुँचा सकता, आप प्रभुओं के प्रभु हो। 'दुनिया मेरा संकल्प है, मैं प्रभुओं का प्रभु हूँ।' यह सत्य है। यदि आप ऐसी बातें सुनने के अभ्यासी नहीं हैं, तो भय न मानिये। यदि आपके पूर्वजों का इसमें विश्वास नहीं था, तो क्या हुआ? आपके पूर्वजों ने अपनी पूर्ण शक्ति से काम लिया, आपको अपनी पूर्ण शक्ति काम में लाना चाहिए। आपकी मुक्ति, आपके पूर्वजों का उद्धार आपका अपना काम है। वेदान्त को ग़ैर न समझो। नहीं, यह आपके लिए स्वाभाविक है। क्या आपकी निजी आत्मा आपके लिए ग़ैर है? वेदान्त आपको केवल आपकी आत्मा और स्वरूप के संबंध में बताता है। यह तब ग़ैर हो सकता था, जब आपका अपना ही आत्मा आपके लिए ग़ैर होता। समस्त पीड़ायें शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक—वेदान्त का अनुभव करने से तुरन्त रुक जाती हैं, और इसका अनुभव कठिन काम नहीं है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सोऽहम्

[ता० १० जून १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान ।]

यह एक बड़ा ही उपयोगी मंत्र है, जिससे हर एक को परिचित होना चाहिए। वह है 'सोऽहम्' (Soham) । अंग्रेजी भाषा में 'सो' का अर्थ है 'ऐसा', किन्तु संस्कृत भाषा में 'सो' का अर्थ है 'वह', और 'वह' का अर्थ सदा परमेश्वर या परमात्मा होता है। इस तरह 'सो' शब्द का अर्थ परमेश्वर है। भारत में स्त्री अपने पति का नाम कभी नहीं लेती। उसके लिए दुनिया में केवल एक पुरुष है, और वह (एक पुरुष) उसका पति है। वहाँ स्त्री सदा अपने पति को 'वह' कहती है, मानो समग्र विश्व में कोई और व्यक्ति मौजूद ही नहीं । फलतः, उसके लिए 'वह' सदा परमेश्वर है, वही परमेश्वर सदा उसके विचारों में है। इसी तरह वेदान्ती के लिए 'सो' शब्द का अर्थ सदा परमेश्वर या परमात्मा है। मेरा स्वरूप केवल एक सत्य-मात्र है, यह विचार निरन्तर चित्त में रहना चाहिए।

हम् (ham) का अर्थ फ़ारसी भाषा में 'मैं' है। एच (*h*) को निकाल दो और वहाँ आई (*i*) को बैठा दो और हमें सो-एम-आई (So-am- I) 'वह मैं हूँ' की प्राप्ति हो जाती है। परमेश्वर मैं हूँ, परमात्मा मैं हूँ, और परमेश्वर ही सदा मेरे द्वारा व्यक्त हो रहा है, क्योंकि सब वही है। ॐ भी इसमें समावेशित है । सोऽहम् (Soham) में से एस और एच (S and h) को निकाल दो, हमें ॐ (Om) मिलता है। सोऽहम् श्वास से निकलने वाली स्वाभाविक ध्वनि है। बस, इस शब्द की पूर्ण महिमा हर समय

निरन्तर हमारे मन में रहना चाहिए। साँस को ताके रहो और इस 'सोऽहम्' मंत्र के द्वारा उसे सुरीली बनाओ। यह एक मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक व्यायाम है। साँस लेने में दो क्रियाओं का समावेश है, भीतर जाना और बाहर निकलना, साँस लेना और साँस निकालना। साँस भीतर लेते समय 'सो' शब्द बनता है, और साँस बाहर निकालते समय 'हम्' शब्द। कभी-कभी अभ्यास प्रारम्भ करनेवाले को 'ओ३म्' की अपेक्षा 'सोऽहम्' जपना (उच्चारना) बहुत सहज पड़ता है। यह दोनों को आलिंगन करता है। जब धीमे-धीमे इसका उच्चारण कर रहे हो, तब इस पर विचार करो, भीतर-ही-भीतर और चित्त से इस पर मनन करो, किन्तु इस बीच में बराबर बिलकुल स्वाभाविक रीति पर साँस लेते रहो। यह सच्चे प्रकार की आत्म-सूचना है, जो मनुष्य को इन्द्रियों के सम्मोहन से हटाकर परमेश्वरत्व में लौटा ले जाती है। वही हूँ मैं। विश्व में हर समय तालबद्ध गति हो रही है। संस्कृत में 'सो' शब्द का अर्थ सूर्य भी है। सूर्य हूँ मैं। मैं प्रकाश का देनेवाला हूँ, मैं लेता कुछ नहीं हूँ, पर देता सब कुछ हूँ। मैं दाता हूँ और लेनेवाला नहीं हूँ। मान लीजिये कि हम दूसरों से बहुत ही रूखी चिट्ठियाँ और डाही पुरुषों की कठोर आलोचनायें पाते रहते हैं। तो क्या इससे हमें दुखी और हैरान तथा परेशान होना चाहिए? नहीं। अपनी परमेश्वरता में क्षोभरहित हो चैन से रहो। जो आपको सबसे अधिक हानि पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं, उनका कृपापूर्ण और प्रेममय चिन्तन करो। वे तुम्हारे अपने स्वरूप हैं, और अपने निजी स्वरूप के लिए आप केवल अच्छे विचार रख सकते हैं। मैं सूर्यों का सूर्य हूँ। प्रकाश, प्रताप, शक्ति मैं हूँ। मुझे कौन हानि पहुँचानेवाला है? मेरा अपना आप मेरे अपने आप

को हानि नहीं पहुँचा सकता । यह असम्भव है । दूसरों की क्षुद्र मिथ्या सम्मतियों से ऊपर उठो । परमेश्वर को सदा अपने द्वारा बोलने, सोचने और कार्य करने दो, अपनी परमेश्वरता में शान्ति से चैन करो। मैं सूय हूँ, दुनिया को प्रकाश देनेवाला हूँ।

पूर्ण शक्ति का अनुभव करो । आप देखते हैं कि हमारी सारी कठिनाइयों का कारण 'अहं', परिच्छिन्न अपने क्षुद्र 'अहं' का सत्कार है। यही विचार है, जो हमें दुर्बल करता और मार डालता है। इस रोग को दूर करने के लिए किसी किसी व्यक्ति या हर एक व्यक्ति को स्वभावतः एक कमरे में बैठना पड़ता है, और वहाँ रोना या विलपना, अपनी छाती पीटकर यह कहना होता है "निकल शैतान, निकल, निकल शैतान, निकल ।" अपने को ऐसी हालत में लाओ कि मानो आपकी यह देह कभी पैदा ही नहीं हुई थी। आप तो परमेश्वर हो, आप यह (देह) नहीं हो। यदि आप अपने आपको देश-काल के अन्दर क़ैद रखते हो, तो दूसरे लोगों के विचार और दूसरे मनुष्यों की आलोचनायें आपको तंग करेंगी। यह देह जिसे आप संबोधन कर रहे हो, एक व्यामोह (hallucination) है। मैं परमेश्वर हूँ। क्या आप इस पर ध्यान देते हो ? मिथ्या सम्मतियों की अपेक्षा वास्तविकता में अधिक विश्वास करो, परमेश्वर आप निःसंशय हो। बुरे विचारों और प्रलोभनों को आपकी पवित्र उपस्थिति में आने का कोई हक़ नहीं है। क्या अधिकार है उन्हें आपकी मौजूदगी में प्रकट होने का ? आप पवित्र पुनीति हो, यह अनुभव करो। रोग फिर कहाँ है ? किसी से कोई आशा न करो, किसी से मत डरो, अपना कोई उत्तरदायित्व न समझो । कर्त्तव्य में बँधकर अपने काम को मत करो। कर्त्तव्य क्या है ? कर्त्तव्य आपकी अपनी

रचना है। एक श्रेष्ठ राजकुमार की भाँति अपना काम करो। हर एक चीज़ आपके लिए खेल की-सी सरल होना चाहिए। अपने सामने का काम प्रसन्नता से, स्वच्छन्दता से करो।

रोग दो प्रकार के हैं। भारतीय भाषा में हम उन्हें आध्यात्मिक (भीतरी) रोग और आधिभौतिक (बाहरी) रोग कहते हैं। एक दूसरे रूप में वे हैं शैतानी रोग (demon disease) और दैवी रोग (fairy disease), विकट रोग और नारी-रोग। इसका क्या अर्थ है? देखो, मायिक या नारी-रोग वह है, जो हमारे भीतर से उठता है। हमारे भीतर की इच्छायें, हमारी आकांक्षायें, हमारे अनुराग, हमारी लालसायें मायिक या नारी-रोग हैं। और विकट रोग या यथार्थ रोग वे हैं, जो दूसरों के कार्यों या प्रभावों से हमें प्राप्त होते हैं। अस्तु, किसी मनुष्य को नीरोग कैसे किया जाय? लोग कहते हैं, पुरुष-रोग जिसे आधिभौतिक रोग, दानव रोग, या बाहरी रोग भी कहते हैं, उसके सम्बन्ध में अपने आपको परेशान मत करो। जिस क्षण आप अपने आपको अपनी निर्बलकारिणी इच्छाओं से रहित कर लेते हैं, जिस क्षण आप अपना पिंड उनसे छुड़ा लेते हैं, उसी क्षण तुरन्त बाहरी रोग आपको छोड़ देते है। किन्तु इस दुनिया में लोग एक भूल करते हैं, वे अपने निजी कर्तव्य को नहीं देखते। वे कठिनाई के उस भाग पर नहीं ध्यान देते, जिसकी सृष्टि उन्हीं की इच्छाओं से होती है। वे पहले बाहरी भयों से लड़ना शुरू करते हैं, और वे ग़लत जगह से शुरू करते हैं, वे पहले परिस्थितियों से लड़ना चाहते हैं। वे नर-रोग को, जो रोग दूसरों के प्रभाव द्वारा आता है, हटाना चाहते हैं। वेदान्त कहता है कि आपकी इच्छायें आपकी अपनी कमजोरियाँ हैं, पहले इनको दूर करो, फिर हर एक बात का निर्णय

आपके लिए सरल कर दिया जायगा। देखो आपमें एक नारी-भाग है। यही बाहरी प्रभावों को आकर्षित करता है। जैसे कि जब किसी कुत्ते के मुँह में मांस का एक टुकड़ा होता है, तब दूसरे कुत्ते आकर उसके लिए रार ठानते हैं। जब आप अपनी कमजोरी या नारी-रोग से छूट जायेंगे, तब नर-रोग आपको तुरन्त छोड़ देगा। अभी इस नारी या मायिक रोग की प्रकृति की अधिक व्याख्या की जानी चाहिए। यहां एक व्यक्ति है। यदि वह पूर्णतया शुद्ध है, यदि वह सब प्रलोभनों से अपने आप को पूर्णतया परे और अपने अन्तगत परमेश्वरत्व का अनुभव कर सकता है, तथा यह कहने के लिए तैयार है "शैतान मेरे पीछे जा, मैं तुझसे कोई वास्ता नहीं रख सकता," तो राम उससे एक बात कहता है। उस मनुष्य को इस दुनिया में किसी भी व्यक्ति की इच्छायें, किसी के भी विचार, इस दुनिया के किसी भी व्यक्ति की बुराईयाँ या प्रलोभन कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। कोई भी शक्ति उसे तंग या तनिक भी नीचा नहीं दिखा सकती, क्योंकि वह आप पूर्णतः आसुरी या नर-रोग से मुक्त हो चुका है। जिस क्षण हम अपने को दुर्बल बनाते हैं और शारीरिक भोगों की इच्छा करने लगते हैं, तब क्या होता है? सभी शत्रुओं के बुरे विचार इस या उस प्रलोभन का रूप धारण करते हुए हमें भक्षण करते हैं। यदि आप शांति और पूर्ण आनन्द भोगना चाहते हैं, यदि आप अपने ईश्वरत्व का अनुभव करना चाहते हैं, तो आपकी अधम प्रकृति की मृत्यु अवश्य होना चाहिए। इस मृत्यु में जीवन है, इसी मृत्यु में जीवन है। अब यहाँ अपने आपको परमेश्वर समझो। अपने को स्वाधीन करो। और इस काम को करते समय ठंडे दिमाग से धीरे-धीरे और निर्भय वृत्ति से काम लो।

मैं कोई इच्छा नहीं करता। मुझे कोई आवश्यकता, कोई भय, कोई आशा, कोई उत्तरदायित्व नहीं है।
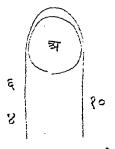
यह 'अ' चक्र एक चरखी है, और इस चरखी पर एक बड़ा सुन्दर रेशमी तागा लटका हुआ है, और इस रेशमी तागे के सिरों में दो बांट बँधे हैं, जिनमें से एक १० सेर और दूसरा ६ सेर का है। अब इस ६ सेर के बांट में हम दूसरा ४ सेर का बांट जोड़ते हैं। ६ सेर में चार सेर जोड़ने से १० होते हैं। सो अब एक तरफ़ दस सेर और दूसरी तरफ़ भी १० सेर हो गये। दोनों पलड़े बराबर। वे बिल्कुल नहीं डिगेंगे। अस्तु, अब मान लीजिये कि हमने चार सेर का बांट हटा लिया और तब एक ओर १० सेर और दूसरी ओर ६ सेर रह गये। बांट बराबर नहीं हैं। परिणाम क्या होगा? १० सेर वाला नीचे चला जायगा, और ६ सेर का ऊपर उठेगा। एक पल के बाद हम यह चार सेर का बांट ६ सेर के बांट में फिर जोड़ देते हैं। हम फिर दोनों बोझ दोनों तरफ़ समान कर देते हैं। तब क्या परिणाम होगा? बहुत से लोग कहेंगे कि पलड़े बराबर सध जायेंगे, किन्तु बात ऐसी नहीं है, वे डोलते रहेंगे। पहली दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि बोझों के बराबर होते ही या एकाध पल के बाद गति अवरुद्ध हो जायगी।

जब राम ने इस विषय पर विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिया, तब सभी विद्यार्थी कहने लग पड़े कि गति रुक जायगी, किन्तु जब उन्हें प्रयोग दिखाया और समझाया गया, तब उनकी आँखें खुलीं। जब बाँट बराबर कर दिये गये, तब भी पलड़े हिलते डुलते रहे, रुके नहीं। इस तरह प्रारम्भ में हम समझते हैं कि यदि दोनों ओर के बाँट बराबर कर दिये जावेंगे, तो वे ठहर जायँगे, पहले की सी शान्ति कायम हो जायगी। एक बार जब गति शुरू हो जाती है, तब फिर दोनों ओर बोझ बराबर कर देने पर भी हिलना-डुलना रोका नहीं जा सकता। यदि हम दोनों ओरवाले ६ सेर और १० सेर के बाँटों को दो पल तक काम करने दें, और दो पल के बाद हम चार सेर का बाँट फिर जोड़ दें, तो दोनों तरफ़ बांट बराबर हो जाने पर भी गति सधेगी नहीं, रुकेगी नहीं। इसी तरह यदि तीन पल के बाद हम बोझ बराबर करें, तो भी गति रुकेगी नहीं। पहले पल के अन्त में हमें एक अन्तर दिखाई देता है। मानो बोझों की तेज़ी या चाल प्रतिपल ४ फ़ुट होती है। अब यदि असमान बांट एक पल हिलते रहे, तो परिणामभूत वेग ४ फ़ुट होगा, और यदि असमानता दो पल तक बनी रही, तो परिणामभूत वेग ८ फ़ुट होगा और यदि असमान बाँटों को निरन्तर तीन पल तक काम करने दिया जाय, तो वेग १२ फ़ुट होगा, और ४ पल के अन्त में वह १६ फ़ुट होगा, इत्यादि। हम देखते हैं कि यदि बाँट असमान रक्खे जाते हैं, तो परिणाम यह होता है कि प्रत्येक पल के अन्त में गति की तीव्रता में अन्तर पड़ जाता है, गति की मौलिक तीव्रता (original velocity) में ४ फ़ुट का योग होता जाता है। इस तरह गति अपनी ४ फ़ुट की वृद्धि प्रतिपल प्राप्त करती रहती है। जो तीव्र गति अब तक प्राप्त हो चुकी है, वह वह

बनी रहती है। हम देखते हैं कि यदि बाँट शुरू में, गति आरम्भ होने के पूर्व ही बराबर कर दिये जाते हैं, तो बाँट बराबर होने के कारण स्थिरता बनी रहती है। यदि बाद में ४ फ़ुट की तेज़ चाल चुकने के बाद समान किये जाते हैं, तो बाँटों की समानता चाल की तेज होने वाली वृद्धि रोक देगी, और यदि दूसरे पल के अन्त में बाँट बराबर किये जाते हैं, तो परिणाम यह होगा कि हाथ लगी चाल ८ फ़ुट रहेगी और इस तीव्र गति में और वृद्धि न होगी, और तीसरे पल के अन्त में लब्ध तीव्र गति १२ फ़ुट होगी, तथा और आगे चाल में वृद्धि न होगी। पहले पल के अन्त में चाल की तरक़्क़ी वेग-वृद्धि (acceleration) कहलाती है। किन्तु यहाँ हम एक दूसरी ही बात देखते हैं। जब दोनों ओर बाँट एक समान कर दिये जाते हैं, तब पलड़ों पर प्रभाव डालने को कोई शक्ति नहीं रह जाती। यदि पलड़ों पर कोई शक्ति (भार) प्रभाव न डालती हो, तो विश्राम या प्रगति की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं उत्पन्न किया जा सकता। विश्राम या प्रगति (हरकत) में कोई परिवर्तन पैदा नहीं होता है। वहाँ पहले की स्थिरता रहेगी यदि हम भार एक ओर १० सेर तथा दूसरी ओर १० सेर कर देते हैं, और यदि बाँटों में एक पल भर प्रगति रही है और तब बाँट बराबर किये गये हैं, तो इस क़ानून के अनुसार शुरू की प्रगति बनी रहेगी। इससे मौलिक स्थिरता या पहले से प्राप्त वेग रुकता नहीं है, किन्तु बाँटों की समानता वेग में आगे और परिवर्तन न होने देगी। इस तरह यदि दूसरे पल के अन्त में हम बाँट समान कर देते हैं, तो पहले से प्राप्त वेग वही बना रहेगा। इसी तरह तीसरे पल के अन्त में बाँटों की समानता पहले से प्राप्त १२ फ़ुट की तीव्र गति के वेग में और कोई परिवर्तन न होने देगी।

अब हम आत्मानुभवी मनुष्यों के विषय पर आते हैं। आत्मानुभव दोनों ओर के बाँटों की समानता-मात्र है। आत्मानुभव बोझों को बराबर करता है, आपके अन्दर की असमानता को निकाल देता है। वह (आत्मानुभव) आपको बाहरी परिस्थितियों से मुक्त करता है। वह आपको आँधियों और तूफ़ानों के वेग की अधीनता से छुड़ाता है। आत्मानुभव आपको बाहरी प्रभावों से बचाता है। वह आपको अपने बल पर खड़ा करता है। ज्ञान हो जाने पर आगे के लिए सब वेग-वृद्धि रुक जाती है, किन्तु पहले की प्राप्ति गति वहाँ बनी रहती है। पहले से प्राप्त गति को हम जड़ता या पूर्व अध्यास कहते हैं। वह वहाँ बना रहता है। वह अपनी राह आप लेता रहेगा। हम देखते हैं कि यह आत्मानुभव कुछ ऐसे लोगों को हुआ था, जिनमें पहले से प्राप्त वेग बहुत ही कम था, अतः उनके शरीरों के द्वारा महान् कार्य नहीं हुए थे। और कुछ दूसरे लोग हैं, जिनकी पहले से प्राप्त की हुई गति की तीव्रता अद्भुत और आश्चर्य-जनक है। स्वच्छन्द, मुक्त होने पर भी उनके शरीरों की प्रगति जारी रहेगी। उनके शरीर विलक्षण कार्य करते रहेंगे। इस प्रकार महान् और उत्कृष्ट कार्य आत्मानुभव का दूसरा नाम हो जाता है।

डॉक्टर एनथोनी (Dr. Anthony) का वाक्य है कि "Pleasures wrapped up in duties' garments."

"सुख कर्त्तव्यों के वस्त्रों में लिपटे हुए हैं।"

अपने ईश्वरत्व को अनुभव करो, और फिर हर एक बात पूर्ण है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आत्मानुभव-संबंधी संकेत नं० २

अब हम परमेश्वर का कुछ दूसरे अलङ्कारों से निरूपण करते हैं। विशाल, महान् क्षीरसागर में, जो समग्र विश्व में व्याप्त हो रहा है, एक सुन्दर रेंगता सर्प या शेषनाग परमेश्वर का कोमल बिछौना बना हुआ है, सर्प अपनी देह की परतों को मानों भगवान् का गद्दा सा बनाता है। उसके सहस्र फन छत्र का काम दे रहे हैं। ऐसे सागर पर एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर देवी बैठी हुई है, जो इस परमेश्वर की पत्नी है। उसकी देह पारदर्शक है, नेत्र आधे खुले हैं और अधर मुसकराते हैं। वह धीरे-धीरे इस परमेश्वर के चरण दबा रही है। यह सुन्दर मूर्ति एक सुन्दर, शोभायमान कमल पर बैठी हुई है, और उसी पर बैठकर वह परमेश्वर के चरण दाब रही है, और देह मर्दन करती हुई मुट्ठियाँ भर रही है। उन दोनों के नेत्र मिल रहे हैं। एक दूसरे के नेत्रों को देख रहे हैं। यहां पत्नी से क्या निरूपण होता है? उससे ईश्वरत्व, वुद्धि, कल्याण और आनन्द निरूपण करती है। वह इस परमेश्वर की अपनी महिमा है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुक्तात्मा अपनी ही महिमा को हर समय देखा करता है, और आत्मा तब स्वतंत्र होता है, जब कि दुनिया उसके लिए बिलकुल डूबी हुई होती है। सारे नातों और सम्बन्धों से परे, सब बंधनों को तोड़कर, उसे दुनिया से कोई प्रयोजन नहीं होता है।

सागर का अर्थ अनन्तता है। और यह सागर क्षीर सागर क्यों कहा जाता है? दूध में तीन गुण हैं। वह प्रकाश है। वह सफेद है, जिसका अर्थ कल्याण है, वह बलदायक

भी है, जिसका अर्थ शक्ति है। अतएव वह क्षीरसागर अनन्त प्रकाश, अनन्त कल्याण और अनन्त शक्ति का प्रति रूप है। इसीमें दोनों (नारायण-लक्ष्मी) विश्राम करते हैं।

इस शेषनाग का क्या अर्थ है? शेषनाग का अर्थ है वह नाग, जो सबके बाद शेष बचा रहता है। जब सर्पिणी अपने १०० अंडे देती है, तब वह अपने ही दिये हुए अंडों को खाना शुरू करती है। जो कोई उसके पंजे से बच निकलता है, वह शेषनाग कहलाता है। इसी प्रकार हर एक वस्तु मर जाती है, केवल एक वस्तु रह जाती है। कल्याण, ज्ञान और शक्ति के सागर में एक अमर तत्त्व रहता है। दोनों अपनी ही महिमा में पूर्ण आनन्द, स्थिर और शान्त हैं। ॐ!

अब राम दो बातों पर आपका ध्यान विशेष रूप से खींचता है :—

१—परिच्छिन्नात्मा का निषेध (अनंगीकार)।

२—शुद्धात्मा का असंदिग्ध ग्रहण (अंगीकार)।

प्रथम:—वेदान्त के अनुसार उक्त निषेध पूर्ण विश्राम (उपशम), चैन, आराम, त्याग है। जब कभी आप समय निकाल सकें, पलँग पर या कुरसी पर लेट जाइये, इस तरह से जैसा कि मानों वह बोझ या भार आप कभी साथ नहीं लिये हुए थे और उससे आपका कोई सम्बन्ध न था, तथा उससे आप उतने ही अपरिचित थे, जितने कि किसी शिलाखंड से। कुछ देर तक देह को निर्जीव मुर्दे की तरह आराम करने दीजिये, संकल्प या विचार पर किसी तरह का जोर डालकर कोई सहारा न लीजिये, ताकि किसी तरह का तनाव (जोर) न होने पाये। देह का सारा अनुराग और मोह त्याग दीजिये। चित्त को शरीर या किसी भी वस्तु की शंकाओं और चिन्ताओं से छुट्टी पा जाने दीजिये। समस्त इच्छा या आकांक्षा और आशा को त्याग

दीजिये और उनका निषेध कीजिये। यही है निशेष या निवृत्ति (relaxation)।

द्वितीय:—ईश्वरत्व—ईश्वर की मर्जी को ही अपनी मर्जी बनाइये। चाहे सुख के लिए हो या दुःख के लिए। ईश्वरेच्छा का पालन कीजिये, मानों वह आप ही की इच्छा है, और 'आत्मानुभव'-सम्बन्धी व्याख्यान में वर्णित विचारधारा के अनुसार अपने आपको शरीर और उसके अड़ोस-पड़ोस, मन और उसके संकल्प (motives), सफलता और भय का विचार, इन सबसे ऊपर (पृथक्) समझिये; अपने आपको सर्वव्यापी, परमशक्तिमान्, सूर्यों का सूर्य, कारणातीत, नाम-रूप से परे और सकल महान लोकों से परे, पूर्णानन्द तथा मुक्त राम से अभिन्न समझिये। तब कोई भी स्वर जो स्वभावतः और अनायास आपके ध्यान में आ जायँ, उसमें ॐ उच्चारिये, प्रणव गाइये। ऐसा समझिये कि "मैं पूर्ण आनन्द, आनन्द-कन्द हूँ।" इस तरह धीरे धीरे शिकायतों और रोगों के सभी हेतु स्वतः आपके सामने से चले जायँगे। दुनिया और आपका अड़ोस-पड़ोस ठीक वैसे ही है, जैसे आप उन्हें समझते हैं। दुनिया हृदय पर भारी न होने पाये। दिन और रात इस सत्य का ध्यान कीजिये कि "दुनिया का सम्पूर्ण लोकमत और समाज केवल मेरा ही संकल्प है और मैं ही वह असली शक्ति हूँ जिसकी साँस या छाया-मात्र यह सारी दुनिया है।" आप अपने लक्ष्य के शिखर पर क्यों नहीं पहुँचते? इसका कारण यह है कि आप अपने निकट के पड़ोसी, परम शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा दूसरों के चंचल, अस्थिर और धुँधले निर्णयों का अधिक आदर और सत्कार करते हैं। राम कहता है, आप अपने ही लिए जियें, न कि दूसरों की सम्मतियों के लिए। स्वतंत्र हूजिये। अकेले प्रभु, निज स्वरूप, अद्वितीय, सच्चे पति, मालिक, अपने

ही भीतरी परमेश्वर को प्रसन्न करने का यत्न कीजिये। अनैक्य, जनता और बहुमत को आप किसी हालत में न सन्तुष्ट कर सकेंगे, और सहस्र-शिरधारी (पागल) जनता को असन्तुष्ट करने के लिए आप किसी तरह वाध्य भी नहीं हैं। जनता का क्या आप को कुछ देना है? लोगों के क्या आप किसी तरह से ऋणी हैं? नहीं, बिलकुल नहीं। आप आप ही अपने विधाता हैं। अपने आपको गाकर सुनाइये, मानों अकेले आप ही आप हैं, और कोई दूसरा पास सुनने-वाला नहीं है। जब आपका अपना आत्मा प्रसन्न है, तब जनता अवश्य सन्तुष्ट होगी। यही क़ानूनी है। दूसरों के लिए अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करने से क्या लाभ?

एक राजकुमार अपने बचपन में दरबारियों के बच्चों के साथ लुक्कन-छिप्पन (hide & seek) खेल रहा था। उसे लड़कों को ढूंढ़ने में बड़ा झंझट करना पड़ा। पास में खड़े एक व्यक्ति ने कहा, "साथी खिलाड़ियों को ढूंढ़ने में इतना झंझट करने से क्या फ़ायदा जब कि एक क्षण में वे जमा किये जा सकते हैं, यदि आप उन्हें आज्ञा देने में अपनी शाही सत्ता से काम लें?" ऐसे प्रश्न का उत्तर यह है कि उस हालत में खेल का मजा जाता रहेगा। खेल में कोई आनन्द न रह जायगा। ठीक इसी तरह राम के अनुसार, वास्तव में आप सर्वश्रेष्ठ शासक और सबके जाननेवाले, सर्वज्ञ देवता हैं, किन्तु चूँकि आपने खेल में अपने ही विषय (अपने सम्बन्धी सब तरह के विचार और ज्ञान) को दुनिया की लुक्कन-छिप्पनवाली भूलभुलैया में ढूँढ़ना शुरू किया है, इसलिए विचार के क्रम को त्याग देना और खेल में उस अधिकार (सत्ता) काम लेना, जिससे सारा खेल रुक जाता है, उचित खेल न होगा। जिस विचार-क्षेत्र में भूत, वर्तमान,

भविष्य और हज़ारों सूर्य तथा नक्षत्र—सब आपकी अपनी आत्मा (निज स्वरूप) हो जाते हैं, तथा 'अहम्' ज्ञान-सागर में तरंग और भँवर मात्र होते हैं, उसमें आप क़ानून (वकालत) की परीक्षाओं और सांसारिक सफलता की परवाह कैसे कर सकते हैं? यदि आप सच्ची दिव्य दृष्टि (clairvoyance) प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको इन्द्रियों के इन लोकों को, जिसमें आप दिव्य दृष्टि (clairvoyance) चाहते हैं, त्यागना या उनसे ऊपर उठना होगा।

मछली पकड़ने को एक जाल बिछाया गया था। मछली जाल में फँसकर अपनी प्रचण्ड शक्ति से उसे घसीट ले गई। ईश्वर को यह सलाह न दो कि वह आपके साथ कैसा बरताव करे, अपनी मर्ज़ी का आदेश उसे न दो, अपने आपको केवल उस पर छोड़ दो, तुच्छ और परिच्छिन्नात्मा को त्याग दो, झूठी इच्छाओं को छोड़ दो। इस प्रकार आप अपने शरीर और चित्त को दिव्य प्रकाश से परिपूर्ण एवं ईश्वर-वाणी (इलहाम वा श्रुति) का सच्चा यंत्र बना देंगे। सम्पूर्ण सत्य ज्ञान और वास्तविक शिक्षा भीतर से आती है, पुस्तकों, बाह्य साधनों और वहिर्मुख चित्त से नहीं। अलौकिक-बुद्धि पुरुषों (men of genius) ने, ज्ञानशोध के क्षेत्र में नवीन कार्यकर्त्ताओं ने केवल तभी अपने आविष्कार (discoveries) और अनुसन्धान (investigations) किये, जब कि वे विचार में नितान्त निमग्न थे, इन्द्रियों के लोक से बहुत ऊपर थे, किसी भी प्रकार की शीघ्रता या एषणा (कांक्षा) से बहुत ऊपर थे, जब कि वे अपने व्यक्तित्व और मानसिकता को स्वार्थपरता की सभी संभव प्रवृत्तियों से रहित कर चुके थे। वे जब एक पारदर्शक दर्पण या शीशे के द्वारा देख रहे थे, तभी ज्ञान का प्रकाश उनके द्वारा चमका, उन्होंने पुस्तकों पर प्रकाश

डाला, पुस्तकालयों और पुस्तकों को प्रकाशित किया, पुस्तकालयों के पास उन्हें प्रबुद्ध करने के लिए कुछ भी न था। यह है कार्य! कार्य से राम का अभिप्राय कभी भी निरन्तर निकृष्ट परिश्रम नहीं है। वेदान्त में कार्य का अर्थ है सदैव विश्व से समताल रहना तथा वास्तविक आत्मा से एक स्वर होकर स्फुरण करना। वास्तविक स्वरूप से ऐसी निष्काम एकता, जो वेदान्त के अनुसार असली कार्य है, मूर्खों द्वारा प्रायः अकार्य या आलस्य की उपाधि पाता है। कृपया "सफलता के रहस्य" (इस नाम के व्याख्यान) को एक वार फिर पूरी तरह पढ़िये। अत्यन्त कष्टसाध्य कार्य भी, वेदान्त की वृत्ति से किया जाने पर, पूर्ण सुख और खेल जान पड़ता है, वह गुलामी या तनिक भी वोझ रूप प्रतीत नहीं होता। इस तरह एक दृष्टिकोण से जो कार्य सर्वोच्च कहा जाता है, वह वेदान्त के दृष्टिकोण से कोई कार्य ही नहीं है।

हिन्दू-पुराणों में परमेश्वर के दो रूप दिये हुए हैं। प्रत्येक धर्म के तीन रूप होने चाहिए। एक है तत्वज्ञान, दूसरा क्रिया-विधि (कर्म-काण्ड) और तीसरा है पुराण। तत्वज्ञान विद्वानों के लिए है, कर्म-काण्ड वाह्य शरीर वाले या बच्चों के लिए है, और पुराण विचारवानों के लिए है। तीनों का साथ-साथ चलना आवश्यक है। यदि एक भी पिछड़ जाता है, तब वह धर्म टिक नहीं सकता। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में इन तीनों की पूर्ण समता होने के ही कारण हिन्दू-धर्म आज भी तीस कोटि मनुष्यों का धर्म बना है। जिस धर्म में इनमें से एक का भी अभाव होता है, वह वास्तविक धर्म नहीं हो सकता। हिन्दू-धर्म में ये तीनों पूर्णावस्था में हैं। हिन्दू-पुराण से राम आपके सामने पूर्ण पुरुष या परमेश्वर का वर्णन करेगा, जो निरन्तर आपके मन में रहना चाहिए।

हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में परमेश्वर के दो रूप, परमात्मा के दो आकार दिखाये गये हैं। एक स्वच्छ, महान्, प्रभावशाली, सुन्दर, यौवनपूर्ण, प्रतापी आकार, हिमालय के शिखरों पर बैठा हुआ, ध्यान और विचार में मग्न, आँखें बन्द, दुनिया से बेख़बर, परमानन्द की साक्षात् मूर्ति, दिक़्क़तों और बखेड़ों से दूर, सम्पूर्ण चिन्ता और फ़िक्र से मुक्त । ऐसा मुक्त, ऐसा पूर्ण स्वतन्त्र, ऐसा महान् जिसके लिए दुनिया का अस्तित्व कदापि संभव नहीं। यह है परमेश्वर का एक चित्र। यह चित्र समाधि का चित्र है। यह एक स्वच्छन्द, मुक्त आत्मा है। श्वेत तो हिमालय का एक चिन्ह है, और अचल मन शान्ति का चिन्ह है।

इसके साथ उस परमेश्वर की पत्नी है, जो सिर से पैर तक गुलाब के रंग की है। वह इस परमेश्वर के घुटनों पर बैठी हुई है और उसके लिए सदा वनस्पतियाँ तथा अन्य उत्तेजक रस घोटा करती है। परमेश्वर अपने नेत्र खोलता है और तुरन्त उसकी पत्नी अपने तैयार किये नशीले अर्क़ से भरा हुआ एक कटोरा उसके मुख में लगा देती है, ताकि वह फिर अपनी ध्यानावस्था में निमग्न न हो जाय। फिर वह उससे सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्ध में प्रश्न करती है, और वह उन प्रश्नों को उसे समझाता है। वह एक राजा की बेटी है, किन्तु वह इस परमेश्वर के निकट रहने के लिए अपनी सब सुन्दर चीजें छोड़ चुकी है। परमेश्वर शिव कहलाते हैं, उनकी पत्नी का नाम गिरिजा (पार्वती) है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आत्मानुभव-संबंधी संकेत नं० ३

आप देखते हैं कि अपने जीवन की ज़रूरतों और आपकी शारीरिक तथा मानसिक ताक़तों पर दूसरों की नाना माँगें ऐसी हैं, जो आपको सदैव खैंचातानी में डाले रखने की संभावना पैदा करती हैं। यदि इन बाह्य स्थितियों के वश आप सदा अपने को खैंचातानी में रहने देते हैं, तो अपने ही हाथों-पैरों से आप अपनी अकाल मृत्यु की व्यवस्था कर रहे हैं।

इस संकट से कैसे बचा जाय, और कैसे कुछ आराम मिले? राम कामों को टालने या दैनिक कामों को त्यागने की सिफ़ारिश नहीं करता है। राम ऐसी सलाह कदापि नहीं देता। फिर भी वह एक बहुत ही लाभदायक आदत—जो आदत आपको सदा भारी और कठिन कार्यों से बचाये रहेगी—डालने की सलाह आपको देता है। यह सलाह वेदान्तिक त्याग से कुछ भी कम नहीं है। आपको अपने आपको सदैव त्याग की शिला पर रखना है, और उस श्रेष्ठ स्थान पर खड़े होकर, जो कार्य आपके सामने आ पड़े, उसमें दिलो-जान से जुट जाना है। आप थकेंगे नहीं। आपमें काम सम्हालने की शक्ति होगी।

अधिक स्पष्टीकरण यह है कि—काम करते समय बीच-बीच में थोड़ा आराम लो, और एक या दो मिनट के आराम के बीच अपने को इस विचार में लगाओ कि "देह कुछ भी नहीं है, हमारा इससे कभी कोई सरोकार नहीं था। हम एक साक्षी-मात्र हैं, शरीर के कामों के नतीजों या परिमाणों से हमें तनिक भी वास्ता नहीं।" इस प्रकार

विचार करते समय आप यदि चाहें, अपने नेत्र बन्द कर लें, अंग ढीले कर लें, शरीर को पूरे आराम में रक्खें, और सारी चिन्ताओं का बोझ उतार दें। चिन्ता का बोझ अपने कंधे से उतारने में आप जितने अधिक सफल होंगे, उतने ही अधिक बलवान् आप अपने आपको अनुभव करेंगे।

नाड़ियाँ (nerves) ही देह में प्राण-शक्ति रखती हैं, और यह नाड़ी-चक्र ही विचार-शक्ति का पोषक है। पाचन-क्रिया, खून का दौरा, बालों की बाढ़ इत्यादि अन्त में नाड़ी-चक्र (nervous system) के ही कार्य पर निर्भर है। यदि आपकी विचार-शक्ति उद्विग्न है और आप सब तरह के विचारों से हैरान और परेशान हैं, तो इसका अर्थ यह है कि आपकी नाड़ियों पर बहुत अधिक बोझ है। नाड़ियों के इस उद्यमशील विचार-रूपी प्रयत्न के आकार में काम, यदि एक ओर से लाभ है, तो दूसरी ओर से निश्चित हानि है। इसी तरह उससे देह के आवश्यक कार्य-अंगों को हानि पहुँचती है। यह एक ही घोड़े पर दो भारी बोझों को रख देने के समान है। एक बोझ बढ़ाओ, तो आपको दूसरा घटाना चाहिए। घोड़े का बोझ उतार लो, तो बोझों के भार को बिना किसी तरह की हानि पहुँचाये ही घोड़ा दौड़ सकेगा। यदि आप अपनी प्राण-शक्ति को स्थिर रखना चाहते हैं, यदि आप अपने स्वास्थ्य को बनाये रखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि नाड़ी-चक्र का घोड़ा शरीर के भार को आसानी से वहन करे, तो आपको चिन्ता का बोझ हलका करना होगा। घबड़ाहट भरे विचारों और हैरानी भरे ख्यालों को अपने जीवन का रक्त मत चूसने दो। पूर्ण स्वास्थ्य और प्रबल उद्योग का रहस्य इसी बात में है कि आप अपने चित्त को प्रफुल्लित और प्रसन्न रक्खें, सदा परेशानी और जल्दबाजी से परे और सदैव किसी भी प्रकार के भय या चिन्ता से मुक्त रक्खें।

इस प्रकार वेदान्तिक त्याग का अर्थ है सम्पूर्ण चिन्ता, भय, खेद, व्यग्रता और मन के क्लेश को, सदा अपनी मानसिक दृष्टि के सामने अपने वास्तविक आत्मा के ईश्वरत्व को रखकर, दूर करना और फेंक देना; यही सांसारिक चिंताओं, परेशानियों और कर्त्तव्यों से बरी होना है। आपको कोई कर्त्तव्य नहीं पालना है, आप किसी में बँधे नहीं हैं, आप किसी के भी सामने उत्तरदायी नहीं। आपको कोई ऋण नहीं चुकाना है, आप किसी के भी बन्धन में नहीं हो, समस्त समाज और राष्ट्र तथा हर एक वस्तु के मुक़ाबले में अपने व्यक्तित्व (स्वरूप) का प्रतिपादन करो। यह है वेदान्तिक त्याग। समाज, रीति और मर्यादा, नियम, विधान, खंडन-मंडन और आलोचनायें आपके वास्तविक स्वरूप को कदापि नहीं छू सकतीं। ऐसा भान करो, देह-भावना को अलग कर दो, इसे त्याग दो, यह देह आप नहीं हैं। ॐ का ऐसा अर्थ करो, और थकावट के सभी अवसरों पर ॐ का उच्चारण करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

उपदेश-भाग

बिना भोजन के मनुष्य की तरह हम आत्मानुभव के लिए भूखे और प्यासे रहते हैं, लालायित रहते हैं, मंत्र जपते हैं, मन की साँस से बाँसुरी बजाते हैं। अतः आप मन की उस झील में से अगणित स्वार्थपूर्ण इच्छाओं को ढूंढ़ निकालें, और एक-एक करके उनको कुचल डालें—दृढ़ प्रतिज्ञायें करें और गम्भीर शपथें लें। जब आप झील से बाहर निकल आवेंगे, तब जल किसी भी पीनेवाले के लिए विषैला न रहेगा। गौओं, नारियों, पुरुषों को पानी पीने दो—निन्दकों का विष ऐसे स्वच्छ जल में बदल जायगा जिसका स्रोत ईश्वरानुभव होगा। अपने मन की दुर्बलतायें तलाश करो और उन्हें निर्मूल कर दो। वासनायें एकाग्रता को रोकती हैं, और जब तक हृदय में विशुद्धता तथा आत्मज्ञान का अस्तित्व न हो, तब तक सच्ची एकाग्रता नहीं हो सकती। पहले आप उसे (वासना को) उखाड़ फेंको, जो एकाग्रता की चेष्टा करते समय आपको नीचे घसीट लाती है। आप अपने प्रति सच्चे बनो। इस देश में विपुल संख्या में औरों के व्याख्यान सुने जाते हैं। हमें अपने आपको उपदेश देना चाहिए। इसके बिना कोई उन्नति नहीं हो सकती।

सोने से पहले बैठ जाइये, और उन दोषों को सामने लाइये जिन्हें तुम्हें हटाना है। इंजील, गीता, उपनिषद् या इमर्सन-जैसे लेखकों के लेखों को पढ़िये। यदि लोभ या शोक का दोष हो, तो उक्त अध्ययन की सहायता से विचारिये कि यह दोष क्यों मौजूद

है, इसे क्यों दूर होना चाहिए, यह कैसे हमारे मार्ग में बाधा डालता है?—अपना मन इससे ऊपर उठा लीजिये, और ॐ उच्चारण कीजिये। जब उसके दब जाने का निश्चय हो जाय, तो अंतःकरण से इसे निकाल दीजिये। फिर जब समझिये कि यह पूर्ण वश में हो गया है तब उसका बिलकुल भी ख़याल न कीजिये। एक-एक करके इन भुजंगों के फन पकड़िये, उन्हें कुचलिये और हर एक (दोष) पर अपने आपको व्याख्यान दीजिये। हर एक को अपना काम आप करना चाहिए। ध्यान करते समय ॐ का जाप तब तक करते जाइये, जब तक वाणी रटती रहे, और स्वर्गीय ध्वनि के प्रभाव पड़ते रहें। इस प्रकार से आपको सहायता मिलेगी, और सुन्दर संस्कारों के प्रभाव से आप बलवान् होकर निकलेंगे। यह पहली क्रिया है।

सब दोषों का मूल-कारण एक प्रकार की अविद्या है—अर्थात् शुद्ध आत्मा का अज्ञान, और अपने आत्मा को देह तथा बाह्य सुखों से अभिन्न मानने की इच्छा, एवं शोक, पीड़ा, क्लेश से पीड़ित होने की सम्भावना। पर जब आप अनुभव कर लें कि आप अपरिच्छिन्न आत्मा हैं, तब आप विषय-वासना या शोक के अधीन कैसे हो सकते हैं? लोग कहते हैं कि धार्मिक नियम गणित विद्या के नियमों के समान निश्चित नहीं हैं। यह एक भूल है। गुफाओं और सुदूर वनों में भी आप यह देखकर विस्मित होंगे कि घास आप के विरुद्ध गवाही देने को उठ खड़ी होती है—दीवालें और वृक्ष आप के अपराध को प्रमाणित करते हैं। जो लोग कारण नहीं जानते हैं, वे अड़ोस-पड़ोस से लड़ते हैं। यह एक दैवी विधान (क़ुदरती क़ानून) है, जो अभंगनीय कहा जा सकता है। ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने की चेष्टा करने से आप ख़ुद अन्धे हो जाओगे। मलिनता को आश्रय देने से बुरे

परिणाम भोगने पड़ेंगे। ये क़ानून एक-एक करके सिद्ध किये जायँगे। सिद्ध हो जाने पर मनुष्य नीच इच्छाओं के अधीन नहीं रह सकता।

मलिन इच्छाओं पर एक बार प्रभुता पा जाने से आप जितनी देर चाहें, एकाग्रता लाभ कर सकते हैं।

न भूखे मरो और न अधिक खाओ। दोनों से बचना चाहिए। उपवास प्रायः स्वभावतः आता है। तात्पर्य, सहज-स्वभाव का अनुसरण करना चाहिए, वह चाहे खाने का हो और चाहे उपवास करने का। दासता से बचना चाहिए। स्वामी बनो।

भारत में कुछ दिन, जैसे पूर्णिमा इत्यादि एकाग्रता उत्पादक सिद्ध हुए हैं। उस दिन आप अभ्यास करें, और आप ऐसे दिनों को अवश्य सहायक पायेंगे, यदि आप उन दिनों विशेषतः बादाम आदि सूखे फल, हल्का भोजन और फल खाया करें।

ॐ! ॐ!! ॐ!!

स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ

लेख व उपदेश

हिन्दी में—साधारण संस्करण		मूल्य
१—भाग १ अन्तरात्मा	....	१।।।)
२—भाग २ शक्तिस्रोत	....	१।।।)
३—भाग ३ आत्मानुभव	....	२।।।)
४—भाग ४ विश्वानुभूति	....	१।।।)
५—भाग ५ धर्मतत्त्व	....	२)
६—भाग ६ वेदान्त-शिखर से	....	१।।।)
७—भाग ७ भारत माता	....	२)
८—भाग ८ अरण्य संवाद	...	२)
९—भाग ९ सुलह कि जंग गंगा तरंग	...	१।।)
१०—राम-हृदय	....	१।।)
११—राम-पत्र	...	१।।)
१२—राम-वर्षा भाग १ (भजनावली)	...	३)
१३—राम-वर्षा भाग २ ,,	...	२)
१४—राम जीवन-कथा	...	५)
१५—कर्मयोग रहस्य—	...	प्रेस में
१६—भक्तियोग रहस्य—	...	१।।)
१७—व्यावहारिक वेदान्त —	...	प्रेस में
१८—सुदामा के तंदुल	....	२)

नोट—राम-हृदय और रामपत्र पुस्तकों का मूल्य कपड़े की सुन्दर जिल्द में ।।) अधिक है ।

स्वामी राम के चित्र

१—केबीनेट फोटो	....	...	२)
२—तिरंगा फोटो प्रिंट	...	...	।)
३—स्वामी नारायण का केबीनेट फोटो		...	२)